

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

शोध अंक 28

जनवरी-मार्च 2015

200 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 07838090732

ई-मेल : shodhdisha@gmail.com

वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

दिल्ली एन०सी०आर०

डॉ० अनुभूति

सी-106, शिव कला

बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा

फोन : 09958070700

हरियाणा

डॉ० मीना अग्रवाल

बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,

गुडगाँव (हरियाणा)

फोन : 0124-4076565, 07838090237

डॉ० हरिशरण वर्मा

एफ-120, सैक्टर 10

डी०एल०एफ० (के०एल० मेहता स्कूल के पास)

फरीदाबाद (हरियाणा)

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक

डॉ० मीना अग्रवाल 07838090237

संयुक्त संपादक

डॉ० शंकर क्षेम

उपसंपादक

डॉ० रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक

गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

उपसंपादक

डॉ० अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन :

व्यक्तिगत : चार हजार रुपए

संस्थागत : पाँच हजार रुपए

वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रुपए

यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसेट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

- डॉ० सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, Morrisville, NC-27560 USA
- डॉ० सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
- प्रो० हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
- डॉ० कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
- डॉ० आर०पी० सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)
- प्रो० अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
- डॉ० आदित्य प्रचंडिया, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ०प्र०)
- डॉ० हरिमोहन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, के०एम०मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
- डॉ० बाबूराम, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
- डॉ० राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म०प्र०)
- डॉ० रामसजन पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
- डॉ० दामोदर खड्गसे, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा०)
- प्रो० शंकर बुंदेले, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय, अमरावती
- डॉ० आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- डॉ० पद्मा पाटिल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा०)
- डॉ० माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० नंदकिशोर पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
- डॉ० चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस०एन०डी०टी० महिला विद्यापीठ, पुणे (महा०)
- डॉ० मुकेश गर्ग, एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ० जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
- डॉ० हरeram पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
- डॉ० शंभुनाथ तिवारी, एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
- डॉ० श्यामधर तिवारी, प्रोफ़ेसर हिं०वि०, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
- डॉ० दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ० शाहबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०, औरंगाबाद (महा०)
- डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
- डॉ० महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० संतोषकुमार गौड़, एसोसिएट प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ०प्र०)
- डॉ० घनश्याम अरोरा, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ०प्र०)
- डॉ० सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना० महा०, मेरठ
- डॉ० एम०एस० विमल, सहायक प्राध्यापक अँग्रेजी, शासकीय महाराजा पी०जी० महा०, छतरपुर (म०प्र०)

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ० रामानंद शर्मा

अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी०जी०) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ०प्र०)

डॉ० मधुलिका तिवारी

रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल०आर० पी०जी० कॉलेज, साहिबाबाद
गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

श्री हरिराम 'पथिक'

स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं० 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ०प्र०)

डॉ० वंदना सेमल्टे

टी०एफ० 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाषियाबाद 201001

डॉ० मनमोहन शुक्ल

147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ०प्र०)

डॉ० विपिनकुमार गिरि

पुराना माधवनगर, भारद्वाज गली,
सहारनपुर (उ०प्र०)

प्राचार्या

आर०बी०डी० महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ०प्र०) 246701

डॉ० सुधारानी सिंह

सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ०प्र०)

डॉ० प्रेमव्रत तिवारी

सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ०प्र०)

डॉ० पूनम भारद्वाज

17 प्रेम विहार, मुजफ्फरनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना

द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाज़ियाबाद 201001

डॉ० वंदना श्रीवास्तव

के 83 सी आशियाना, लखनऊ 226012
09415917170

डॉ० अर्चना वालिया

286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ० सुचित्रा मलिक

37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

मध्य प्रदेश

डॉ० राजेंद्र मिश्र

14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म०प्र०)

डॉ० स्मृति शुक्ला

ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड, जबलपुर (म०प्र०)

डॉ० सुरेंद्र यादव

301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत),
इंदौर 452018

डॉ० ज्योतिसिंह

213 अनूपनगर
सी०एच०एल० अपोलो हास्पिटल के सामने
ए०बी० रोड, इंदौर 452008 (म०प्र०)
09926300355

डॉ० चंदा तलेरा जैन

जी-17, रेडियो कालोनी, इंदौर (म०प्र०) 452001
09425944773

डॉ० वंदना अग्निहोत्री

194 सुखदेव नगर, एरोडूम रोड
इंदौर (म०प्र०) 452001

डॉ० पुष्पा शाक्य

110, सुंदर नगर मेन, सुकलिया, इंदौर (म०प्र०)
09827281203

डॉ० चंद्रकिरण अग्निहोत्री
 108, रेडियो कालोनी, इंदौर (म०प्र०) 452001
प्राचार्य
 शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
 कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
 किला भवन, इंदौर (म०प्र०)
पंजाब/ हरियाणा
श्री हेमांशु शर्मा
 हिंदी विभाग, साईदास ए०एस०सी० सी०से० स्कूल
 पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)
प्राचार्य
 कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
 फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब
प्राचार्य
 कन्या महाविद्यालय
 विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004
डॉ० विद्या चौधरी
 मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119
डॉ० विजय इंदु
 1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
 सेक्टर 10 ए, गुडगाँव (हरियाणा) 122001
कविता यादव
 पुत्री श्री सुनिलकुमार, ग्राम व पोस्ट पालावास
 जिला रेवाड़ी (हरियाणा) 123035
डॉ० राजाराम अग्रवाल
 ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
 जिला फतेहाबाद (हरि०) 125053
 मो० 09896789100
डॉ० पुष्पा अंतिल
 203, टॉवर-9, फ्रेस्को
 निर्वाणा, सेक्टर 50, गुडगाँव (हरि०) 122018
 मो० 096547444800
महाराष्ट्र
डॉ० लियाकत मियाँ भाई शेख
 अखिलेश नगर, प्लॉट क्र० 11
 नए बस स्टैंड के पास,
 गंगपुर, (औरंगाबाद) महा०
 09423933402

डॉ० अश्विनीकुमार 'विष्णु'
 अध्यक्ष अँग्रेजी विभाग
 सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा०)
डॉ० शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख
 (प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०औरंगाबाद)
 अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
 78/484 सिविल हडको,
 अहमदनगर 414003
 09850119687
प्रो० शेख मुहम्मद शाकिर शेख बशीर
 अध्यक्ष हिंदी विभाग
 पूना कालेज ऑफ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
 कैंप, पुणे 411201 (महा०)
 09423017017
डॉ० मेहमूद रसूल पटेल
 दारुल अमन, काशीनगर,
 जालना रोड, बीड़ (महा०)
प्रा. डॉ० अभयकुमार रमेश खैरनार
 मु. पो. जुनवणे,
 तह. जि. धुले (महाराष्ट्र)
प्रा० अनंत नानाजी केदार
 5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
 दाते नगर, गंगपुर रोड
 नासिक 422005 (महा०)
डॉ० मंजूर चाँदभाई सय्यद
 'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
 पंचवटी, नासिक 422004 (महा०)
 09822991516
डॉ० शोभा साहेबराव राणे
 17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट,
 नंदनवन लॉन के सामने
 आशाराम बापू आश्रम मार्ग,
 सावरकर नगर,
 गंगपुर रोड, नासिक (महा०) 422013
प्रा. डॉ० संजय विक्रम ढोढरे
 7, मोतीरामनगर, वाडीभोकर रोड,
 देवपूर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

डॉ० अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा०) 414003
09822941330

प्रा० दत्तात्रय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं० 13
पाटील अली, ओतूर
तह० जुन्नर, जिला पुणे (महा०) 412409
09860229544

डॉ० मजीद मुनीर शेख
ग्राम व पो० साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह० अंबड
जिला जालना (महा०) 431212
09765944586

डॉ० भरत त्र्यंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो० व तह० अकोले
जिला अहमदनगर (महा०) 422601
09423164521

डॉ० पोपट विठ्ठल कोटमे
फ्लैट नं० 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा०) 422006
09850760866

डॉ० श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लॉट क्र० 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफिस
नागपुर 440014 (महा०)

सुश्री शारदा बी. जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लैट क्र० 402
प्लॉट नं० 26, सर्व क्र० 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
08805616654

प्रा० (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड, कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा०)
09011449636

डॉ० एस०एन० देवरे
प्लॉट नं० 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा०) 424002
प्रो० डॉ० चंद्रकांत मिसाल
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस०एन०डी०टी० महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड,
पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह. साक्री,
जिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री,
जिला धुले 424304

प्रा० उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागडे
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
जिला नासिक (महा०)

प्रा. करुणा दत्तात्रय अहिरे
व्ही.यू.पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह० साक्री,
जिला धुले 424304

प्रा. डॉ० प्रमोद गोकुळ पाटील
मु.पो. मोराणे (प्र.ल.)
तह. जिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ० अशफाक सिकलगर

जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ० महेंद्रसिंह रघुवंशी

सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास, नंदुरबार 425412

डॉ० रेखा वसंत पाटील

सीतामाई नगर, चालिसगाँव
जिला जलगाँव (महा०) 424101

प्रा. डॉ० योगेश गोकुळ पाटिल

प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपूर,
धुले 424002

प्रा. डॉ० मंजू तरडेजा (सिंघाणी)

ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,
कुमारनगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा. डॉ० चंद्रमादेवी पाटील

59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ० संजयकुमार नंदलाल शर्मा

38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि० नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख

बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ० देवकीनंदन महाजन

1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ० कल्पना राजेंद्र पाटील

38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि० नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर

फ्लेट नं० 12, एस नं० 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058
08087612123

प्रा० डॉ० रामचंद्र माली

अध्यक्ष हिंदी विभाग, क०वा०वि० महाविद्यालय,
नवापुर, जिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ० सुषमा कोंडे

81/ए, प्लॉट नं० 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464

प्राचार्य

विद्यावर्धिनी महाविद्यालय, धुले (महा०) 424001

डॉ० हेमलता कांचनकर

43 नंदनवन कालोनी (कैट),
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

सुश्री नेहा संदीप घोरपडे

द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं० 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं० 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री भारती मधुकर पाटील

मु०पो० सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा०)

प्रा० शिंदे नवनाथ सर्जेराव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड,
सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304

सुश्री मीनल वार्वे

बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास,
शिवाजी नगर, जेल रोड,
नासिक रोड (महाराष्ट्र)

प्रो० अमानुल्लाह मो० शेख

श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिंग ए, बिंग ए-201
आई०टी०आई० कालेज के पास
पो० मुक्तिन्दपुर, तह० नेवासा
जिला अहमदनगर (महा०)

श्री शेख शिराज हसन

पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)

415521 (महा०)

मो० 09011444059

प्रा० ईश्वर पदमसिंग ठाकुर

जनशक्ति कालोनी

रिंग रोड, फैजपुर, तहसील यावल (जलगाँव)

प्रा० दीपक विश्वासराव पाटील

मुकाम पोस्ट सुन्दने

निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर

तहसील जिला धुले

घुलेवाडी, संगमनेर (महा०) 424002

099923811609

डॉ० अनिता मधुकर अंतरे

मयूर सोलर ऐजेंसी

स्वामी समर्थ मंदिर के पास

पो० लोनी बी के, तालुका रहाता,

षिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736

09970343766

डॉ० विठ्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे

‘सी’ टाइप कालेज

शास्त्रीनगर, लासलगाँव

जिला नासिक (महाराष्ट्र) 422306

08888590156

डॉ० उर्मिला मानसिंह गायकवाड

प्लॉट नं० 290-292, सेक्टर-29

गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग, प्लैट नं० 303

रावेत निकट डी-मार्ट, पुणे 412101

मो० 07620225839

डॉ० एफ०एम० शाह

द्वारा श्री टी०एम० धुवारे

छोटा दत्त मंदिर के पास, टी०बी० टोली

गोंदिया (महा०) 441614

मो० 07620042772

डॉ० शैला पांडुरंग चव्हाण

प्लेट नं० 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी

मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने

हीरा-मोती शोरूम के पीछे, सिंघाड़ा तालाब

नासिक (महा०) 422001

मो० 09850827138

प्राचार्य

कला, वाणिज्य व कंप्यूटर

एप्लीकेशन महिला महा०

डोंगर कठोरे, यावल

जिला जलगाँव (महा०)

डॉ० सचिन कदम

हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय

संगमनेर (महाराष्ट्र)

प्रा० पुरुषोत्तम कुंदे

हिंदी विभाग, न्यू आर्ट्स कामर्स एंड साइंस कालेज

शेवगाँव (अहमदनगर) 414502 महाराष्ट्र

09850947267

रूपाली नामदेवराव रिंगे

द्वारा बालाजी संभाजी कदम

प्लैट नं० 12, साईं श्रद्धा रेसिडेंसी, प्लॉट नं० 78

सी०डी०सी० पूर्णनगर, चिंचवड, पुणे 411019 महाराष्ट्र

09420848635, 07276268922

गुजरात

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर

201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर

सोखड़ा रोड, छाणी, बड़ोदरा (गुजरात) 391740

09624501415

तमिलनाडु

Dr. V. Jayalakshmi

Mathura, Plot No. 38

5th Cross Street, Gokul Nagar

Preumbakkam, Chennai-600100

कर्नाटक

डॉ० जुबैदा हाशिम मुल्ला

बैतुल हाशमी, म०नं० 152, ताजनगर

हुबली 580031 (कर्नाटक)

जनसुलभ साहित्य माला

हिंदी साहित्य निकेतन ने जनसुलभ साहित्य माला के अंतर्गत निम्नलिखित पुस्तकों को प्रकाशित किया है। इनमें से प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल पचास रुपए है। 12 पुस्तकों का पूरा सैट मात्र 500 रुपए में।

कहानी

कमरा नंबर 103 / सुधा ओम ढींगरा

इमराना हाषिर हो / महेशचंद्र द्विवेदी

कुत्तेवाले पापा / डॉ० मीना अग्रवाल

प्रेमचंद : कालजयी कहानियाँ / सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका

लघुकथाएँ मानव-जीवन की /

सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'

कहानियाँ अमेरिका से / सं० इला प्रसाद

व्यंग्य

दूध का धुला लोकतंत्र / गोपाल चतुर्वेदी

आदमी और कुत्ते की नाक / डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

सच का सामना / डॉ० हरीशकुमार सिंह

व्यंग्य-एकांकी

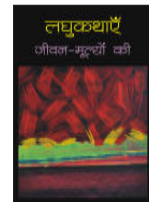
अफलातून की अकादमी / डॉ० शिव शर्मा

सिनेमा

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति / नवलकिशोर शर्मा

कविता

मान भी जा छुटकी / गीतिका गोयल



संपादकीय

नई ग़ज़ल का सिपहसालार : निश्तर ख़ानकाही

हाल घर का न कोई पूछने वाला आया
दोस्त आए भी तो मौसम की सुनाने आए
हम-से बेफ़ैज़ फ़क़ीरों की है परवा किसको
रूठ जाँँ तो हमें कौन मनाने आए

वास्तव में यह कहानी एक साहित्यिक फ़क़ीर की कहानी है, जो भले ही स्वयं को बेफ़ैज़ (अनुपयोगी) कहता हो, लेकिन उसकी उपयोगिता उसके उन चंद साथियों से पूछी जानी चाहिए, जो उससे मिले बग़ैर रह नहीं सकते थे, उससे बातचीत किए बिना अपने को अधूरा समझते थे। हाँ, ग़ज़ल का पहला शेर अवश्य ही आज की बदलती परिस्थितियों की व्यथा कहता है, जब हर आनेवाला अपने सुख-दुख की बात तो करता है, लेकिन शायर के घर का हाल नहीं जानना चाहता।

किंतु जब मैंने उसका हाल जानना चाहा, उसकी जिंदगी के उन हिस्सों से परिचित होना चाहा, जो केवल उसे मालूम थे तो मुझे दो-चार नहीं, कई महीनों की लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ी। ऐसा लगा कि उसे अपनी बात बताने में कोई दिलचस्पी नहीं है, वह तो केवल काम किए जा रहा था, लिखे जा रहा था—ऐसा साहित्य जो असामान्य है, असाधारण है, अद्वितीय है, विलक्षण है। उस शायर का नाम है निश्तर ख़ानकाही। (असली नाम अनवार हुसैन जो कुछ ही लोगों को पता है।)

श्री निश्तर ख़ानकाही का जन्म बिजनौर के ग्राम जहानाबाद में हुआ था, जहाँ गंगा की धारा गाँव से 50-100 गज़ के फ़ासले पर ही बहती है।

जब मैंने जनाब निश्तर ख़ानकाही से उनके अपने जीवन की किताब के कुछ पुराने पन्ने खोलने के लिए कहा तो वे कुछ देर के लिए मौन हो गए, मानो सात दशक की लंबी अवधि पर फैली हुई धूल को साफ़ कर उसके भीतर झाँकने का प्रयास कर रहे हों। फिर उन्हें याद आता है पाँच वर्ष का वह बालक, जो गंगा नदी के तट पर स्थित अपने गाँव के मकान में खुले आकाश के नीचे अपनी माँ के अंक में समाया हुआ कभी चाँद-सितारों को निहारता था, कभी सितारों को देखकर उन शब्दों को बोलने की कोशिश करता था, जिन्हें वह अभी पूरी तरह सीख नहीं पाया था। माँ के शरीर से निकलती 'सुगंध' और अधरों से निकलते लोरी के

बोल उसे गहरी नींद सुला देते थे, किंतु उसके अंदर छिपे कलाकार को बार-बार जाग्रत कर देते थे। कितनी दिलचस्प बात है कि वह बालक बूढ़ा होने तक लगातार सोता रहा, परंतु उसके भीतर का कलाकार कवि इस अवधि में शायद ही एक पल के लिए सो सका हो। वह निरंतर जागता रहा, एक पल के लिए भी आँखें मूँदे बिना।

माँ की लोरी का वह मीठा स्वर धीरे-धीरे उनकी शायरी या काव्य-जीवन का आधार बनता गया। फ़ारसी की विदुषी माँ ने बचपन में ही अपने अनवार को फ़ारसी के महान शायरों—हाफ़िज़ शीराज़ी, सादी और नज़ीरी—का काव्य कंठस्थ करा दिया था। भोर होते ही जो प्रार्थना उससे पढ़वाई जाती थी, उसका पहला शेर इस प्रकार था—

करीमा व बख़्शाए बरहाले मा
कि हस्तम असीरे कमंदे हवा

अर्थात्, ऐ दयालु परमेश्वर, तू हमारी दशा पर दया कर, क्योंकि हम अभी तक लोभ, लालच और स्वार्थ की जंजीरों में जकड़े हुए हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जनाब निश्तर ख़ानकाही की माँ फ़ारसी की विदुषी थीं। उन्होंने यूनानी चिकित्साशास्त्र का अध्ययन फ़ारसी के माध्यम से किया और फ़ारसी भाषा में ही शायरी की। उनका एक ग़ज़ल-संग्रह भी था, जो निश्तर साहब के दुर्लभ पुस्तकालय के साथ ही नष्ट हो गया। उनकी ग़ज़लों के कतिपय शेर भी उन्हें याद थे। किसी एक ग़ज़ल का आख़िरी शेर इस प्रकार है—

रास्त अस्त ऐ 'सयैदा' बे इश्तबाह
दर गुलिस्ताँ हैच गुल बेख़ारनेस्त

(ऐ सयैदा, यह एक ऐसी सच्चाई है, जिस पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि संसार में कोई उपवन ऐसा नहीं, जिसमें काँटा न हो)

निश्तर साहब आठ वर्ष की अवस्था में गाँव छोड़कर बिजनौर आ गए, जो उस समय एक क़स्बे से बड़ा नहीं था और अँग्रेज़ी विद्यालय में दाख़िला ले लिया। इतनी छोटी अवस्था में ही उर्दू व फ़ारसी साहित्य के प्रति उत्कट लगाव उनमें पैदा हो गया था। परिणामतः, शायरी से संबंधित जितनी भी पुस्तकें उपलब्ध थीं, सब पढ़ डालीं। हालत यह होती थी कि किसी एक पुस्तक को रात में लेकर बैठे तो सुबह तक बिना करवट लिए उसे निरंतर पढ़ते रहे। जनाब निश्तर साहब ने बताया था—'यदि आप झूठ न मानें तो बताऊँ कि उस अवस्था में लाखों की संख्या में उर्दू अशआर मुझे याद थे। शायर हुए बिना ही स्कूल के टीचर मुझे ग़ालिब कहकर पुकारने लगे थे।'

जनाब निश्तर ने 9 वर्ष की अल्पावस्था में शायरी आरंभ कर दी थी। इस विषय में जब मैंने विस्तार से जानना चाहा तो उन्होंने बताया—'शायरी पढ़ने का चस्का तो काफ़ी पहले लग गया था, किंतु अभी तक शायरी की न थी। एक दिन अपने मकान की छत पर पतंग उड़ा रहा था। मेरा एक संबंधी युवक भी साथ में था। पतंग उड़ाते-उड़ाते कहने लगा कि चलो आज ग़ज़ल कहते हैं। हम लोगों ने पतंग उड़ाना छोड़ा और ग़ज़ल कहनी शुरू की। दस मिनट में मैंने 7 शेर कह डाले। उनमें से अंतिम शेर आज भी याद है। बच्चों की शायरी है, फिर भी आप सुन लें—

करम में भी खुश है, सितम में भी शादाँ
बहर तौर 'निश्तर' गुलाम आपका है।

शेर सुनते ही मैंने निश्तर साहब को रोका। 'जनाब, इसमें तो आपके उपनाम का भी प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि आपने शेर लिखने से पहले अपना उपनाम सोच लिया था? इस पर उन्होंने उत्तर दिया—'हाँ, शेर लिखने से पहले यह समस्या पैदा हुई कि हम लोग अपना उपनाम क्या रखें। मेरे मित्र ने सुझाया कि अपना उपनाम 'निश्तर' रखो। बस उसी वक़्त से मेरा नाम निश्तर हो गया। इस घटना के बाद ग़ज़ल कहने का चस्का बढ़ता ही गया।

जनाब निश्तर ख़ानक़ाही देश के चोटी के शायरों में गिने जाते हैं। उन्होंने कितने ही नौजवानों को शायरी करना सिखाया, क़लम पकड़कर उन्हें लिखना सिखाया, उनकी रचनाओं में महत्त्वपूर्ण संशोधन किए, किंतु एक समय ऐसा भी था, जब हमारे चरितनायक को भी अपनी रचनाओं के संशोधन (इस्लाह) के लिए किसी उस्ताद की तलाश थी। सौभाग्य या दुर्भाग्य से उन्हें कोई ऐसा उस्ताद न मिला, जो उनकी बात समझता और ठीक सलाह देता।

शेर कहने का जब कुछ अभ्यास हो गया तो किशोर निश्तर उर्दू के एक स्थानीय शायर के पास पहुँचे और अपनी ग़ज़ल संशोधन-हेतु उन्हें दी। उन्होंने बताया—'मुझे अब भी याद है कि उनके घर तक पहुँचते-पहुँचते मेरे पैर काँप रहे थे। मुझे लग रहा था कि एक महान् व्यक्ति के पास आया हूँ। भय और दहशत के कारण मेरा शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। डरते-डरते अपनी ग़ज़ल उनके सामने पेश की। उन्होंने क़ाज़ मेरे हाथ से लिया। एक नज़र देखा, तेवरी पर बल पड़े और लगभग चीख़कर बोले—'बरखुरदार, शायरी गधे का घास चरना नहीं है। घर जाओ और अपने स्कूल की किताबें पढ़ो।' आवाज़ इतनी कठोर थी कि मेरा दिल धड़कने लगा और आँखों में बेसाज़ता आँसू आ गए। निराश-सा घर लौटा और निर्णय लिया कि कुछ और अभ्यास करके किसी दूसरे उस्ताद की शरण लूँगा।

और फिर नया पढ़ने-लिखने के साथ ही नए उस्ताद की खोज आरंभ भी हो गई। यह दास्तान जनाब निश्तर ने इस तरह सुनाई थी—'कुछ दिन बाद एक और स्थानीय शायर के पास अपनी ग़ज़ल लेकर पहुँचा। उन साहब ने दिल बढ़ाया। प्यार से बैठने के लिए कहा। ग़ज़ल रख ली और हुक्म दिया कि कल आना और अपनी ग़ज़ल ले जाना। मैं इस्लाह कर दूँगा। दूसरे दिन जब उन साहब के पास पहुँचा तो जो ग़ज़ल उन्होंने मुझे दी, वह मेरी नहीं थी। उस ज़मीन में चंद शेर उन्होंने कह दिए थे। मैं चुपचाप उठ आया। बाहर आकर वह ग़ज़ल फाड़कर फेंक दी और तीसरे उस्ताद की खोज आरंभ कर दी।'

कुछ समय और बीता। इस बीच निश्तर ने उर्दू-फ़ारसी के पुराने शायरों से लेकर आधुनिक शायरों तक को पढ़ डाला। हद यह थी कि बिजनौर जैसे छोटे नगर में रहकर भी उन्होंने उर्दू के अत्याधुनिक शायरों—मीरा जी तथा नूनमीम राशिद तक की रचनाएँ पढ़ ली थीं, और वह भी किशोरावस्था में। साथ ही उन्होंने उर्दू शायरी की पुरानी शैली को त्यागकर नए ढंग से शेर कहने आरंभ कर दिए।

उस्ताद बनाने की तीसरी घटना तो और भी रोचक है। जिन तीसरे शायर को वे अपना उस्ताद बनाने की बात सोचते थे, वे कचहरी रोड पर अपना होटल चलाते थे। उन बुजुर्ग शायर के यहाँ प्रातः स्थानीय और बाहर के शायरों का जमघट लगा रहता था। शेर-ओ-शायरी पर

मामूली चर्चा भी होती थी। और एक शाम जनाब निश्तर उनके होटल पर भी पहुँच गए। आगे का हाल उन्हीं के शब्दों में—‘जब वहाँ पहुँचा तो बहुत से शायर विराजमान थे। एक शायर अमरोहे के भी थे। मुकद्दर का मारा मैं भी चुपचाप इन बुजुर्ग शायर के पायताने बैठ गया। जब सब लोग अपना-अपना कलाम सुना चुके तो एक साहब ने कहा—‘इन बरखुरदार से भी कुछ सुन लो। ये भी कुछ लिखते-लिखाते हैं।’

मुझे याद है कि मैंने इस महफ़िल में अपनी एक छंदहीन नज़्म सुनाई, जिसका शीर्षक था ‘चोर’। अभी नज़्म समाप्त भी नहीं हुई कि जोर का ठहाका लगा और वे बुजुर्ग शायर, जिन्हें मैं अपना उस्ताद मानने निकला था, बड़े व्यंग्यात्मक लहजे में बोले—‘मियाँ, यह क्या ‘बहरे-रबड़’ में लिखकर लाए हो? शायरी बस की बात नहीं तो लिखते क्यों हो?’ सच कहता हूँ कि उस समय मैं आँसुओं से रो पड़ा। पहली बार तो आँसू छलके ही थे, इस बार तो तेज़ी से बह रहे थे। तब मैंने फ़ैसला किया कि अब मेरा उस्ताद केवल मेरी किताबें होंगी।’

इसके बाद तो साहित्य और साहित्य से संबंधित जितनी पुस्तकें मिलती रहीं, निश्तर उन्हें दिन-रात पढ़ते रहे। एक समय वह भी आया कि उनकी माँ तथा निकटतम संबंधियों को यह आशंका होने लगी कि वे पढ़ते-पढ़ते अपना स्वास्थ्य न खो बैठें, इसलिए उन्हें शाम को दो घंटे खेलने के लिए विवश किया गया, ‘किंतु पहली बार मुहल्ले के लड़कों की एक टीम में जब मुझे कबड्डी खेलने के लिए भेजा गया तो पहली ही पकड़ में अपना कंधा तुड़वा बैठा। सब लोग इस बात से परेशान हुए, लेकिन मैं संतुष्ट था कि अब कुछ समय लेते-लेते पढ़ने का अवसर मिलेगा।’

स्वस्थ होने पर उन्हें एक हॉकी खरीदकर दी गई और आदेश हुआ कि वे रोज़ खेलने जाएँ। खेलने में रुचि तो थी नहीं, लेकिन जाने की मजबूरी थी। कुछ ही दिन खेलने गए होंगे कि एक दुर्घटना ने इस बंदिश से भी मुक्ति दिला दी। ‘विरोधी खिलाड़ी की गेंद जब जोर से मेरे टखने पर आकर लगी तो हफ़्तों बिस्तर का बोझ बना रहा। सभी जान गए कि मैं मैदान का आदमी नहीं, बस किताब का कीड़ा हूँ। ऐसे में मुझे मेरे हाल पर छोड़ दिया गया।’

हाई स्कूल की परीक्षा देकर कुछ कर गुज़रने की उमंग में दिल्ली चले गए। 17 वर्ष के युवक में केवल एक सपना था कि उसके चारों तरफ़ किताबें हों और वह उन्हें पढ़ता ही रहे, पढ़ता ही रहे। लेकिन दिल्ली में कोई उपयुक्त काम न मिल सका, इसलिए दो महीने की फ़ाक़ामस्ती की ज़िदगी गुज़ारकर वापिस बिजनौर आना पड़ा। इंटरमीडिएट की परीक्षा के बाद उर्दू के प्रसिद्ध पत्रकार जनाब हमीदुल अंसारी गाज़ी से परिचय हुआ। परिणामतः 20 वर्ष की अवस्था में बंबई जाकर ‘जम्हूरियत’ दैनिक समाचारपत्र में काम मिला, किंतु एक दुर्घटना में पिता का देहांत हो जाने के कारण बंबई से भी लौटकर आना पड़ा। साल-डेढ़ साल बाद दिल्ली की साहित्यिक सरगर्मियों ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया और उन्हें उर्दू की प्रसिद्ध प्रगतिशील पत्रिका ‘शाहराह’ के संपादन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन दिनों हिंदी और उर्दू के कितने ही विशिष्ट लेखकों से उनका संपर्क हुआ, जिनमें जोश मलीहाबादी, साहिर लुधियानवी, फ़िक्र तोंशवी, क़तील शिफ़ाई, कुमार पाशी, मज़हर इमाम, अमीक हनफ़्री, सागर निज़ामी, मख़मूर सईदी, महमूद हाशमी, बानी, जुवैर रिज़वी, सुलेल अजीमाबादी, क़ुशनचंदर, प्रकाश पंडित, नरेशकुमार शाद, देवेन्द्र सत्यार्थी, देवेन्द्र इस्सर, भीष्म साहनी जैसे कितने ही साहित्यकार, शायर

व कवि थे।

अक्सर साहित्यकारों के साथ शामें प्रायः मौज-मस्ती में व्यतीत होती थीं। कभी साहित्यिक गोष्ठियाँ, कभी मिलन-गोष्ठियाँ और कभी केवल घुमक्कड़ी। एक शाम का जिक्र करते हुए जनाब निश्तर ने बताया—‘फ़िक्र तोंशवी मेरे दफ़्तर आए। बोले—‘प्यारे दस रुपए निकालो।’ मेरी जेब में तो रुपए थे नहीं। तय हुआ कि क़र्जा माँगने निकलते हैं। दोनों ने अपने-अपने दोस्तों की लिस्ट बनाई। पहले फ़िक्र तोंशवी ने अपने दोस्तों की आजमाइश की। जहाँ भी जाते दोस्तों की आर्थिक परेशानियों की दास्तान सुनने को मिलती। इस स्थिति में अपनी बात कहने की अपेक्षा वहाँ से उठ आना ही बेहतर होता। शाम तो किसी प्रकार बीत गई। अगली सुबह का ‘मिलाप’ आया तो उसमें फ़िक्र का लेख छपा था, ‘हम क़र्जा माँगने निकले।’ यह कालम फ़िक्र ‘प्याज़ के छिलके’ के नाम से उस समय भी लिखते थे और बाद में भी निरंतर लिखते रहे।’

दिल्ली ने भले ही आर्थिक साधन जुटाने में कोई मदद न की हो, किंतु अच्छे दोस्तों, शायरों और साहित्यकारों का माहौल अवश्य दिया, नया लिखने की प्रेरणा भी दी।

कुछ समय बाद निश्तर साहब ने ‘शाहराह’ छोड़ दिया और ‘बीसवीं सदी’ का संपादन किया, किंतु उसके मालिक जनाब खुशतर गिरामी से किसी बात पर अनबन हो गई, इसलिए ‘बीसवीं सदी’ में काम करना बंद कर दिया। तभी कुछ दोस्तों ने ‘मुशाहिदा’ नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इसका संपादन भी निश्तर ख़ानक़ाही ने किया। यह पत्र साल-डेढ़ साल की छोटी-सी अवधि तक ही प्रकाशित हो सका।

दिल्ली की ज़िंदगी के अनेक रंगदार-क्रिस्से हैं, दोस्ती और फ़ाक़ामस्ती की अनेक दास्तानें हैं, सुविधाओं और दुविधाओं की अनेक यादें हैं। दिल्ली जैसी विशाल नगरी में जहाँ ऊँचे-ऊँचे आलीशान भवन हैं तो उसकी अँधेरी तंग गलियों में अनेक ऐसी कोठरियाँ भी हैं, जिनमें मेहनतकश अपने जीवन के संघर्ष-भरे दिन गुज़ारते हैं। ऐसी ही एक कोठरी में हमारे शायर को बसेरा मिला था। कहाँ तो बचपन का गाँव, जिसमें खुला आकाश, दूर तक फैला हरा मैदान, किनारे बहती गंगा की धारा, ऊपर चाँद और नीचे झिलमिलाता रेत का विस्तार, ऐसा वातावरण जिसमें मामूली आदमी भी शायर हो जाए, और कहाँ तंग गलियों का आँगन-रहित छोटा-सा कमरा, जिसमें केवल एक खिड़की थी, आसमान की तरफ़ झाँकती हुई। ऐसे में बादल के टुकड़े को पकड़ने और छूने की लालसा कितनी बलवती हो उठती होगी। शायद ऐसे ही प्रसंग में मन की उड़ानों को सँजोए शायर कह उठता है—

सर पे एक छोटा-सा टुकड़ा गर्द में लिपटा हुआ

मैंने बचपन में तो ऐसा आस्माँ देखा न था

इस प्रकार, लगभग 16 वर्ष तक दिल्ली की विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से हिस्सा लेकर और वहाँ के सारे वातावरण को अपनी उपस्थिति से महकाकर एक बार फिर निश्तर को बिजनौर लौटकर आना पड़ा। इस बार शारीरिक कारण मुख्य था। गठिया के प्रकोप के कारण उठना-बैठना मुश्किल हो गया, अतः दिल्ली की भागती ज़िंदगी में संघर्ष करना संभव भी न था।

गाँव आने पर साहित्यिक जीवन से संन्यास लेने का निर्णय किया। इसके पीछे क्या

मजबूरी अथवा विवशता थी, पता नहीं किंतु निश्चर ने बहुत दिनों तक कुछ न लिखा। एक दिन उनकी माँ ने टोका—‘क्यों, लिखना-लिखाना बिल्कुल छोड़ दिया?’ उत्तर में जब निश्चर ने कहा—‘मैं साहित्यिक जीवन से बिल्कुल निराश हो चुका हूँ और कलम से रोटी खाने का फ़ैसला मैंने ग़लत किया था।’ तो माँ ने उस फ़ारसी कवि के जीवन की प्रेरक घटना निश्चर को सुनाई, जो एक दिन में केवल डेढ़ रोटी लिया करता था। आधी स्वयं खाता, आधी किसी भिखारी को दे देता और आधी अपने उस छोटे बेटे को खिला देता, जिससे बुढ़ापे से उसे वापसी की आशा थी। इस प्रकार सिर्फ़ आधी रोटी खाकर साहित्य-सर्जना करनेवाले शायर के जीवन की घटना ने निश्चर का साहस बढ़ाया और उन्होंने स्वयं को एक बार फिर साहित्य-सेवा में लगा लिया।

इतने लंबे साहित्यिक जीवन में भी निश्चर का इतना कम साहित्य क्यों उपलब्ध है? यह प्रश्न सहज जिज्ञासा का विषय है। इसके पीछे दो कारण हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं की कोई प्रति अपने पास नहीं रखी। आकाशवाणी से प्रसारित होनेवाली अथवा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाली रचनाओं—रूपकों, कहानियों, लेखों, नज़्मों अथवा ग़ज़लों—की प्रायः कोई प्रति उनके पास नहीं है। दूसरा कारण तो और भी कष्टप्रद है। उन्हीं के शब्दों में—‘उस्तादों की तलाश से निराश होकर जब मैंने अभ्यास और पुस्तकों को अपना गुरु माना तो हर साल रचनाओं का एक बड़ा संग्रह तैयार हो जाता, किंतु मैं हर साल स्वयं उसे आग लगा देता। यह सिलसिला लगभग 20 वर्ष तक चलता रहा। हर पांडुलिपि 500 से 700 पृष्ठ तक की होती थी।’

जिंदगी की बहुत सारी उलझनों और परेशानियों से दो-चार होते हुए समय अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ता रहा। यहाँ पर हम निश्चर के साहित्य में झाँकने का प्रयास करें तो हमारे सामने उनका केवल वही साहित्य शेष है, जो आग को समर्पित होने से बचा रहा। वह सात काव्य-पुस्तकों के रूप में सामने है—मेरे लहू की आग (1974), दस्तरस (1977), सराय में शाम (1987) मंज़र-पस-मंज़र (1933), ग़ज़ल मैंने छेड़ी (1997), मालूम-नामालूम (2003), लहू रोशन हुआ (2007)।

निश्चर ख़ानकाही की शायरी की विशेषता है—अपने आप और अपने समय के व्यक्ति की लगातार खोज, एक ऐसी खोज जो उनके समय के किसी अन्य शायर में मुश्किल से देखने को मिलती है। महमूद हाशमी जैसे प्रसिद्ध समालोचक ने उनकी शायरी की समीक्षा करते हुए लिखा है कि ‘डाली’ के चित्रों और वुवेलियर की कविताओं के समान निश्चर की शायरी पढ़ते हुए जिस दहशत और भय का अनुभव होता है, उसे समझना आसान नहीं है। हम लोग साधारण घटनाओं और कल्पनाओं के बीच जीवित रहते हैं, जबकि निश्चर ख़ानकाही ने हमारी दुनिया का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह ऐसी भयंकर सच्चाई है, जिसका सामना करना आसान नहीं है—

आज फिर कमरे की छत नीचे उतर आई बहुत
आज फिर नज़दीक़तर बिस्तर से दीवारें हुईं

बचपन में निश्चर ने उर्दू ग़ज़ल के जितने शायरों को पढ़ा था, उनमें मीर, ग़ालिब, दाग़ से लेकर बाद के बहुत से शायरों तक को पढ़ने के बाद उनके मन में निरंतर एक प्रश्न बना रहता था कि ऐसे तमाम अनुभव और ऐसी सभी भावनाओं को व्यक्त करना, जिनको शायर-कवि ने स्वयं प्राप्त नहीं किया, जिन अनुभवों के बीच से वह स्वयं नहीं गुज़रा है, उन्हें

परंपरागत ढंग से व्यक्त करना क्या सच्ची और अच्छी शायरी हो सकती है? यह विचार फ़ानी को पढ़ते समय और प्रबल हो गया। उन्हीं दिनों कुछ और आवाज़ें भी कानों में पहुँच रही थीं, जो शायर के लिए अधिक आकर्षक थीं—जैसे जोश और इक्रबाल की आवाज़ें या प्यार मुहब्बत में अख़्तर शीरानी का लहजा अथवा जनवादी कवियों में अहसान दानिश का स्वर। निश्चय को यह बात स्वीकार है कि 'मैं कभी एक आवाज़ की ओर आकर्षित होता तो कभी दूसरी की ओर। लेकिन इससे मेरी आत्मा संतुष्ट न होती थी। मैं एक ऐसे मार्ग की तलाश में था, जिसे अपना मार्ग कह सकूँ।'

उन्हीं दिनों प्रगतिशील साहित्य की चर्चा भी ज़ोरों पर थी। सरदार जाफ़री, साहिर लुधियानवी, जाँ निसार अख़्तर, कैफ़ी आजमी, वामिख जौनपुरी की लंबी-लंबी क्रांतिकारी नज़्में अक्सर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। निश्चय भी उन्हें चाव से पढ़ते थे, किंतु उन्हें महसूस होता था कि लीक से बँधकर चलना या फ़ार्मूले से जुड़कर शायरी करना उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं है। 'यह वह युग था कि मैं शेर कहने से ज्यादा शायरी की समस्याओं पर विचार कर रहा था और धीरे-धीरे यह महसूस करने लगा था कि विचारों और अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से अगर शायर या उसकी शायरी आत्मनिर्भर नहीं है, वह शुद्ध और बड़ी शायरी की ऊँचाइयों को नहीं छू सकेगी।' आत्मनिर्भरता से निश्चय का अभिप्राय यह है कि लिखनेवाला चीज़ों को अपने तौर पर महसूस करके, अपने तौर पर सोचकर, अपने ढंग से व्यक्त कर रहा हो। यह ज़रूरी नहीं है कि एक विचार या एक अनुभव कई दूसरे समकालीन कवियों-शायरों द्वारा व्यक्त न हो, किंतु शायर या कवि का सोचने और व्यक्त करने का अपना अंदाज़ हो। इस विषय पर विचार करते समय उस महान् रचयिता की कलादक्षता पर ईर्ष्या हो सकती है, जिसने मानव-आकृति को समान रूप से ढाला है, फिर भी एक-दूसरे के बीच पहचान का गुण बनाए रखा है। निश्चय ने प्रयत्न किया है कि शब्दावली और अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से उनकी शायरी—'जहाँ तक संभव हो सके, आत्मनिर्भर बन जाए।'

यहीं पर निश्चय ने यह भी अनुभव किया है कि शायर और कवि का सारा वैशिष्ट्य मानव और मानव-जीवन के गहन अध्ययन का है, क्योंकि आदमी जैसा कुछ सामने से दिखाई देता है, उससे बहुत अधिक भिन्न अपने भीतर से है और तब उन्होंने अपने जैसे दूसरे इंसानों की खोज का काम शुरू किया—'यह तो नहीं कह सकता कि अनजानी दुनिया की इस खोज में मुझे क्या सफलता मिली है, किंतु विश्वास के साथ यह कह सकता हूँ कि मैं साहित्य की दुनिया का एक ऐसा कोलंबस हूँ, जो निरंतर अंधे समंदरों की यात्रा कर रहा है और कह नहीं सकता कि उसकी नौका किस तट पर रुकेगी?'

कल तक तो फ़क़त तेरे तकल्लुम पे फ़िदा था

अब अपनी ही आवाज़ की पहचान में गुम हूँ

वास्तव में शायर कल तक दूसरों की अभिव्यक्ति में मगन था, किंतु आज अपनी ही आवाज़ को पहचान पाने में स्वयं को अक्षम अनुभव कर रहा है।

निश्चय की शायरी वास्तव में इंसान की खोज की शायरी है, जिसमें वह सामाजिक स्तर पर मानव-जीवन के दोगलेपन, नैतिक मूल्यों के पतन, पुराने सांस्कृतिक संदर्भों की टूटन, नई चीज़ों के जन्म न लेने की उलझन, आधुनिक समाज की विसंगतियों, पीड़ा, संत्रास, घुटन, टूटते

रिश्तों की खोज करता है तो दूसरी ओर व्यक्तिगत स्तर पर अपने अनुभवों को भी अभिव्यक्त करता है। उसकी शायरी मात्र सामाजिक उलझाव की शायरी नहीं है, व्यक्ति-संबंधों की खोज और उसके चित्रण की शायरी भी है।

आज का सामाजिक परिवेश दिखावे और कृत्रिम संबंधों पर आधारित है। आज के इंसान का यह गुण है कि वह अंदर से हो न हो, लेकिन उसे बाहर से सबका विश्वासपात्र दिखाई देना चाहिए—

वो किसी का भी न था लेकिन था सबका मोतबर
कोई क्या जाने कि उसमें इक हुनर ऐसा न था
पारस्परिक संवेदना प्रकट करनेवाले दो व्यक्ति आपस में मिलते हैं तो कैसे—
आके अब इस खोखलेपन पर हँसें बेसाख़ता
मेरे आँसू तैशुदा थे, तेरा ग़म सोचा हुआ
वास्तव में इस खोखलेपन पर केवल हँसा ही जा सकता है, क्योंकि अब तो प्यार भी व्यवसाय के स्तर पर उतर आया है—

ग़ैब की तरह न खुलना है महारत उसकी
बरमला प्यार का इज़हार है पेशा उसका
परिस्थितियों के बदलाव के इस युग में बाह्य और कृत्रिम सौंदर्य की खोज में भटकता हुआ मानव सही और ग़लत की पहचान भी भूलता जा रहा है। सौंदर्य का बाह्य आवरण उसे अपनी ओर आकर्षित करता है, आंतरिक कुरूपता और अनुपयोगिता पर वह विचार ही नहीं करता। वह केवल सुंदर को देखना चाहता है—चाहे वह सुंदर 'शिव' न हो। ऐसी परिस्थिति पर शायर कल्पना करता है—

मेरे बदन पर अब तो आँखें-आँखें बाकी हैं
ज़हर हो चाहे जितना क्रांतिल रंग सुनहरा हो
परमाणु युग के इस गतिशील समाज में, जिसमें हम अपना जीवन जी रहे हैं, दो तरह के लोग स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। एक वे जो मशीन के साथ स्वयं मशीन बन गए हैं और दूसरे वे जो मशीन की सत्ता को तो स्वीकार करते हैं, किंतु किसी भी प्रकार मानव के अस्तित्व व अधिकार को बचाए रखने का प्रयास कर रहे हैं। यह मानव मशीनों की भीड़ कम होने की प्रतीक्षा कर रहा है ताकि मानव-प्रवृत्तियों का अस्तित्व सुरक्षित रखा जा सके। किंतु सोचने पर उसे महसूस होता है कि वह एकदम नासमझ है। इस युग में भीड़ कम होने का इंतज़ार करना ही सबसे बड़ी नासमझी है। उसे तो भीड़ के बीच से ही कोई-न-कोई मार्ग खोज निकालना होगा। ऐसे ही मानव की ओर से शायर की आवाज़—

भीड़ कुछ कम हो तो मैं आगे बढ़ूँ सोचा ये था
यानी मुझसे नासमझ को रास्ता देता भी कौन
हार्दिक संबंधों के बीच में भी उपयोगिता की दीवार एक ऐसी विभाजन-रेखा खींचे हुए है कि एक मित्र दूसरे मित्र को उसी प्रकार से परखकर देखता है, जैसे कोई ग्राहक उपयोग की किसी वस्तु को परखकर देखता है, जबकि दावा वह दोस्ती का करता है—
तोलता था इक को इक अशया-ए-मसरफ़ की तरह

दोस्ती थी और अंदाजे-नज़र ऐसा भी था

शायर निश्चय यह देखता और पढ़ता चला आ रहा है कि घर के, संबंधियों के, परिचितों के और दोस्तों के सभी रिश्ते छिन्न-भिन्न होते जा रहे हैं। संबंधों के बिखराव पर हिंदी और उर्दू में इतना अधिक लिखा गया है कि कभी-कभी यह अत्युक्ति जैसा प्रतीत होने लगता है और ऐसा विचार भी उत्पन्न होता है कि इस बिखराव और टूटन को एक कड़वे सच की तरह क्यों न स्वीकार कर लिया जाए? यहाँ शायर फ़ैशन के तौर पर इन विषयों को दुहरानेवाले लेखकों से स्वयं को अलग कर लेता है और ठीक उस पल में, जबकि संबंधों के टूटने की प्रक्रिया चल रही होती है, वह यह सोचता है कि आनेवाले कल में रिश्तों की जो स्थिति होगी, उसका अनुमान आज ही क्यों न कर लिया जाए। आदमी-आदमी के मध्य के अलगाव को शायर ने अपनी नियति स्वीकार कर लिया है—

सिलसिले जो कल बनेंगे, उनका अंदाज़ा करूँ

टूटते रिश्तों को मौसम का तकाजा मान लूँ

निश्चय ने उन लोगों को भी अंदर से टटोलकर देखा है, जो समाज के हित और उसके कल्याण की भरपूर चर्चा करते हैं, किंतु उन्हें लगता है कि उनमें कोई भी तो ऐसा नहीं है, जो क्षणमात्र को भी अपने हित से अलग होकर समाज-हित का विचार कर सकता हो—

खुद को ग़ाफ़िल हो के भी पलभर न खुद को सोचता,

इस भरी बस्ती में कोई बेख़बर ऐसा भी था

शायर उन दिनों की भी याद करता है, जब वादा तोड़ने या भुला देनेवाले व्यक्ति की आँखों में लज्जा का भाव तो उभरकर आता ही था, किंतु आज का आदमी वादा भूल जाता है, क्रसमें तोड़ देता है, वचन भंग कर देता है और उसके चेहरे पर लज्जा या पछतावे की कोई भावना उभरती हुई दिखाई नहीं देती। पहले शायर को यह सोचकर चैन मिलता था कि वादा तोड़नेवाले के चेहरे पर शर्मिंदगी का भाव तो है, किंतु बदलती हुई परिस्थितियों में वह किसी भी मित्र से कोई वादा नहीं करता ताकि उस पीड़ा से बच जाए, जो वादा टूटने से उत्पन्न शर्मिंदगी को न पाकर होती है। वह कह उठता है—

वह जो कुछ आँखों में था, रंगे-नदामत अब नहीं

लाख अब उससे मिलूँ लेकिन कोई वादा न लूँ

आज की दोस्ती आवरण की दोस्ती है, मुखौटों की दोस्ती है, उपयोगिता की दोस्ती है। हर 'दोस्त' परिस्थिति के साथ-साथ अपने रंग-ढंग बदलता रहता है। ऐसे में शायर का दृष्टिकोण है कि अच्छा यही होगा कि हम हर दिन उसके व्यक्तित्व की समीक्षा करते रहें—

रोज़ वह करता रहे, तब्दील अपनी रंगतें

रोज़ उसकी शिखरयत का तज़्ज़िया करते रहो

दोस्ती और दोस्तों से मिलनेवाली पीड़ा पर निश्चय ने बड़ी गहराई से विचार किया है। लगता है कि उसने अपने दोस्तों के लिए स्वयं को अर्पित कर दिया, किंतु दोस्तों से उसे वही मिला, जो वर्तमान समाज की प्रवृत्ति या मनःस्थिति के अनुसार उसे मिलना चाहिए था। ऐसा नहीं है कि निश्चय को इस सारी परिस्थिति को देखकर दुःख न होता हो—फिर दुःख-सुख तो मानव की सहजात प्रवृत्ति है। आज की दोस्ती क्या है? भादों की धूप है, जो तेज़ी से चमकती

है और कुछ देर में समाप्त हो जाती है। तन का पसीना है—शरीर पर आता है और बिना किसी संकोच के पोछ दिया जाता है—

कर चुकी गुम अपना सब पहला करीना दोस्ती
दोपहर भादों की है, तन का पसीना दोस्ती

प्रगति की दौड़ में हर व्यक्ति आगे बढ़ रहा है। दुःख केवल इस बात का है कि विकास की सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते हर व्यक्ति पिछली सीढ़ी को भूलता चला जाता है और जब यही पीड़ा किसी दोस्त की हो—

निचली मंजिल के शनासा अजनबी बनते हुए
अपना रुख तब्दील करती जीना-जीना दोस्ती

दोस्त अपने किसी दोस्त पर विश्वास करे, लाजिमी तौर पर यह आवश्यक है, किंतु जब विश्वास की कड़ियाँ स्वार्थ के हथौड़ों से तोड़ दी जाएँ—

भरोसा उसे मेरी यारी का है
हुनर मुझमें मतलब-बरारी का है

जहाँ दोस्त केवल मौसम की सुनाने आते हैं, अपनी ही चर्चा करने में जिन्हें सुख मिलता है, बहुत ज्यादा हुआ तो आपके दुःख पर सहानुभूति का मरहम लगा देना ही जिनका व्यवसाय है, ऐसे किसी दोस्त से कुछ कहना भी तो संभव नहीं—

उससे क्या कहता कि मेरी रूह छलनी हो गई
दोस्त था, इजहार-हमदर्दी से आसूदा हुआ

और ऐसे दोस्त संबंधों की, मित्रता की, प्यार की डोर को आवश्यकता और उपयोगिता के आधार पर जोड़ते-तोड़ते रहते हैं। परिणाम होता है हार्दिक संबंधों का अभाव, आंतरिक सद्भाव का हास और केवल व्यावसायिक परिचय—

टूटती जुड़ती हुई हर लम्हा समझौतों की डोर
और तो कुछ भी नहीं था, उसके मेरे-बीच में

कभी-कभी ऐसी परिस्थिति पर शायर को सहानुभूति भी हो आती है। वह कह उठता है कि मुझ पर नाराज होने से पहले मेरी परिस्थिति को जानना आवश्यक है। मैं तो परिस्थिति की आँधी में तिनके की तरह हूँ—आँधी जिस ओर चाहेगी, मुझे उड़ाकर ले जाएगी—

मैं कि हूँ हालात के तूफ़ान मैं तिनके की तरह
मेरी मजबूरी समझ मुझसे खफ़ा होते हुए

मानव-मूल्यों में होनेवाला पतन शायर को पल-पल दुखी करता है। वह सोचता है कि कभी वह भी वक़्त था कि 'पड़ोसी' के भरोसे पर खुला घर छोड़ जाते थे', किंतु बदलते हुए परिवेश और परिस्थितियों ने नैतिक मूल्यों और मानव-मूल्यों को ही परिवर्तित कर दिया है। जिन मूल्यों को हमने कभी स्वीकार नहीं किया, जिन्हें मायूब कहा, बुरा समझा, आज वही मूल्य हमारी जिंदगी के 'स्टैंडर्ड' बन गए हैं—

आख़िर-आख़िर अब वही मेयार ठहरा ज़िस्त का
लोग जिस अंदाज़ को मायूब कहते आए थे

निश्चर ने अपनी शायरी में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, उनमें 'रवादारी' भी एक ऐसा

ही प्रतीक है, जो नए युग के संदर्भों में नए अर्थ ग्रहण कर चुका है। आज रवादारी यह है कि हम न चाहते हुए भी दूसरों का स्वागत करें और यह दिखाने का प्रयास करें कि हमारे मन में तुम्हारे लिए प्यार और अपनत्व का गहरा भाव है। किंतु यह कृत्रिम रवैया भी देर तक आदमी का साथ नहीं देगा। हवा तेज है और रवादारी का पर्दा उड़कर वास्तविकता को उद्घाटित कर देगा—

हवा के रुख को रवादारियों का पर्दा क्या
वह आज दोस्त है, इक दिन ख़फ़ा तो होगा ही

यहीं पर निश्चर ने विचार किया है कि दूसरों के रवैये की आलोचना करने से अच्छा तो यही होगा कि मैं अपने-आपको ही बदल लूँ—

कहाँ तक उसके रवैये पे नुक्ता-चीनी अब
बदल सकूँ तो खुद अपना मुआमला बदलूँ

भौतिकवादी और भाग-दौड़ से भरे इस जीवन में सुख पिघलते जा रहे हैं—मानो पीड़ा और संत्रास के रूप में ढलते जा रहे हों। अब तो चैन की नींद सोकर सुख के सपने देखना भी संभव नहीं रहा है। शायर सोचता है कि दिन के उजाले और सूरज की धूप में वह सो नहीं सकता, अतः सपने देखना संभव नहीं है, किंतु रात भी उसके सपने को सजा नहीं पाती। बिजली की चकाचौंध कर देनेवाली रोशनी में वह सपनों का उपहार लिए हुए इस प्रतीक्षा में है कि जीवन की समस्याओं से जूझनेवाला व्यक्ति क्षणभर को सोए और वह सपनों का मीठा रस उसकी आँखों में घोल दे, किंतु हर घर में बिजली के शक्तिशाली बल्ब पीले सूरज की तरह नींद का मार्ग रोके खड़े हैं। जिंदगी की भाग-दौड़ उसे सोने नहीं देती, इसलिए वह अपने सपनों से भी वंचित रह जाता है—

अनगिनत ख़्वाब मुट्ठी में थामे हुए
रात बिजली के तारों पे लटकी रही
जर्द चेहरे पे कंगाल-आँखें लिए
बंद कमरे में सूरज सुलगता रहा

शायर जीवन के पथ पर चलते-चलते एक ऐसी कठोर दुनिया में प्रवेश करता है, जहाँ लोगों की आत्माओं में नितांत सन्नाटा है। न कोई दुख, न कोई सुख, न किसी का इंतज़ार, न किसी की चाहत और न किसी का प्यार। सिर्फ़ एक चुप है, जो पूरी तरह अपने-आपमें केंद्रित है। ऐसे में शायर अनुभव करता है कि इस भावहीन सन्नाटे से तो वे दिन अच्छे थे, जहाँ वियोग की पीड़ा तो थी, इंतज़ार तो था—

उड़ रही है शहरे-जाँ में मुर्दा सन्नाटों की धूल
था गनीमत ऐ ग़मे-मर्गे-तमन्ना इंतज़ार

कभी-कभी ऐसा लगता है कि शायर इंसान के निहित और भीतरी कोनों से बाहर निकलकर पल-पल बनती, फैलती और परिवर्तित होती हुई दुनिया की ओर दृष्टि डालता है। वह देखता है कि जहाँ जंगल थे, वहाँ घर हैं, और जहाँ घर थे, वहाँ महल हैं। जहाँ महल थे, वहाँ पचास मंज़िली इमारतें खड़ी हैं। विरोधाभास तो यह है कि भवनों की वृद्धि के ये आँकड़े जितने अधिक बढ़ते जाते हैं, उतने ही बेघर, बेदर और फुटपाथ पर सोने-रहनेवालों के आँकड़े भी अपनी सीमाओं को तोड़कर बढ़ते जाते हैं। आज की दुनिया के इस विरोधाभास को शायर ने

इस प्रकार वाणी दी है—

इक तरफ़ बढ़ती हुई ख़ानाबदोशी ख़ल्क की

इक तरफ़ मंज़िल-ब-मंज़िल घर पे घर बनते हुए

निश्तर की शायरी की दिशा है—निष्पक्ष कविता का अन्वेषण, ऐसी कविता की खोज जो विश्वास और निराशा दोनों से अलग हो और जिसका संबोधन किसी से न हो—

समंदर में भी शोले उग रहे हैं

यह किस मौसम में मैं पैदा हुआ हूँ

उनके बिंबों और प्रतीकों की ताज़गी सहृदय पाठक को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। घर, शहर, सहरा, दीवार, जंगल, धूप, सूरज, बिजली, साया, पत्थर, पर्वत, पानी, अख़बार कुछ ऐसे प्रतीक हैं, जिनके अर्थ संदर्भ के साथ बदलते रहे हैं। इनके माध्यम से निश्तर ने अपने वर्तमान को पूरी तरह वाणी देने का स्वाभाविक प्रयास किया है। ये वही प्रतीक हैं, जो हमारे आज के जीवन और हमारी परिस्थितियों से सीधे-सीधे जुड़े हुए हैं—

दिल के बहलाने को बाज़ारों में आ जाते हैं लोग

अब तो उसकी चाहतें भी शहर की शामें हुईं

निश्तर का भाषागत दृष्टिकोण भी उनकी शायरी की तरह आधुनिक और जीवंत है। उन्होंने अपनी शायरी में उन सभी शब्दों को निरंतर रद्द किया है, जो लंबे समय से प्रयोग किए जाने के कारण अपने वास्तविक अर्थ खो चुके हैं। अपनी शायरी में उन्होंने केवल उन शब्दों का कलात्मक प्रयोग किया है, जो आज के आम आदमी और उसके जाने-पहचाने व्यवहार को स्पष्ट करने की क्षमता रखते हैं—

अब ये आलम है कि मेरी ज़िंदगी के रात-दिन

सुब्ह मिलते हैं मुझे अख़बार में लिपटे हुए

उपयोगिता के मापदंड पर टिकी हुई इस दुनिया में दूसरों की चाहत, अपनत्व और प्यार की तलाश में जीता हुआ शायर अनजाने और अनगिनत कोनों में फैले हुए अंधकार में भटकता है और दूसरों की खोज में स्वयं को ही खोजने के लिए विवश हो जाता है।

निश्तर की यह शायरी स्वयं को समझने, स्वयं को परखने, स्वयं को खोजने और स्वयं को पाने की शायरी है। इसीलिए वह बेसाख़्ता कह उठते हैं—

आज अपने आपसे मिलकर मैं यह सोचा किया

जैसा होना चाहिए था, आदमी वैसा नहीं

आपको यह बताना बहुत आवश्यक है कि जनाब निश्तर ख़ानक्राही ने काव्य-शैली में विभिन्न विषयों पर पत्र लिखे थे, जो किसी कारण उर्दू में भी प्रकाशित नहीं हुए। ये काव्य-पत्र उन्होंने अपनी युवावस्था में लिखे थे और पत्र-लेखन की शैली तथा अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से उस वक्त, जैसा कि मुझे बताया गया, काफ़ी चर्चित रहे थे। मैंने अनेक बार जनाब निश्तर ख़ानक्राही से आग्रह किया कि वे इनका देवनागरी लिपि में रूपांतरण कर दें, किंतु यह भी संभव नहीं हो सका। कुछ वर्ष पूर्व इन काव्य-पत्रों के कुछ अंश मुझ तक पहुँचे थे, जिनसे इनके महत्त्व और रोचकता का अनुमान सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए—

मेरी बहन!

मैं तुमको अपनी चाहत की सौगात पेश कर रहा हूँ
 तुम्हारी जुल्फों में ता-क्रयामत
 गुलाब के फूल मुस्कराएँ
 तुम्हारी मासूम अँखड़ियों में मुहब्बत की बहार महके
 तुम्हारे होंठों पे ज़िदगी-भर सुहाग का नग्मा-ज़ार चहके
 मेरी बहन! ऐ मेरी अज़ीज़ा!!
 तुम्हारे ख़त से मैं ऐसा महसूस कर रहा हूँ
 कि जैसे तुम अपने जीवन के अगले मौसम से डर रही हो
 तुम्हें कोई फ़िक्र है तो यह है
 कि ज़िदगी के सफ़र में जैसे
 किसी ने रोशन दिवों के बदले
 मुसीबतों के पहाड़ लाकर तुम्हारी राहों में रख दिए हैं
 तुम्हारे और मेरे बीच जैसे
 किसी ने काँटे बिछा दिए हैं।

मगर मैं ना-मुत्मइन नहीं हूँ
 मेरी मुहब्बत का हाथ अब तक
 पहाड़ों, दरियाओं, जंगलों और
 ज़मीं के दामन में पेच खाती तवील राहें अबूर करके
 तुम्हारी जानिब को बढ़ रहा है
 तुम्हारी जानिब, जहाँ हज़ारों उदास चेहरे
 हज़ारों भाई, हज़ारों बहनें
 मेरी मुहब्बत-भरी निगाहों की, मेरी चाहत की मुंतज़िर हैं।

यह काव्य-पत्र एक भारतीय भाई की ओर से अपनी विस्थापित पाकिस्तानी बहन को लिखा गया है। इसमें राजनीतिक, धार्मिक तथा अन्य सभी तरह के भेदभावों से ऊपर उठकर कवि ने अपनी बहन के माध्यम से पड़ोस के सारे भाई-बहनों को प्रेम और अहिंसा का संदेश दिया है। इसमें भारत की उस आवाज़ को ऊँचा किया गया है, जो प्रेम और शांति की भावना से परिपूर्ण रही है। इसी प्रकार श्री ख़ानक़ाही का एक काव्य-पत्र वह है, जो एक सैनिक युद्ध के मोर्चे से अपनी अर्धांगिनी के नाम लिखता है। इसकी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

मेरी मुहब्बत की ख़ूबसूरत, हसीं निशानी
 मेरी रफ़ीक़ा।
 मैं सैकड़ों मील दूर होकर
 तुम्हारी खुशरंग चूड़ियों की रसीली झंकार सुन रहा हूँ
 तुम्हारी 'सिंगर मशीन' अब तक मेरे तख़य्युल में गूँजती है।
 तुम्हारे आँगन में सब्ज़ मेहँदी का पेड़ अब तक
 मेरे ख़यालों में हँस रहा है

गुलाब पर फूल खिल रहे हैं
मैं अपनी आँखों से देखता हूँ
कि घर की दहलीज़ पर अभी तक वो हाथ चरखा घुमा रहे हैं
जिन्होंने फ़ाक्रों-भरी जवानी में क़ौम को आदमी दिए थे
मैं अपने कानों से सुन रहा हूँ
बिसात पर छाज की अभी तक गेहूँ के दाने छलक रहे हैं
हयात का साज़ बज रहा है।

इस पत्र का अंतिम भाग इन पंक्तियों पर समाप्त होता है—

मेरे प्रीतम, मेरी रफ़ीक़ा
मैं दुश्मनों के मुक़ाबले में पहाड़ बनकर डटा हुआ हूँ
मैं लड़ रहा हूँ
मैं लड़ रहा हूँ
मैं आख़िरी साँस तक लड़ूँगा
जुदाइयों की तबील रातों में तुम मेरा इंतज़ार करना
प्यारे बच्चों को मेरी जानिब से गोद में लेके प्यार करना।

इस पत्र में मोर्चे पर युद्ध कर रहे सैनिक के दृढ़ निश्चय और कर्तव्य-पालन का चित्र तो उभरता ही है, साथ ही वे तस्वीरें भी उभरती हैं, जो सैनिक के मन में बसी घर-गृहस्थी की यादों से भरी हैं। ऐसा ही उनका एक काव्य-पत्र मित्र के नाम है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

दोस्त!
यह ख़त मैं तुम्हें रात की तनहाई में
लिख रहा हूँ कि इसी शग़ल के बाइस शायद
मेरी बेचैन तबीयत को क़रार आ जाए
रात ख़ामोश है, सुनसान है, संजीदा है
मैं किसी सोच में डूबा हुआ, उकताया हुआ
एक कुर्सी के सहारे से लगा बैठा हूँ
और आकाश के सागर में सितारों के कँवल
नाचते-नाचते मदहोश हुए जाते हैं

हाँ, ज़रा यह तो बताओ कि तुम्हारे दिल ने
प्यार के रस-भरे गीतों को भुलाया तो नहीं
लड़खड़ाए तो नहीं हैं अभी उम्मीद के पाँव
दिल के दरिया में सलामत हैं उम्रों अब भी
जगमगाती हुई आँखों में तमन्नाओं के फूल

वक्र के हाथ से महफूज रहे हैं कि नहीं

इस पत्र की अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तुम किसी बात को तफ़्सील से लिखते ही नहीं
आज के ख़त से तो इतना भी न मालूम हुआ
फूल कुछ रात की रानी पे खिले हैं कि नहीं
अब के जब दूसरा ख़त भेजो तो यह भी लिखो
मेरी मुमताज़ का क्या हाल है, माँ कैसी है?

निश्तर की शायरी में जो आवाज़ आप सुनेंगे, वह औरों से भिन्न है। प्रस्तुति का अंदाज़ अनोखा है। तजुर्बों की गहराई विशेष रूप से प्रभावित करती है। यह बात बिना किसी संकोच के कही जा सकती है कि अपने युग और इस युग के आदमी पर निश्तर ख़ानक़ाही की पकड़ जितनी मज़बूत थी, उतनी शायद कम ही लोगों की होगी। उन्होंने जीवन को और आदमी को बाहर से नहीं, भीतर से देखा है और उसका वह रूप सामने लाने का प्रयास किया है, जो अभी तक हमारी आँखों से ओझल था।

मैं अपनी बात उनके इस शेर से समाप्त करता हूँ—

जाविया धूप के हमराह बदलता है तेरा
ज़िंदगी है किसी दीवार का साया तू भी



डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

भारतीय साठोत्तर परिदृश्य और हिंदी-व्यंग्य / डॉ० रमेश तिवारी	26
सवैया / डॉ० रामानंद शर्मा	36
उत्तर आधुनिकतावाद एवं हिंदी-कविता / प्रो. शंकर बुंदेले	41
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध : प्रयोग और प्रयोजन / प्रो० आदित्य प्रचंडिया	55
खंड-खंड चाँदनी : आत्मानुभूत क्षणों की यथार्थ अभिव्यक्ति / डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	63
हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण समाज का राजनीतिक चिंतन / डॉ० मंजू देवी	74
डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव की कहानियों में स्त्री-विमर्श और दलित-चेतना / नूतन जैन	78
कल्पना और विज्ञान की सहोपस्थिति लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' का बालसाहित्य / डॉ० रंजना अरगडे	83
क्या रोमन लिपि अपनाने से ही हिंदी बचेगी / डॉ० परमानंद पांचाल	89
भक्त चरणदास के साहित्य में योगविषयक चिंतन / कुलदीप सिंह	93
समकालीन कविता का बहुरंगी बिंब / प्रियंका सिंह	98
काँगड़ा के लोकगीतों का सांस्कृतिक विश्लेषण / मंजु पुरी	102
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानियों में सांप्रदायिक सद्भावना / डॉ० वी० जयलक्ष्मी	106
'तुम लिखो कविता' संग्रह में चित्रित सामाजिक बोध / श्री जसपालसिंग वलवी	111
कवि दिनकर के साहित्य में पीड़ित, शोषितों का चित्रण / सुधा महला	116
अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से नई कविता / सविता देवी	123
ऐतिहासिक रोमांस की परंपरा में बाणभट्ट की आत्मकथा का योगदान / डॉ० रूपिका भानोट	132
उत्तर आधुनिकता और महिला-सशक्तीकरण / डॉ० अंजली शर्मा	138
मिथिलेश्वर के कथासाहित्य का सांस्कृतिक परिदृश्य / डॉ० नेहा शर्मा	141

रमेशचंद्र शाह कृत उपन्यास 'गोबरगणेश' की दूसरी कड़ी 'विनायक' (तुलनात्मक अध्ययन के विशेष संदर्भ में) / सुनीता	150
दिशाओं की करवट में हिंदी-कविता / डॉ० सुनीता शर्मा	156
प्रेमचंद का साहित्य : स्वराज्य की रूपरेखा / डॉ० सुरेशकुमार	164
प्रेमचंद के कथासाहित्य में महिला का मनोविश्लेषण 'बड़े घर की बेटी' के संदर्भ में / डॉ० सुरेशकुमार	167
स्त्री-विमर्श : परिभाषा एवं परिव्याप्ति / शिराज शेख	170
पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के काव्य में दार्शनिकता / डॉ० अनिता रानी	175
डॉ० रामविलास शर्मा का आशावादी दृष्टिकोण / डॉ० अनुपाल भारद्वाज	182
निराला की कविता पर प्रगतिवादी चिंतन का प्रभाव / डॉ० बालकराम भट्टी	186
पूर्णिमा वर्मन की कविताओं का अनुशीलन / एन०एच० भोजने	192
महिला-सशक्तिकरण और पंचायतीराज व्यवस्था सकारात्मक व नकारात्मक पहलू / डॉ० संतोषकुमारी	200
वर्तमान समाज में महिला-सशक्तिकरण की चुनौतियाँ / श्रीमती आभा सिंघल	203
भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका पर 'राजनीति' / डॉ० वर्चसा सैनी	206
महिला-आरक्षण : महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता / डॉ० प्रेमलता	209
प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा का इतिहास / श्रीमती सोनाली	217
नारी-शिक्षा के लिए अधिक प्रत्यन किए जाएँ / शुभम त्यागी	220
हँसने-हँसाने की कविताई / डॉ० रमेश तिवारी	224
'आओ भ्रष्टाचार करें' के बहाने / डॉ० रमेश तिवारी	227

भारतीय साठोत्तर परिदृश्य और हिंदी-व्यंग्य

डॉ० रमेश तिवारी

यूँ तो हिंदी-व्यंग्य की परंपरा बहुत प्राचीन है किंतु हम देखते हैं कि आधुनिकयुग में ही हमें हिंदी-व्यंग्य की स्वस्थ परंपरा गद्य साहित्य में परिलक्षित होती है। साहित्यिक प्रवृत्तियों में परिवर्तन के साथ ही व्यंग्य की प्रवृत्ति भी परिवर्तित होती रही। यह परिवर्तन, विषयवस्तु अर्थात् कथ्य, भाषा, शैली आदि रूपों में दिखाई पड़ता है। समकालीन हिंदी व्यंग्य-परंपरा का विकास तीव्र गति से इसलिए हुआ कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तनों से भ्रष्टाचार, राजनीतिक अवसरवादिता, पतनशीलता, जीवनमूल्य, संवेदनहीनता आदि विद्रूप अपने चरम पर पहुँचे। इन्हीं विसंगतियों को व्यंग्य के विकास का कारण चुना गया। समकालीन व्यंग्य-परंपरा में राजनीति एक प्रमुख क्रिया के रूप में उभरी। सन् 1960 के बाद भारतीय राजनीति में जो परिवर्तन घटित हुए, व्यंग्य में उनको प्रमुख स्थान मिलता गया। साठोत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियाँ बदलीं। बदलते परिवेश के अनुसार साहित्य की चुनौतियाँ भी बदलीं। अब साहित्य का विषय स्वाधीनता-प्राप्ति या पराधीनता से मुक्ति न रहा। यह आजादी के पूर्व सँजोए गए सपनों को साकार करने का समय था, किंतु आजाद भारत में वे सपने साकार न होकर टूटने लगे। परिणामतः देश में भाई-भतीजावाद, राजनेताओं की स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार और अव्यवस्था का व्यापक विस्तार हुआ। आजादी के बाद लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिलते ही रचनाकारों ने खुलकर लिखना शुरू किया एवं विषम से विषम परिस्थिति को रचना का विषय बनाया। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विसंगतियाँ ही व्यंग्य-लेखन के लिए संबंधित उपाय सिद्ध हुईं। सजग रचनाकार को अपनी पैनी दृष्टि से इन विसंगतियों का चुनाव करना था और अपनी भाषा और शैलीय उपकरणों की सहायता से इन पर प्रहारात्मक रुख अपनाते हुए पाठकों को परोस देना था।

सन् 1950 और उसके बाद का समय कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा। व्यंग्य-क्षेत्र के महारथियों ने अपने-अपने तरीके से व्यंग्य की समृद्धि में योग दिया। केशवचंद्र वर्मा ने व्यंग्य-कथा को एक नया स्वरूप दिया। उन्होंने अपनी व्यंग्य-कथाओं से पहली बार दिखाया कि व्यंग्य में केवल प्रसंगवक्रता ही महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि उसके साथ प्रौढ़ भाषा और विदग्धतापूर्ण शैली का उचित सामंजस्य, उसे संपूर्ण व्यंग्य-कथा का दर्जा देता है। सन् 1954 में प्रकाशित उनके व्यंग्य कथा-संग्रह 'लोमड़ी का मांस' ने नए व्यंग्यकारों के मार्गदर्शन का काम किया। सन् 1955 में उनका व्यंग्य उपन्यास 'काठ का उल्लू' और 'कबूतर' प्रकाशित हुआ। इस प्रतीकात्मक उपन्यास के माध्यम से वर्माजी ने पतनशील जीवन-मूल्यों पर जमकर प्रहार किए।

इसी दशक में उनके 'प्यासा' और 'बेपानी के लोग' (1959), 'मुर्गा छाप हीरो' (1959), जैसे अन्य संग्रह भी आए। संसारचंद्र का पहला व्यंग्य-संग्रह 1958 में आया। हास्य-व्यंग्य निबंधों की इस कृति का स्तर सामान्य था। हल्का प्रहार और गुदगुदाने की प्रवृत्ति इसमें अधिक दिखाई दी। कृष्ण चराटे की हास्य-व्यंग्य की कृतियाँ भी 1951 से निरंतर प्रकाश में आने लगीं। वास्तव में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कथा, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, आत्मकथा आदि में व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ प्रमुखता से दिखाई पड़ती हैं।

छठे दशक में ही डॉ॰ नामवरसिंह का संग्रह 'बकलम खुद', डॉ॰ प्रभाकर माचवे का 'खरगोश का सींग', अमृतराय, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती आदि की अनेक व्यंग्य-रचनाएँ भी प्रकाशित हुईं। ये लेखक वस्तुतः दूसरी विधाओं के रचनाकार थे और इनका व्यंग्य अत्यंत सुशिक्षित और सूक्ष्मदर्शी है। इन लेखकों के पूर्ववर्तियों में मैंने प्रेमचंद का भी उल्लेख किया है। 'बड़े भाई साहब' या 'नशा' जैसी कहानियाँ स्वतंत्र रूप से व्यंग्य-लेखन का उत्तम उदाहरण मानी जा सकती हैं। उनके उपन्यासों में भी चाहे वह 'रंगभूमि' हो या 'गोदान', जनजीवन के संघर्ष और व्यथा के बावजूद यत्र-तत्र परिहास और व्यंग्य का बड़ा साधिकार प्रदर्शन मिलता है। यह प्रवृत्ति अमृतलाल नागर में कुछ ज़्यादा विकसित रूप में मिलती है। 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'नाच्यौ बहुत गोपाल' आदि उपन्यासों में परिहास के साथ सामाजिक व्यंग्य के अनेक प्रकरण अंतर्गुहित हैं। इसके अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भी उनका हास्य-व्यंग्य साहित्य बहुत वैविध्यपूर्ण और प्रचुर है। पुरानी रचनाओं में 'नवाबी मसनद' और 'सेठ बाँकेलाल' तो हैं ही, उनके परवर्ती लेखन में भी 'कालदंड की चोरी', 'भारतपुत्र नौरंगीलाल', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' आदि उल्लेखनीय हैं।

सन् 1960 के बाद व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा के रूप में साहित्य में स्थापित हुआ। सन् 1960 के बाद साहित्य की एक विधा के रूप में व्यंग्य की स्वीकार्यता का कारण राजनीतिक उलटफेर था। शुरुआत में उपन्यास में व्यंग्य की प्रवृत्ति दिखती है, जिसमें हास्य का पुट ज़्यादा स्पष्टता से मुखरित हुआ और उसे हास्य-व्यंग्य की संज्ञा दी गई। सही मायनों में सबसे जटिल विधा होते हुए भी इस विधा के विकास का कारण इस युग की व्यंग्य-उत्प्रेरक परिस्थितियाँ रहीं, जिनके कारण व्यंग्य-लेखन का कच्चा माल प्रचुरता में उपलब्ध हुआ। विसंगतियों की इस फ़सल को प्रायः सभी रचनाकारों ने काटा। धीरे-धीरे कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी विधाओं में व्यंग्य की उपस्थिति अनिवार्य-सी होती गई। परिणामतः व्यंग्य को समर्पित एक पूरी पीढ़ी सामने आई, जिसमें केशवचंद्र वर्मा, संसारचंद्र, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली, शंकर पुणतांबेकर, लतीफ़ घोषी, सुदर्शन मजीठिया जैसे लेखकों का नाम लिया जा सकता है। इन सबके अतिरिक्त अमृतलाल नागर ने आरंभ में 'नवाबी मसनद' और 'सेठ बाँकेलाल' जैसी परिहासात्मक एवं व्यंग्यपरक रचनाएँ लिखी थीं, पर बाद में उनके गंभीर और शुद्ध यथार्थवादी उपन्यास बूँद और समुद्र, शतरंज के मोहरे, अमृत और विष, अग्निगर्भा, नाच्यौ बहुत गोपाल, पीढ़ियाँ, करवट आदि में अत्यंत यथार्थवादी चित्रण की प्रक्रिया में उन सब तत्त्वों का समावेश हुआ है, जो मूलतः व्यंग्य के उपादान हैं। जैसे-अतिशयोक्ति, पैरोडी, विडंबना, जुगुप्सापूर्ण चित्रण, कैरिकेचर, टाँग-खिंचाई आदि। यही बात मनोहर श्याम जोशी के विषय में भी कही जा सकती है, जिनके 'कुरु-कुरु स्वाहा', 'कसप', 'हरिया

हरकुलिस की हैरानी', 'ट-टा प्रोफेसर' आदि उपन्यासों में यथार्थवादी चित्रण में यथार्थवाद को समग्र आयामों में देखें तो जोशी जी व्यंग्य के सभी शास्त्रीय उपादानों और युक्तियों का प्रयोग करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इन सबमें निःसंदेह सर्वाधिक प्रभावी हरिशंकर परसाई ही रहे। गंभीर सोच, सूक्ष्म दृष्टि और तीव्र प्रहारात्मकता के माध्यम से उन्होंने इस युग पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र की विसंगतियों पर प्रहार किए। शायद ही कोई ऐसा विषय हो, जिस पर परसाई जी ने लिखा न हो।

इस दशक की सबसे बड़ी उपलब्धि व्यंग्य-क्षेत्र में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और श्रीलाल शुक्ल का प्रादुर्भाव रहा। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी की चतुष्टयी अपने समय में प्रसिद्धि के शिखर पर थी। इन रचनाकारों का योगदान यह रहा कि इनके समर्पित लेखन के कारण जहाँ व्यंग्य को स्वतंत्र विधा की मान्यता मिली, वहीं अनेक लेखक व्यंग्य की ओर आकर्षित हुए। व्यंग्यकार नामक शब्द का प्रादुर्भाव भी इसी युग की देन है। इसी युग में व्यंग्य-समीक्षा कर्म विकसित हुआ। व्यंग्य के उपादानों के स्वरूप पर चर्चा शुरू हुई। हास्य और व्यंग्य की सीमारेखा स्पष्ट हुई। सरोकारों और प्रहारात्मकता को स्पष्ट किया गया। व्यंग्यकारों के बीच से ही निकले आलोचकों के प्रयासों और व्यंग्यकारों के समर्पित लेखन ने व्यंग्य का विधागत रूप तय करने में अपनी सक्रिय भूमिका अदा की। यही कारण है कि व्यंग्य आज सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली विधाओं में एक है। सच्चाई यह है कि इस युग का व्यंग्य अपने सरोकारों की गंभीरता, पैनी दृष्टि और प्रहारात्मक शक्ति के कारण विशेष उल्लेखनीय है। परिमाण की दृष्टि से भी प्रचुर मात्रा में लेखन हुआ। व्यंग्य का एक विशाल पाठकवर्ग बना। पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य एक आवश्यक रचना के रूप में स्थापित हुआ। व्यंग्य को, ऐसी पहचान और लोकप्रियता आज से पूर्व किसी और युग में कभी नहीं मिली थी। सबसे बड़ी बात यह हुई कि व्यंग्य की हास्य पर से निर्भरता का दौर समाप्त हुआ। सही मायनों में व्यंग्य के बिना इस युग के विद्रूपों पर प्रहार करना आसान नहीं था। यही कारण है कि इस कालखंड में व्यंग्यकारों द्वारा ऐसा लेखन प्रचुरता में हुआ, जिसे पढ़कर पाठक आक्रोश और खीझ से भर जाता है, अव्यवस्था के प्रति तिलमिलाता है। अव्यवस्था के विरोध की ऐसी सशक्त अभिव्यक्ति व्यंग्य के अतिरिक्त किसी अन्य विधा में दुर्लभ थी।

हरिशंकर परसाई की पहली व्यंग्य-रचना 'पैसे का खेल, प्रहरी (1947) जबलपुर में प्रकाशित हो चुकी थी। पचास के दशक में उनके व्यंग्यकार ने अपने जनोन्मुखी तीखे तेवर के व्यंग्यों से पाठकों को आकर्षित और काफी हद तक प्रभावित किया। यहाँ यह गौरतलब है कि परसाई का संपूर्ण लेखन जनोन्मुखी रहा है न कि लोकोन्मुखी। परसाई के यहाँ मौजूद जन और लोक की इस अवधारणा को समझे बगैर हम परसाई के लेखन का समुचित मूल्यांकन नहीं कर सकते। सन् 1959 में 'हँसते हैं रोते हैं' नामक उनका पहला व्यंग्य-संग्रह आया, जिसमें विसंगतियों का पर्दाफाश करनेवाले तीक्ष्ण प्रहारक प्रवृत्ति के व्यंग्य संकलित थे। इसी वर्ष उनका दूसरा व्यंग्य-संग्रह 'तब की बात और थी' भी प्रकाशित हुआ। इन संग्रहों को पाठकों ने हाथोंहाथ लिया। व्यंग्य की गंभीर सरोकारपरक अवधारणा को बल मिला। परसाई व्यंग्य-लेखन में केंद्रीय भूमिका में रहे। उन्होंने अपने व्यंग्य स्तंभों में नामपरक सामयिक व्यंग्य खूब लिखे और राजनेताओं की जमकर आलोचना की। बावजूद इसके हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि परसाई

प्रवृत्तिपरक व्यंग्य के ही हिमायती हैं न कि व्यक्तिपरक व्यंग्य के। उन्होंने अपनी व्यंग्य कथाओं और निबंधों के माध्यम से कालजयी व्यंग्य की भी सृष्टि की। इस दशक में उनके भूत के पाँव पीछे (1962), जैसे उनके दिन फिरे (1963), बेईमानी की परत (1965), सुनो भाई साधो (1965), पगडंडियों का जमाना (1966), सदाचार का ताबीज (1967), उल्टी-सीधी (1968), निठल्ले की डायरी (1968), और अंत में (1968), ठिटुरता हुआ गणतंत्र (1970), शिकायत मुझे भी है (1970) आदि व्यंग्य-संग्रह प्रकाश में आए। अपने इन संग्रहों में जहाँ उन्होंने राजनीतिक दोमुँहेपन पर निशाना साधा, वहीं धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विद्रूपों पर भी तीखी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति दी।

परसाई जी के साथ ही व्यंग्य क्षेत्र में शरद जोशी का प्रवेश हुआ। इनके बारे में एक घटना बहुत प्रसिद्ध है कि आरंभ के दिनों में जब एक दिन इन्हें लिखने का शौक चर्चाया तो पहुँच गए नई दुनिया अख़बार के संपादक के पास और उनसे निवेदन किया कि उन्हें एक कॉलम लिखने की अनुमति दी जाय। जैसा कि संभावित था संपादक ने टके-सा जवाब दिया कि आपको क्यों छापें उसकी जगह विज्ञापन छापेंगे तो पैसा मिलेगा। इस प्रकार के जवाब से शरद विचलित नहीं हुए, बल्कि नहले पर दहला मारते हुए कहा कि फिर संपादकीय क्यों छापते हैं विज्ञापन छापिए और पैसे मिलेंगे, और फायदा होगा। उनके इस जवाब ने संपादक को लाजवाब कर दिया था और शरद जोशी नई दुनिया में लिखने-छपने लगे थे। इस विनोदपूर्ण तरीके से शुरुआत करने वाले जोशी जी का व्यंग्य-संग्रह 'परिक्रमा' (1958) अपने शिल्प की नवीनता और भाषायी सौंदर्य के कारण चर्चित रहा। जोशी जी ने इस संग्रह में कहानी और निबंध दोनों को ही व्यंग्य माध्यम के रूप में प्रयोग किया और शुद्ध हास्य तथा गंभीर व्यंग्य दोनों प्रकार की रचनाओं से पाठकों को आकर्षित किया। परसाई जी के साथ-साथ शरद जोशी भी युगीन चुनौतियों के मद्देनजर तीखे व्यंग्य लिखे और हास्य से भरपूर लेखन भी किया। परसाई की तुलना में उनके व्यंग्य के सरोकार उतने गंभीर नहीं थे, किंतु शैली और भाषाई सौंदर्य की दृष्टि से वह अनेक स्थानों पर परसाई जी से बेहतर भी दिखाई दिए।

सन् 1959 में इसी शृंखला के एक और महत्त्वपूर्ण व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य-संग्रह 'अंगद का पाँव' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में सुरुचिपूर्ण हास्य के साथ सामाजिक विसंगतियों पर तीक्ष्ण प्रहार करने वाली रचनाओं से पाठकों का साक्षात्कार हुआ। संग्रह के व्यंग्यों में राजनीतिक, शैक्षिक, सामाजिक विसंगतियों का विशिष्ट शैली में उद्घाटन हुआ। विषय पर सूक्ष्म पकड़, व्यंजनापूर्ण शैली और हल्की चोट करने की प्रवृत्ति इन रचनाओं की विशेषता रही। व्यंग्य साहित्य की सबसे बड़ी घटना 'रागदरबारी' (1968) का प्रकाशन इसी दौर में हुआ जिसने व्यंग्य को उसका बहुप्रतीक्षित सम्मान दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। श्रीलाल के 'रागदरबारी' ने जहाँ अपने कथ्य और शिल्प से पाठकों को चमत्कृत किया, वहीं व्यंग्य को प्रतिष्ठा दिलाने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस अमूल्य कृति के लिए शुक्लजी को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इसी दशक में श्रीलाल शुक्ल का एक और व्यंग्य-संग्रह 'यहाँ से वहाँ' प्रकाशित हुआ। रागदरबारी जैसे विश्व के श्रेष्ठ व्यंग्य उपन्यास के सर्जक श्रीलाल शुक्ल के इस कालखंड में कई व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें 'कुछ जमीन पर कुछ हवा में' 'आओ बैठ लें कुछ देर' प्रमुख हैं। इसके अलावा सन् 1996 में प्रकाशित उनके संग्रह 'अगली

शताब्दी का शहर' के प्रथम खंड में भी उनकी सात व्यंग्य रचनाएँ संकलित हैं जिनमें 'अगली शताब्दी का शहर' और 'ग्रैंड मोटर ड्राइविंग स्कूल' जैसी रचनाएँ स्मरण योग्य हैं। इसी कालखंड में उनका उपन्यास बिश्रामपुर का संत भी प्रकाशित हुआ जिस पर उन्हें 'व्यास सम्मान' मिला।

नई शैली और भाषा के मुहावरों के साथ रवींद्रनाथ त्यागी का व्यंग्य-क्षेत्र में पर्दापण हुआ। व्यंग्य में हास्य की अनिवार्यता के समर्थक रवींद्रनाथ त्यागी जी के इस दशक में तीन व्यंग्य-संग्रहों 'खुली धूप में नाव पर' (1963), 'भित्तिचित्र' (1966), और 'मल्लिनाथ की परंपरा' (1969) का प्रकाशन हुआ, जिनमें उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में सुरुचिपूर्ण हास्य-परंपरा को आगे बढ़ाने के संकेत दिए। शुद्ध हास्य के अलावा उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक क्षेत्र की विसंगतियों पर चुटकी भी काटी। सरकारी पद की सीमाओं के कारण उन्होंने सीधे-सीधे राजनीतिक व्यंग्य तो नहीं लिखे, किंतु परोक्ष प्रहार करने से वे नहीं हिचके। उनके व्यंग्यों की खासियत उनकी शैली का अनूठापन और भाषायी सौंदर्य रहा। रवीन्द्रनाथ त्यागी ने नब्बे के दशक में भी अपनी ऊर्जा से चमत्कृत किया। इस कालखंड में उनके 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा' (1991), 'प्रेम यात्रा', 'चंपाकली' (1992), 'इतिहास का शव' (1993), 'तैलचित्र', 'शुक्लपक्ष', 'देश-विदेश की व्यथा' (1994), 'भाद्रपद की साँझ' (1996), 'लाल-पीले फूल' (1997), 'पूरब खिले पलाश' (1998), 'बादलों का गाँव' (1999), 'कबूतर, कौए और तोते' (2001), 'रस विलास' (2002) आदि कई व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हुए। अपने हास्यमिश्रित व्यंग्य से उन्होंने गुदगुदाया भी और अव्यवस्था के शरीर में महीन चिकोटियाँ भी काटीं। सन् 2004 में उनका देहावसान हुआ।

बरसानेलाल चतुर्वेदी का व्यंग्य-संग्रह 'महामहिम चाणक्य राजदूत बने' (1962), अपनी फैंटेसी शैली और हास्यमिश्रित व्यंग्य के कारण चर्चा का विषय बना। किंतु चतुर्वेदी जी के 'मूँछ पुराण' और 'चाचा चौधरी' संग्रह सामान्य कोटि के रहे। संसारचंद्र का व्यंग्य-लेखन अनवरत जारी रहा, किंतु उसमें व्यंग्य की तीक्ष्णता के स्थान पर हास्य का ही जोर रहा। इस दशक में प्रकाशित उनके संग्रहों 'सोने के दाँत' (1962), 'अपनी डाली के काँटे' (1968), आदि ने हल्के-फुल्के व्यंग्य की परंपरा को ही आगे बढ़ाया। नरेंद्र कोहली सन् 1970 में प्रकाशित 'एक और लाल तिकोन' से गंभीर व्यंग्य की परंपरा को आगे बढ़ाने के संकेत देते हैं।

पत्र-पत्रिकाओं में इसी समय शंकर पुणतांबेकर, लतीफ घोषी, के०पी० सक्सेना, श्यामसुंदर घोष, कृष्णदेव चौधरी (किट्टू), सुदर्शन मजीठिया आदि व्यंग्यकारों की कुछ रचनाएँ भी प्रकाश में आईं, जिन्होंने रचनाकारों के श्रेष्ठ व्यंग्य के प्रति समर्पण का परिचय दिया। 'रागदरबारी', 'एक और लाल तिकोन' के अलावा कुछ और व्यंग्य उपन्यास भी इस दशक में प्रकाशित हुए। इनमें 1961 में प्रकाशित हरिशंकर परसाई की 'रानी नागफनी की कहानी' है। 'रानी केतकी की कहानी' (इंशा अल्लाह खाँ) की तर्ज पर यह रचना फैंटेसी शैली में लिखी गई है। फैंटेसी शैली में ही 1962 में केशवचंद्र वर्मा का राजनीतिक, सामाजिक विसंगतियों पर केंद्रित 'आँसू की मशीन', नागार्जुन का 'हीरक जयंती' आदि प्रकाशित हुआ। सत्तर के दशक में राजनेताओं की अवसरवादी प्रवृत्ति और मनमानापन खुलकर जनता के सामने आया। 1975 के आपातकाल की दमनकारी परिस्थितियों ने व्यंग्यकारों को भी उद्वेलित किया। फलस्वरूप

राजनीतिक व्यंग्यों में प्रखरता और आक्रामकता बढ़ी। समाज के विघटनशील मूल्यों, पुलिसतंत्र का दमन, आम जनता की यथास्थितिवादी प्रवृत्ति, संयुक्त परिवारों की टूटन, धार्मिक पाखंड, लालफीताशाही, भाई-भतीजावाद, भोगवादी संस्कृति आदि पर व्यंग्यकारों ने जमकर प्रहार किए। व्यंग्य ने कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि के अलावा संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, रिपोर्ताज को भी माध्यम के रूप में प्रयोग करके अपनी क्षमता का विस्तार किया।

परिणाम और गुणवत्ता की दृष्टि से देखा जाय तो परसाई जी का व्यंग्य-लेखन इस अवधि में सर्वाधिक उल्लेखनीय रहा। इस काल में उनके 'अपनी-अपनी बीमारी', 'तिरछी रेखाएँ' (1972), 'वैष्णव की फिसलन' (1976), 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' (1977) और 'एक लड़की पाँच दीवाने' (1980) आदि कई संग्रह प्रकाशित हुए, जिन्हें पाठकों का भरपूर सम्मान मिला। परसाई निर्विवाद रूप से व्यंग्य के शिखर पुरुष के रूप में उभरकर आए। परसाई जी एक प्रतिबद्ध रचनाकार थे। इस प्रतिबद्धता ने उनके व्यंग्य को धार दी है। शरद जोशी की व्यंग्य सक्रियता भी बढ़ी। 'किसी बहाने', 'जीप पर सवार इल्लियाँ' (1971), 'रहा किनारे बैठ' (1972), 'तिलिस्म' (1973) आदि व्यंग्य-संग्रहों के अलावा 1979 में प्रकाशित दो व्यंग्य-नाटकों (एक था गधा उर्फ अल्लादाद खँ और अंधों का हाथी) के प्रकाशन ने शरद जोशी के व्यंग्य-लेखन की प्रतिष्ठा बढ़ाई। श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं में 'मकान', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' (1978), आई। रवींद्रनाथ त्यागी के 'कृष्ण वाहन की कथा' (1971), 'देवदार के पेड़' (1973), 'शोकसभा' (1974), 'अतिथि कक्ष' (1977), 'सुंदर कली' (1978), 'फूलों वाले कैक्ट्स' (1979), 'भद्र पुरुष' (1980), आदि संग्रहों ने अपने परिष्कृत हास्य, चुटकीदार व्यंग्यों और भाषाई चपलता से पाठकों को चमत्कृत किया। राजनीति, साहित्य, संस्कृति, अफसरशाही आदि विषयों पर उनके धारदार लेखन के कारण पाठकों का एक बड़ा वर्ग उनका मुरीद हो गया। इसी के साथ-साथ अपनी उर्दूमिश्रित भाषा और शैली के साथ के.पी. सक्सेना ने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अपनी व्यंग्य रचनाओं से पाठकों को आकर्षित किया। इस दशक में उनके तीन संग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें 'नया गिरगिट' (1975) को विशेष चर्चा मिली। 'कोई पत्थर से ...' (1978), 'मूँछ-मूँछ की बात' (1980) आदि में कहीं-कहीं विषय और शैलीय उपकरणों का दुहराव मिलता है। इसके अतिरिक्त नरेंद्र कोहली, शंकर पुणतांबेकर, लतीफ घोधी, सुदर्शन मजीठिया के रूप में 'व्यंग्य की नई चौकड़ी' ने अपनी प्रतिभा से पाठकों को चमत्कृत किया। नरेंद्र कोहली की कृति 'पाँच एब्सर्ड' उपन्यास का प्रकाशन इस दशक की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस रचना में सरकारी चिकित्सा सुविधा, शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विद्रूपों पर तीखे प्रहार किए गए। संग्रह में प्रकाशित पाँच लघु व्यंग्य उपन्यास सूक्ष्मता और प्रहारात्मकता के कारण व्यंग्य की अमूल्य उपलब्धि हैं। उनकी अन्य कृतियों में 'जगाने का अपराध' (1973), 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' (1977), 'आधुनिक लड़की की पीड़ा' (1978) प्रमुख हैं। शंकर पुणतांबेकर ने 'रेडीमेड कपड़े' (1973) और 'कैक्ट्स के काँटे' (1979) से अपने सरोकारों को स्पष्ट किया। इसी दशक में सुदर्शन मजीठिया ने अपनी हास्यमिश्रित व्यंग्य कथाओं की तरफ पाठकों का ध्यान खींचा। उनका ध्यान सहज एवं हल्के हास्य पर अधिक केंद्रित था। हालाँकि उनकी कुछ रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें व्यंग्य की शक्ति का प्रभावशाली प्रयोग हुआ है। इस दशक में उनके व्यंग्य-संग्रह 'इंडीकेट बनाम सिंडीकेट', 'मुख्यमंत्री का डंडा'

(1974), 'कुछ इधर की, कुछ उधर की' (1976) आदि प्रकाशित हुए। इनमें 'मुख्यमंत्री का डंडा' ने अपने राजनीतिक और सामाजिक व्यंग्य की प्रखरता के कारण पाठकों का ध्यान खींचा। बरसाने लाल चतुर्वेदी के हास्य मिश्रित व्यंग्य भोला 'पंडित की बैठक' (1975), 'बुरे फँसे' (1976), 'नेता और अभिनेता' (1977), 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' (1977), 'टालू मिक्सचर' (1978) आदि प्रकाशित हुए। इनमें 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' में हास्य के साथ व्यंग्य की कुछ श्रेष्ठ रचनाएँ संकलित थीं, जिन्होंने प्रभावित किया। आलपिन की चुभन का अहसास कराने वाले लतीफ़ घोषी के कहानीनुमा व्यंग्यों ने इस दशक में अपनी सरल-सहज भाषा और चुटीली शैली से पाठकों का ध्यान आकर्षित किया। इस दशक में 'उड़ते उल्लू के पंख' (1972), 'मृतक से क्षमायाचना सहित' (1974), 'बीमार न होने का दुख' आदि उनके कई व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें अव्यवस्था और शोषण के शिकार आम आदमी के दर्द को व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति दी गई है। प्रेम जनमेजय के 1978 में प्रकाशित 'राजधानी में गँवार' ने भी पाठकों को विशेष रूप से आकर्षित किया। इसके अलावा केशवचंद्र वर्मा के तीन व्यंग्य-संग्रह 'अफलातूनों का शहर', 'बशन्नला का वक्तव्य' (1974), और 'ज्यादातर गलत' (1975) प्रकाशित हुए। इन संग्रहों में 'बशन्नला का वक्तव्य' अपने तीखे तेवर और प्रयोगधर्मिता के कारण विशेष उल्लेखनीय है। संसारचंद्र के व्यंग्य-संग्रहों 'रानी और भानी' (1974), 'बहानेबाजी' (1978) में पारंपरिक व्यंग्य परंपरा का ही पोषण हुआ।

इसी दौर में परसाई के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विद्रूपों पर निशाना साधने वाले व्यंग्य ज्यादा आए जो व्यंग्य के विकास के लिए अधिक उपयोगी थे। इस दशक में प्रकाशित 'विकलांग श्रद्धा का दौर' (1981), 'पांखड का अध्यात्म' (1982), 'दो नाक वाले लोग' (1983), 'काग भगोड़ा' (1983), 'तुलसीदास चंदन घिसै' (1986), 'कहत कबीर' (1988) आदि संग्रह तुलनात्मक रूप से सरोकारों और गांभीर्य की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 1985 में परसाई रचनावली ग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसके खंडों में इस अवधि तक के परसाई के समग्र साहित्य को समेटा गया। शरद जोशी ने कथा, निबंध, पत्र, संस्मरण आदि माध्यमों का प्रयोग करते हुए कई उल्लेखनीय संग्रह व्यंग्य जगत को दिए। इनमें 'दूसरी सतह', 'यथासंभव', 'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे' विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'उमराव नगर में कुछ दिन' संग्रह में 'कुंती देवी का झोला', 'उमराव नगर में कुछ दिन' और 'मम्मीजी का गधा' रचनाएँ संकलित थीं। उनके व्यंग्य उपन्यास अधिक हुए। रवींद्रनाथ त्यागी ने संस्मरण, कथा, निबंध आदि विधाओं का व्यंग्य में बेहतर प्रयोग करके 'देश-देश के लोग' (1982), 'पदयात्रा' (1985), 'आत्मलेख', 'पराजित पीढ़ी नाम', 'प्रसंगवश' (1988), 'रवींद्रनाथ त्यागी के प्रतिनिधि व्यंग्य' (1989), आदि संग्रहों से व्यंग्य साहित्य की श्रीवृद्धि की। चर्चित व्यंग्यकारों में नरेंद्र कोहली ने गंभीर व्यंग्यकर्म की बानगी 'त्रासदियाँ' (1982) और 'परेशानियाँ' (1986), में दिखाई। शंकर पुणतांबेकर के व्यंग्य के निखार का प्रमाण 'विजिट यमराज की' (1983), 'अंगूर खट्टे नहीं हैं' (1985), 'बदनामचा' (1988) ने दिया। लतीफ़ घोषी ने मीठी चोट के स्थान पर तीखी चोट को प्राथमिकता दी जिसके दर्शन 'मुर्दानामा' (1984), 'खबरदार व्यंग्य' (1984), 'बुद्धिजीवी की चप्पलें' आदि में विशेष रूप से हुए।

सन् 1990-2013 तक का कालखंड व्यंग्य के लिए आदर्श स्थितियों को लेकर आया

है। राजनीति से लेकर समाज, शिक्षा, धर्म आदि सभी क्षेत्रों की विसंगतियों ने व्यंग्यकारों का ध्यान आकर्षित किया। राजनीतिक दलों की आपसी कलह, कुर्सी को लेकर खींचतान, भाई-भतीजावाद, अवसरवादिता, भ्रष्टाचार का बाजार और व्यापक होता गया। 1991 में राजीव गांधी की हत्या के बाद काँग्रेस की नरसिम्हा राव सरकार में स्वयं प्रधानमंत्री पर भ्रष्टाचार के आरोप लगे। इसके बाद भारतीय जनता पार्टी की सरकार में शामिल दलों की बाजीगरी देखने को मिली। रामजन्मभूमि विवाद से लेकर जयललिता, ममता बनर्जी की तात्कालिक राजनीतिक गतिविधियों से व्यंग्यकारों को मसाला मिला। अटल बिहारी वाजपेयी जी की सरकार गिरते-उठते चली किंतु कंधार विमान अपहरणकांड व अन्य मुद्दों के बहाने सरकार गिरने के बाद मनमोहन सिंह के नेतृत्व में काँग्रेस की सरकार बनी। तबसे आज तक सरकार चल तो रही है, लेकिन हिचकोले खाते हुए। बीच के इन वर्षों को घोटालों और राजनीति के अपराधीकरण के रूप में जाना जाएगा। क्षेत्रीय स्तर पर नेताओं के कारनामे व्यंग्यकारों के प्रिय विषय रहे। सामाजिक क्षेत्र में नैतिकता का अवमूल्यन, संवेदनहीनता, धनलोलुपता आदि ने व्यंग्यकारों को मसाला दिया, प्रशासनिक क्षेत्र भी अपने भ्रष्टाचार और लालफीताशाही के कारण व्यंग्यकारों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा। शिक्षा के क्षेत्र में विसंगतियाँ और बढ़ी। शैक्षणिक संस्थानों की राजनीति, विद्यार्थियों की उच्छृंखलता आदि व्यंग्य के प्रिय विषय बने रहे। सांस्कृतिक क्षेत्रों में बढ़ती फैशनप्रियता, नंगापन आदि का बोलबाला रहा। धार्मिक क्षेत्रों में बाबाओं, स्वामियों, बापुओं के कारनामों के अलावा धर्मांतरण के विवाद, धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वासों में व्यंग्य के विषय छिपे थे। इन पर गंभीर व्यंग्य की संभावना बनती थी, पर कुछ जागरूक व्यंग्यकारों ने ही इस पर ध्यान दिया। बाजारीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के षड्यंत्रों पर भी छिटपुट व्यंग्य लेखन ही हुआ। श्रीलाल शुक्ल का 'रग विराग' (2001) उपन्यास इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

हिंदी व्यंग्य को विधा की प्रतिष्ठा दिलाने वाले हरिशंकर परसाई आजीवन व्यंग्य सेवा में जुटे रहे। उनका 'प्रेमचंद के फटे जूते' जैसा महत्वपूर्ण संकलन इसी कालखंड में प्रकाशित हुआ। 10 अगस्त, 1995 को उनका निधन हुआ। मरणोपरांत भी उनके प्रशंसकों-मित्रों ने उनकी अप्रकाशित रचनाओं का प्रकाशन कराया। 1998 में 'आवारा भीड़ के खतरे' (सं. कमला प्रसाद) नामक उनका एक और व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें उनके उच्च कोटि के व्यंग्य निबंधों के अलावा सामान्य विषयों पर कुछ सारगर्भित लेख भी शामिल थे। हिंदी व्यंग्य के दूसरे महत्वपूर्ण स्तंभ शरद जोशी भी व्यंग्य-लेखन करते रहे। 5 मार्च, 1991 को उनकी मृत्यु के बाद भी उनके कई व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें 'नावक के तीर' और 'यत्र तत्र सर्वत्र' प्रमुख हैं। सन् 2000 में प्रकाशित 'यत्र तत्र सर्वत्र' में उनके 101 व्यंग्य निबंधों को संकलित किया गया। ये व्यंग्य निबंध स्व. शरद जोशी की प्रतिभा से साक्षात्कार कराते हैं। नरेंद्र कोहली ने अन्य विधाओं की कृतियों के अलावा व्यंग्य-साहित्य की भी श्रेष्ठ रचनाओं से व्यंग्य को समृद्ध किया। इस कालखंड में उनके 'आत्मा की पवित्रता', 'मेरे मोहल्ले के फूल', 'मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएँ', 'गणतंत्र का गणित', 'समग्र व्यंग्य' आदि कई व्यंग्य-संग्रह चर्चित हुए। चर्चित व्यंग्यकार सुदर्शन मजीठिया के 'मिस्टर टेन परसेंट', 'पब्लिक सेक्टर का सांड', 'एक दांडी : दो गांधी' आदि व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हुए। व्यंग्यकार के.पी. सक्सेना के व्यंग्य-संग्रह तो

इक्का-दुक्का ही आए, पर सन् 2001 के बाद फिल्मों के संवाद-लेखन में व्यस्त होने तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी व्यंग्य रचनाएँ नियमित रूप से प्रकाशित होती रहीं।

शंकर पुणतांबेकर इस कालखंड में नई ऊर्जा के साथ उपस्थित हुए। उनके 'गुल्ले' (पाँच खंडों में), 'पतंजलि', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'दुर्घटना से दुर्घटना तक' आदि कई व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त उन्होंने साढ़े नौ हजार शब्दों के माध्यम से व्यंग्य की सृष्टि करने का अनोखा प्रयोग 'व्यंग्य अमर कोश' नामक ग्रंथ में किया। सरल-सहज शब्दों में तीखा व्यंग्य करने वाले रचनाकार लतीफ़ घोषी की भी इस कालखंड में 'मेरी प्रिय व्यंग्य रचनाएँ' (1991), 'नीर क्षीर' (1992), 'टूटी टाँग पर चिंतन' (1992), 'व्यंग्य चरितम' (1993), 'मंत्री हो जाने का सपना' (1994), 'यत्र तत्र' (1996) आदि अनेक कृतियाँ प्रकाशित हुईं। अन्य व्यंग्यकारों में श्यामसुंदर घोष, गोपाल चतुर्वेदी, मुद्रा राक्षस, बालेंदुशेखर तिवारी, ज्ञान चतुर्वेदी, हरीश नवल, प्रेम जनमेजय, सुरेश कांत, रोशनलाल सुरीरवाला, प्रदीप पंत, सूर्यबाला, अलका पाठक, मधुसूदन पाटिल, दीनानाथ मिश्र, विनोदशंकर शुक्ल, शिव शर्मा, संतोष खरे, अश्विनी कुमार, अरविंद तिवारी, पूरन सरमा, यशवंत कोठारी, यशवंत व्यास, बलवीर त्यागी, सुबोधकुमार श्रीवास्तव, प्रदीप मेहता, श्रीराम अयंगर, रमेश शर्मा निशिकर, वीरेंद्र जैन, सी० भास्कर राव, आलोक पुराणिक, सहीराम आदि व्यंग्यकार इस कालखंड में भी समर्पण भाव से व्यंग्यकर्म में लगे रहे। ज्ञान चतुर्वेदी इस युग के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार के रूप में स्थापित हुए। 'दंगे में मुर्गा', 'मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएँ', 'बिसात बिछी है', 'खामोश नंगे हम्माम में हैं' आदि श्रेष्ठ व्यंग्य-संग्रहों और 'नरक यात्रा', 'बारामासी' और 'मरीचिका' आदि उच्च कोटि के व्यंग्य उपन्यासों ने उन्हें पाठकों और आलोचकों के बीच समान रूप से महत्त्वपूर्ण बनाया। श्रेष्ठ हास्य और मारक व्यंग्य के बीच संतुलन रखते हुए उन्होंने हिंदी व्यंग्य को एक नया मुहावरा दिया। उन्होंने न केवल 'रागदरबारी' के बाद के खालीपन को भरा, बल्कि अनेक सफल प्रयोग भी किए। 'नरक यात्रा' (1993) ने जहाँ चिकित्सा जगत् में घुसी संवेदनहीनता और धनलोलुपता का निर्मम उद्घाटन किया, वहीं निराले शिल्प से भी पाठकों का साक्षात्कार कराया। उनका दूसरा उपन्यास 'बारामासी' (1999) व्यंग्य साहित्य की उपलब्धि है। बुंदेलखंड के एक कस्बे को केंद्र बनाकर लिखी गई इस कृति में मानवीय मूल्यों के पतन, बेरोजगारी, गरीबी, दहेज, शिक्षा, राजनीति, प्रेम संबंधों में छिछोरापन आदि की नब्ज को पकड़ा गया है। उनका तीसरा व्यंग्य उपन्यास 'मरीचिका' (2004) अपने कथ्य चयन और अनूठे शिल्प के कारण विशेष उल्लेखनीय है। गंभीर व्यंग्य के हस्ताक्षर प्रेम जनमेजय की इस कालखंड में तीन पुस्तकें 'मैं नहीं माखन खायो' (1991), 'आत्मा महाठगिनी' (1992) और 'शर्म मुझको मगर क्यों आती' (1998), 'कौन कुटिल खल कामी' (2008) आदि प्रकाशित हुईं। सन् 2004 से उन्होंने व्यंग्य को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' का प्रकाशन भी शुरू किया है।

समकालीन व्यंग्य-लेखन परंपरा पर भी श्रीलाल ने अपनी अज्ञेय-संबंधी आलोचना पुस्तक 'अज्ञेय : कुछ रंग कुछ राग' में विस्तार से विचार किया है। समकालीन व्यंग्य लेखन-परंपरा पर प्रकाश डालते हुए श्रीलाल कहते हैं, 'हिंदी व्यंग्य-लेखन के दो पक्षों का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। पहली स्थिति उन लेखकों से संबद्ध है जो मूलतः दूसरी विधाओं के कृतिकार की हैसियत से प्रसिद्ध थे, पर जिन्होंने समग्र रचनात्मक व्यवसाय के रूप

में नहीं बल्कि एक आनुषंगिक रूचि के रूप में व्यंग्य-लेखन को अपनाया। दूसरा पक्ष यह है कि व्यंग्य एक स्वतंत्र कला या साहित्यिक विधा के रूप में नहीं, एक शैली, एक भंगिमा एक कलात्मक अनिवार्यता या बाध्यता के रूप में कवि, कथाकार या नाटककार की रचनाओं का प्रमुख स्वर बन गया।' श्रीलाल व्यंग्य-परंपरा में अज्ञेय और विद्यानिवास मिश्र का भी उल्लेख करते हैं, 'सौम्य परिहास और प्रबुद्ध नमोक्तियों की दृष्टि से 'सब रंग' की रचनाएँ हिंदी में अद्वितीय हैं। 'श्रीगणेश' नामक 'सब रंग' की प्रस्तावना में कहा गया है—'कुट्टिचातन् की ओर भी कुछ रचनाएँ छप चुकी हैं, जो यहाँ संकलित नहीं हैं। कुछ अप्रकाशित हैं, जो यहाँ नहीं जोड़ी गई। शायद कभी एक नया संग्रह भी प्रकाश में आए। यह कब होगा, पता नहीं।' यह हमारा दुर्भाग्य है कि इस प्रकृति की और रचनाएँ, बाद में, यत्र-तत्र कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रकाश में नहीं आईं। यदि आतीं तो निश्चित रूप से उनसे और 'सब रंग' के सहारे हिंदी हास्य-व्यंग्य में एक नई कोटि-नए ज्यों की स्थापना होती; बहरहाल, उसका सूत्रपात तो 'सब रंग' से ही हो गया है। 'सब रंग' की रचनाएँ, 'नखरे में गरम मसाला' जैसे अपवाद को छोड़कर, किसी विषय विशेष थीम पर आधारित नहीं हैं। उसके सहारे स्वच्छंद बतकही चलती है। एक सुशिक्षित, प्रबुद्ध व्यक्ति बतरस का आनंद ले रहा है, दे रहा है। व्यंग्य का लक्ष्य समाज के उन व्यक्तियों और परिस्थितियों पर हमला करना है जो हमारे आदर्शों से स्वतंत्र का कारण हैं। व्यंग्य का दावा था और है कि वह सामाजिक विकृतियों का पर्दाफाश करके सत्य का चेहरा, वह आकर्षक हो या कुरूप और बीभत्स, सामने प्रस्तुत कर देता है। यही दावा यथार्थवाद का भी है। जुगुप्सापूर्ण विवरणों से दोनों में से किसी को भी परहेज नहीं है। व्यंग्य का दावा है कि वह विसंगतियों, कुरूपताओं, पाखंड आदि पर प्रहार करके अप्रत्यक्ष रूप से कुछ नैतिक मूल्यों की वकालत करता है। परिणाम यह है कि यथार्थवाद के विकास के साथ ही व्यंग्य का स्वतंत्र-लेखन या कला के रूप में हास शुरू हो जाता है। यथार्थवादी साहित्य द्वारा व्यंग्य कारोबार हथिया लिए जाने के बाद यथार्थवाद ने अपने एजेंडा में कुछ नए आयाम भी जोड़े हैं। इन तमाम विघ्न-बाधाओं के बावजूद आज हिंदी व्यंग्य का रचना-संसार निरंतर समृद्धि की ओर अग्रसर है।

64-बी, फेस-2, डीडीए फ्लैट, कटवारिया सराय
नई दिल्ली-110016
09868722444,
ईमेल hinditeacher1@gmail.com

सवैया

डॉ० रामानंद शर्मा

पूर्व प्राचार्य, हिंदू कालेज, मुरादाबाद

सवैया रीतिकाल का सर्वाधिक लोकप्रिय छंद रहा है। अपने संगीतात्मक सौकुमार्य और माधुर्य के कारण यह छंद कोमल वृत्तियों के प्रकाशन के लिए नितांत आदर्श रहा है। यों भूषण आदि कवियों ने उसमें वीरत्व की भी व्यंजना की है, लेकिन उसमें यह छंद उतना सफल नहीं रहा, जितना शृंगार एवं भक्ति के प्रकाशन में। फलतः शृंगारप्रधान रीतिकाल में ब्रजभाषा की परिष्कृति के साथ छंद का स्वरूप भी निरंतर विकसित होता रहा और दोनों का बंधन भी दृढ़तर होता गया।

सवैया हिंदी का अपना छंद है। यों प्राकृत-पैंगलम् में वर्णवृत्तों के अंतर्गत दुर्मिल और किरिट का विवेचन मिलता है और हेमचंद्र ने मदिरा का विवेचन किया है, जो सवैया-भेदों के रूप में आज भी मान्य है, लेकिन वहाँ न तो सवैया का स्वरूपविवेचन मिलता है और न संस्कृत-काव्य में इनका स्वरूप ही निखर सका है। इस छंद का व्यापक प्रयोग अकबरकालीन कवियों-गंग, ब्रह्म, नरोत्तमदास, तुलसीदास और केशवदास में मिलता है। रीतिकालीन आचार्य-कवि केशव और देव ने सवैया के स्वरूपविवेचन का प्रयास किया है¹, भिखारीदास और ग्वाल ने इसे परिष्कृति दी है और जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने इसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है। सवैया छंदों की सुकुमारता और प्रवहमयता संस्कृत भाषा की जड़ता से मेल नहीं खाती, जबकि ब्रजभाषा की मधुरता और गुरु को लघुवत् उच्चारण करने की सुविधा के कारण यह खुलकर सामने आती है। वस्तुतः इन छंदों में ऐसी सुकुमारता मिलती है, जो इन्हें वर्णवृत्तों से अलग करती है और जिसका सामंजस्य ब्रजभाषा की स्वरसाधना के अनुकूल पड़ता है। यही कारण है कि संस्कृत-छंदशास्त्र में दुर्मिल, मदिरा आदि का विवेचन उपलब्ध हो जाने पर भी सवैया हिंदी का अपना छंद है।

सवैया शब्द सपादक से व्युत्पन्न माना जाता है। आज भी पुरातन पीढ़ी के व्यक्ति काव्य-पाठ करते समय छंद के अंतिम चरण को दो बार पढ़ते देखे जाते हैं। वस्तुतः कवित्त के समान सवैया भी चतुर्थ चरणप्रधान छंद है और चमत्कार या अलंकारप्रधान होने पर रचयिता अंतिम चरण पर विशेष ध्यान देता है। फलतः वाचक भी उस कलात्मक वैशिष्ट्य का सम्यक् आस्वादन कराने के लिए चतुर्थ चरण को दो बार पढ़ता है।

सवैया में चरण के आद्यंत को छोड़कर शेष में दो लघु के पश्चात् एक गुरु का क्रम रहता है। इस सुनिश्चित व्यवस्था ने जहाँ छंद को एक विशेष लय प्रदान की है, वहीं कवियों को व्यथित एवं आलोचकों को भ्रमित भी कम नहीं किया है। रीतिकाल में कवित्त के समान सवैया में भी नाम की छाप रखने की परंपरा थी और छंद के ढाँचे में सभी नाम समाहित नहीं

हो पाते थे। घनानंद जैसे रससिद्ध कवि ने घनआनंद और आनंदघन करके काम चलाया तो कालिदास त्रिवेदी ने अपनी उपाधि 'महाकवि' का प्रयोग कर केशव ने अपने दासत्व से मुक्ति पायी, चंद्रशेखर ने चंद्र को तिरोहित किया, लेकिन सोमनाथ को सवैया के लिए अपना अपर नाम शशिनाथ रखना पड़ा। कौन जाने, भिखारीदास ने इसीलिए केवल 'दास' शब्द का प्रयोग किया हो। सेनापति जैसे विदग्ध कवि ने तो सवैया लिखने से ही हाथ खींच लिया, क्योंकि बिना छाप के छंद के चोरी होने का भय था 'सुन महाजन चोरी होति चार चरण की' और सवैया के कलेवर में उनकी छाप नहीं समा रही थी। नाम के संक्षिप्तीकरण या पर्याय-प्रयोग का भी अवसर अनुपलब्ध था। वस्तुतः हिंदी में सवैया कदाचित् एकमात्र छंद है, जिसने कवियों को नामपरिवर्तन के लिए विवश किया है। कवियों के समान आलोचकों की स्थिति भी कम दयनीय नहीं बनी है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र जैसा प्रख्यात रीतिमर्मज्ञ भी यह मान बैठे कि घनानंद और आनंदघन दो भिन्न कवि हैं, कवित्तकार अलग हैं और सवैयाकार अलग। परवर्ती शोध से उन्हें अपनी यह धारणा स्वयं ही निर्मूल प्रतीत हुई। इतना ही नहीं, घनानन्द का नाम घनानंद है या घनआनंद, यह विवाद भी काफ़ी समय तक चलता रहा। लोकप्रचलित नाम घनानंद है, घनआनंद नहीं। यह तो छंद के आग्रह पर विकसित किया गया रूप है। वस्तुतः आलोचकों को ये समस्त भ्रांतियाँ सवैया का स्वरूप न समझ पाने के कारण ही हुईं।

सवैया एक छंद न होकर अनेक छंदों का एक वर्ग या समुच्चय है, जिसमें दो लघु के पश्चात् एक गुरु आने से लय विशेष ढंग से गतिवान होती है। इसमें 22 से 26 तक वर्ण वाले वृत्त आते हैं।² ये अत्यंत व्यवस्थित छंद हैं और प्रायः एक गण की आवृत्ति से बनते हैं। भगण, जगण और सगण के आधार पर इनके तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं।³

(क) भगणाश्रित⁴

1. मदिरा	7 भगण, ग	= 22 वर्ण
2. मोद	5 भगण, मगण, सगण, ग	= 22 वर्ण
3. चकोर	7 भगण, ग ल	= 23 वर्ण
4. मत्तगयंद (मालती)	7 भगण, ग, ग	= 23 वर्ण
5. अरसात	7 भगण, रगण	= 24 वर्ण
6. किर्रीट	8 भगण	= 24 वर्ण

(ख) जगणाश्रित

7. सुमुखी (मानिनी)	7 जगण, ल ग	= 23 वर्ण
8. मुक्तहरा	8 जगण	= 24 वर्ण
9. वाम (माधवी, मकरंद)	7 जगण, यगण	= 24 वर्ण

(ग) सगणाश्रित

10. दुर्मिल	8 सगण	= 24 वर्ण
11. सुंदरी (मल्ली, चंद्रकला)	8 सगण, ग	= 25 वर्ण
12. अरविंद	8 सगण, ल	= 25 वर्ण
13. सुखी	8 सगण, ल ग	= 26 वर्ण

इनमें सर्वाधिक प्रचलित सवैया है मत्तगयंद। रीतिकाल का यह सर्वाधिक प्रिय छंद रहा है और प्रायः सभी रीतिकवियों ने इसका प्रयोग किया है। इसमें चरणांत में दो गुरु आने से ध्वनितरंगें मत्तगयंद के समान झूम उठती हैं। दुर्मिल, किरिटी और अरसात भी पर्याप्त प्रचलित रहे हैं। दुर्मिल सौंदर्यवर्णन के लिए विशेष प्रख्यात रहा है। किरिटी में चरणांत में दो लघु आने से उसकी प्रकृति अंत में शांत और शिथिल हो जाने की है। मदिरा, सुंदरी और वाम को अल्पप्रचलित कहा जा सकता है। चकोर, मुक्तहरा आदि का प्रयोग विरल ही मिलता है, फलतः इन्हें अप्रचलित ही कहा जाएगा। ध्यातव्य है कि कुछ कवियों ने दो सवैयों का मिलाकर प्रयोग भी किया है, लेकिन ऐसे प्रयोग भक्तिकाल में ही पाए जाते हैं। यहाँ अतिप्रचलित सवैयों के रम्य उदाहरण प्रस्तुत हैं—

मत्तगयंद :

कुंदन को रँगु फीको लगै, झलके अति अंगन चारु गुराई।
 आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु बिलासन की सरसाई।
 को बिनु मोल बिकात नहीं, 'मतिराम' लहैं मुसुकानि मिठाई।
 ज्यों-ज्यों निहारिए नरे है नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई॥

एक ही सेज पै राधिका माधवै, धाइ लै सोइ सुभाइ सलोने।
 पारै 'महाकवि' कान्ह को मध्य में, राधे कहै यह बात न होने।
 हैहै न साँवरी साँवरे के सँग, बावरी तोहि सिखाई है कौने।
 सोने को रंग कसौटी लगै पै, कसौटी को रंग लगै नहिं सोने॥

दुर्मिल :

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिरि तेह के तोरिये जू।
 निरधार अधार दै धार मँझार, दई! गहि बाँह न बोरिये जू।
 'घनआनंद' आपने चातक को, गुन बाँधिके मोह न छोरिये जू।
 रस प्याय के ज्याय, बढ़ायके आस, बिसास में ना विष घोरियू जू॥

सुनि के धुनि चातक मोरनि की, चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
 अनुराग भरे हरि बागनि में, सखि! रागत राग अचूकनि सों।
 कवि 'देव' घटा उनई जु नई, बनभूमि भई दल दूकनि सों।
 रँगराती हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर के झूकनि सों॥

किरीट :

कान्ह के बाँकी चितौनि चुभी चित, काल्हि तू झाँकी है ग्वालिन गवाछनि।
 देखी अनोखी-सी, चोखी-सी कोरनि, ओछे फिरै उभरे चित जा छनि।
 मार्यो सँवारि हियो मो 'मुबारक', ये सहजै कजरारे मृगाछनि।
 काजर दै री न, ए री सोहागिन, आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि॥

आगे तो कीन्ही लगालगी लोयन, कैसे छिपै अजहूँ जो छिपावति।
तू अनुराग को साथ कियो, ब्रज की बनिता सब यों ठहरावति।
कौन सकोच रह्यो है 'नेवाज', जो तू तरसै, उनहूँ तरसावति।
बावरी जो पै कलंक लग्यो, तो निसंक है काहे न अंक लगावति॥

अरसात :

फूलन के सँग फूलिहैं रोम, परागन के सँग लाज उड़ाइहै।
पल्लव-पुंज के संग अली, हियरो अनुराग के रंग रँगाइहै।
आयो बसंत न कंत हितू, अब बीर बदींगी जो धीर धराइहै।
साथ तरून के पातन के, तरुनीन को कोप निपात है जाइहै॥

चंचलता अपनी तजिके, रस ही रस सों रस सुंदर पीजियो।
कोऊ कितेक कहै तुमसों, तिनकी कहि बातनि में न पतीजियो।
चौज चबाइन के सुनिके, सु कही इक मेरी यही नित कीजियो।
मंजुल मंजरी पै हो मलिंद, बिचारिके भार सँभारिके दीजियो॥

सिंहावलोकन :

सवैया का एक ऐसा रूप भी होता है, जिसमें कवि चरणांत में आने वाले शब्द से अगला चरण प्रारंभ करता है और चतुर्थ चरण के अंतिम शब्द से प्रथम चरण का प्रारंभ होता है। इसे ही सिंहावलोकन कहते हैं। उदाहरणार्थ—

बँसुरी बन राजत है जबहीं, तब ही छबि जात हिये **पँसुरी**।
पसुरी न चरै तुन-ताम कहूँ, 'घनस्याम' रहै रसना **रसुरी**।
रसु-रीति तजै घर की घरनी, बरनी सर से बरसै **अँसुरी**।
अँसु री ब्रजबाल बिहाल भई, मनमोहन सों न कछू **बसु** री॥

सिंहावलोकन का यह स्वरूप न्यूनाधिक मात्रा में भक्तिकाल में भी उपलब्ध होता है, रीतिकाल में तो अलंकृति पर बल देने के कारण इसे विशेष महत्त्व दिया गया है। कुछ कवियों ने सिंहावलोकन को भी परिष्कृति प्रदान की और शब्द की यथावत् आवृत्ति को महत्त्व न देकर समध्वनिक शब्दों को महत्त्व प्रदान किया। यथा—

सरसे सुख होय गए सब ही, जब तें पिय आय गए **घर से**।
बरसे घन घूमि घने घहरे, तुम्हरे बिन पावक-से, **झर-से**।
गरसे कवि 'ग्वाल' लगे सुपने, भजि क्यों जी गये बिन ही **अरसे**।
हरसे अँग-अंग हमारे अबै, जब से तुम आय हमें **दरसे**॥

यहाँ चरणांत में आए किसी भी शब्द से अगले चरण का प्रारंभ नहीं किया गया है और न चतुर्थ चरण के अंतिम शब्द से छंद का प्रारंभ हुआ है। इसके स्थान पर समध्वनिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यहाँ चार शब्दों की आवृत्ति न होकर आठ समध्वनिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। कवि ग्वाल ने इसमें विशेष रुचि ली है और उनका यह प्रयोग

सिंहावलोकन का परिष्कृत स्वरूप प्रस्तुत करता है। यथावत् आवृत्ति की अपेक्षा इसमें कलात्मकता अधिक है। ग्वाल ने 'यमुनालहरी' में कवित्त छंद में भी सिंहावलोकन रखने का प्रयोग किया है, जो सफल नहीं हो सका।

रीतिकाल में सिंहावलोकन का एक ऐसा छंद भी उपलब्ध होता है, जिसमें चरण के आद्यंत ही नहीं, मध्य में भी सिंहावलोकन का प्रयोग किया गया है। ऐसे छंद शास्त्रीय और कलात्मक तो होते हैं, लेकिन अर्थवत्ता और सरसता की दृष्टि से निष्प्राण हो जाते हैं। जो भी हो, छंद इस प्रकार है—

करकी कर चारु चुरी कर की, करकी लर किंकिनि सुंदर की।
दरकी कुच कंचु-तनी तरकी, तरकी लगै आँख मनो सर की।
सरकी सिर सारी सुबेसर की, सरकी न 'मुकुंद' मनोहर की।
हरकी अति ओप सुधासर की, सरकी छबि सुद्ध सुधाकर की॥

वस्तुतः ब्रजभाषा के काव्यभाषा बनने के साथ ही सवैया छंद अवतरित होता है और उसके साथ ही विकसित एवं परिष्कृत भी। रीतिकवियों ने उसके स्वरूप को समझकर उसका कलात्मक विकास किया है, लेकिन ब्रजभाषा के साथ ही निष्प्रभ हो गया है।

संदर्भ

1. यद्यपि केशव और देव प्रदत्त नाम और स्वरूप मान्य नहीं हो सके, लेकिन विवेचन प्रारंभ कराने का श्रेय उन्हीं को है।
2. आचार्य भिखारीदास ने सवैया की सीमा 21 से 26 तक मानी है, जबकि परवर्ती आचार्यों ने 22 से 26 तक के वर्णों की। यह व्यवस्था मदिरा के स्वरूप के कारण हुई। दास मदिरा को 21 वर्णों मानते हैं, जबकि परवर्ती 22 वर्णों।
3. कुछ आचार्यों ने तगण, रगण आदि की आवृत्ति वाले सवैया छंद भी माने हैं, लेकिन इनमें दो गुरु के पश्चात् लघु आने से गति अत्यंत मंद रहती है और लय बाधित-सी रहती है। परवर्ती आचार्यों ने इन्हें मान्यता नहीं दी है।
4. डॉ० रामानंद शर्मा : भारतीय काव्यशास्त्र, पृ० 474-75

'शोधपीठ'

बी-9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद-244001

मोबाइल : 94125-06917

उत्तर आधुनिकतावाद एवं हिंदी-कविता

प्रो० शंकर बुंदेले

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग

संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय, अमरावती

नवबौद्धिकतावादी क्रांति की एक अद्भुत आइडियालॉजी है—एक ऐसी आइडियालॉजी है, जो सभी पुरानी विचारधाराओं के 'उत्तर' या 'समाप्ति' की उद्घोषणा करती है। पश्चिमी जगत् की इस पोस्ट इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन के भीतर से जन्मी, इस नवविचारधारा ने इंडस्ट्रियल युग की सभी चिंतन-परंपराओं की अवधारणाओं, प्रतिमानों, मूल्यों, प्रविधियों पर प्रश्नचिह्न लगा दिए हैं। अब नवतकनीकी क्रांति से एक नया संसार निर्मित हो रहा है और शक्ति के सभी पुराने केंद्र ध्वस्त हो चुके हैं।

माइंड, मनी और मसल तीनों ने मिलकर, इतने विराट् परिवर्तन-चक्र के सामने 'मानव' को खड़ा कर दिया है कि वह स्वयं विस्मित और भ्रमित हुआ है। यह 'बिहेवियर' का चेंज नहीं है, यह साइकोलॉजिकल पूरी दिमागी बनावट या मानसिकता का परिवर्तन भी है। नए ग्लोबमैन की 'ग्लोबल सोसायटी' में चीजों के साथ रिलेशनशिप की उम्र छोटी हो गई है—'यूज एंड थ्रो' कल्चर का नया विचार-दर्शन आ गया है। सभी मानव-संबंध टूट-फूट गए हैं और प्रत्येक अवधारणा अनिश्चित (एव्री कंसेप्ट इज फेजाइल) है। डेजर्ट, पोलिय, ओलम्पियस तीनों ने मिलकर पोस्ट माडर्निडम का चौखटा तैयार किया है।

सन 1947 में हम औपनिवेशिक गुलामी से मुक्त नहीं हुए कि उसे ढो रहे थे कि नवऔपनिवेशिक गुलामी की गिरफ्त में आ गए हैं। ल्योतार, देरिदा, निशेल फूको, बौद्रिया, पाल डी मान, सुसान सोटाग, इहाव हसन, एडवर्ड सर्ईद आदि के बिना अपनी बात पूरी नहीं कर पाते। फैंकफुर्त स्कूल माई-बाप बन गया है। उत्तर आधुनिकता ने 'नवजागरण' एवं 'एनलाइटेनमेंट' के विरुद्ध संघर्ष किया है। उत्तर आधुनिकता ने 'तर्क की यूरोपीय पद्धति' को नकारते हुए अर्थहीन सिद्ध कर दिया है।

उत्तर आधुनिकता ने घोषणा की है कि वह सांस्कृतिक बहुलतावाद, बहुवचनवाद तथा हर तरह के वैविध्यवाद का समर्थन करता है, जो दबाए गए हैं उन पर (नारी-विमर्श, दलित-विमर्श आदि) नए सिरे से विचार करने की तमन्ना रखता है। इसका मानना है कि ज्ञान के क्षेत्रों में आए विकास प्रगति के अंतःसूत्रों में आधुनिकता का रुतबा कम हुआ है। निशेल फूको का मानना है कि इतिहास के संदर्भ में सोचकर, कहा कि अन्य इतिहासकारों, समाजशास्त्रियों ने 'डिफरेंस', 'डी मिस्टीफाई' और 'डिस्कंटीन्युटी' के कारकों की खोज पर ध्यान दिया है।

इतिहास और राजनीति में अन्य की (अदर) खोज बढ़ी है। अदर को उपेक्षितों के

सरोकारों के केंद्र में रखने से नया केंद्रवाद बना है। बाजारवाद की अर्थव्यवस्था ने हर माल चालू, हर माल बिकाऊ की नई भूमि तैयार की है। यही उत्तर आधुनिकतावाद की व्यापक परिभाषा रही है। इसी अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में युग के इतिहास एवं घटनाक्रम पर अवधान केंद्रित करना अनिवार्य है।

कवि चिंतक श्री कैलाश वाजपेयी उत्तर आधुनिकता 'पद' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करते हुए उसे यों स्पष्ट करते हैं—'उत्तर आधुनिक शब्द का प्रयोग सबसे पहले वुल्फ गैंग वेल्श ने सन् 1870 में और फिर इसके बाद सन् 1926 में बर्नर्ड इडिंग्स बेल ने किया। सन् 1948 के बाद यह शब्द नृत्य शैली, चित्रकला भवन-निर्माण या फिर वास्तुकला, फ़िल्म-निर्माण, राजनीति, समाजशास्त्र, कविता, कहानी, संगीत आदि सभी तरह की विधाओं में तरह-तरह से प्रयुक्त हुआ। इन दिनों कवि चाल्ज़ ओल्सन, जो काला पहाड़ या ब्लैक माउंटेन पोएट्स में से एक था, स्वयं को आधुनिकता-विरोधी कहा करता था। उत्तर आधुनिकता की शुरुआत भी ख़ासी दिलचस्प है। कवि ओल्सन चित्रकार रोशनबर्ग एवं नर्तकी मर्से कनिंघम तीनों ने एक अइंचिंग के सिक्के फेंककर सब तरह की कलाओं की तहरी बनाकर एक तरह के उलजलूल वाद की शुरुआत कर दी।'¹

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक क्रांति ने आमूलचूल परिवर्तनकारी युग का सूत्रपात किया है। इसी कालावधि में समाज, संस्कृति, राजनीति, कला, साहित्य, दर्शन, संगीत, इतिहास, अर्थव्यवस्था और मानव-चिंतन में विप्लवकारी परिवर्तन हुआ है, जो सर्वत्र होता है और जिसका प्रमुख कारण है उत्तर आधुनिकतावाद। अंग्रेज़ी में 'पोस्ट माडर्निडम' या हिंदी में 'उत्तर आधुनिकतावाद' एक ऐसी व्यापक अवधारणा है, जिसे परिभाषित करना सहज संभव नहीं है। यह एक जटिल अर्थ वाला शब्द है, जिसमें उत्तर आधुनिकतावाद की प्रवृत्तियों का विश्लेषण सहज किया जाना मुमकिन होता है।

डॉ० सरस्वती भल्ला ने 'उत्तर आधुनिक' शब्द पर विचार करने से पूर्व 'उत्तर' शब्द पर ध्यान देना अनिवार्य है, ऐसा बताते हुए कहा कि 'उत्तर शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—पूर्व स्थिति का नकार तथा दूसरा पूर्व स्थिति का अगला चरण।'²

इस प्रकार उत्तर आधुनिकता की संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए ये दोनों अर्थ अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। प्रारंभिक रूप में साहित्य व आज के जीवन में आधुनिकता का पुनर्लेखन भी आरंभ हो चुका है। अतः आधुनिक जीवन-दृष्टि ने जो प्रस्तुत किया है, वह पुराना हो गया है और एक नवीन जीवन-दृष्टि समय की माँग रही है।

प्रत्येक क्षेत्र में हम आत्मधिकारों से घिर गए हैं, यह सत्य है। स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों के सभी संकल्प, सभी स्वप्न जलकर राख हो गए हैं। भारत और यूरोप की अपनी-अपनी चिंतन-परंपरा के मूलाधारों की व्याख्या करने का हमने प्रयास नहीं किया। प्रत्येक क्षेत्र में हज़ारों चिंतन निरर्थक लगने लगे हैं। डॉ० कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं—'आज हम कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, इतिहास की प्रासंगिकता के प्रश्न, अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक परंपराओं से कटकर, हल करने की तैयारी में हैं। हमारी जातीय स्मृति को मिटाने की हवा चल रही है।'³

उत्तर आधुनिकतावाद की नकारात्मक तस्वीर को स्पष्ट करते हुए प्रो० कृष्णदत्त पालीवाल ने इसे 'पिनोक्रियो थियरी' की संज्ञा से अभिहित किया है। 'पिनोक्रियो' का अर्थ है,

इटली के बच्चों का खिलौना। पिनोक्रियो सिर्फ झूठ बोलता है और हर झूठ के साथ पिनोक्रियो अपने अहं की तृष्टि करता हुआ, अपनी नाक ऊँची करता रहता है। पिनोक्रियो का झूठवाद पूँजी के विश्व-भर में प्रसार से जुड़ा है। पूँजी की भूख इतनी प्रबल होती है कि सत्ता को बनाती-मिटती ही नहीं है, बल्कि वह सत्ता पर काबिज हो गई है। इस प्रकार उत्तर आधुनिकतावाद को समझाने का प्रयास किया गया है।

डॉ० श्री नारायण समीर ने बताया है कि उत्तर आधुनिकता की प्रस्तावना देनियल बेल ने सन् 1974 में 'द कर्मिंग ऑफ़ द पोस्ट इंडस्ट्रियल सोसायटी' पुस्तक के ज़रिए की।⁴

निश्चित ही उत्तर आधुनिकतावाद एक जटिल अवधारणा रही है, जिसमें विविधतापूर्ण लक्षण परिलक्षित होते हैं। ये सभी इस अवधारणा की प्रवृत्तियाँ कहलाते हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. नारी और दमित-दलित विषयों का अध्ययन
 2. उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव एवं निर्भय यात्रा
 3. आध्यात्मिकता से मुक्ति
 4. पाप्युलर कल्चर तथा लोककलाओं का मिलाप
 5. बहुलतावाद या बहुसंस्कृतिवाद
 6. विकेंद्रीयता के सिद्धांत की सृष्टि
 7. 'वर्ग-संघर्ष' की अपेक्षा नस्ल, जाति, लिंग-भेद पर बल
 8. महान आख्यान या शाश्वतवादी समालोचना सिद्धांतों से मुक्ति
 9. अर्थ की अनेकता तथा अनिश्चितता
 10. बुद्धिवाद तथा पराभौतिकवाद पर बढ़ता अविश्वास
 11. विभेद और विभिन्नताएँ
 12. स्थानीयता और क्षेत्रीयता पर ध्यान
 13. तकनीकी क्रांति में आस्था, कम्प्यूटर युग का स्वागत
 14. विभिन्न जातीय संरचनाओं में मेल-जोल
 15. यूरोपीय विचार-क्रांतियों के पिछलगू बनने में ही मानव-मुक्ति का स्वप्न
 16. इतिहास, संस्कृति, दर्शन, धर्म, कला, साहित्य की पुरानी अवधारणाओं, मूल्य चिंताओं से मुक्ति
 17. लोकप्रिय संस्कृति की ओर उन्मुखता
 18. विखंडनवाद को महत्त्व
 19. युगल विपरीतता के सिद्धांत की स्वीकृति
- इन सभी प्रवृत्तियों के समागम से उत्तर आधुनिकतावाद की विचारधारा का जन्म पाश्चात्य जगत् में लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हुआ है, जिसका भारतीय परिवेश में लगभग पचास वर्षों पूर्व प्रादुर्भाव हुआ है। इसी अवधारणा का हिंदी-कविता के क्षेत्र में रूपायतन करना हमारा अभीष्ट रहा है।

आधुनिक हिंदी-कविता में उत्तर आधुनिकतावादी प्रवृत्तियाँ

मानव-सभ्यता एवं संस्कृति अनेक सोपानों को पार करती हुई, आज उत्तर औद्योगिक

एवं उत्तर आधुनिक युग में पहुँच गई है। कंप्यूटर, ईमेल, इंटरनेट आदि के माध्यम से सूचना एवं प्रौद्योगिकी में क्रांति आई और विभिन्न संस्कृतियों का आदान-प्रदान बढ़ने लगा है। अतः समस्त विश्व भौगोलिक गाँव बन गया है। आर्थिक उदारीकरण के कारण बाज़ार महत्वपूर्ण हो गया है। विज्ञापन का महत्व बढ़ा है। प्रचार-माध्यम एवं प्रबंधन की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो गई है, जिससे ज्ञान का अधिकाधिक प्रसार होने लगा है। भौतिकता के शिखर पर मानव अवस्थित हो गया है। समाज में स्वार्थाधता के कारण वैयक्तिक सुख में ही मानव डूब गया है। व्यक्तित्व के कारण विघटन की चरम सीमा आत्महत्या एवं मादक द्रव्यों के सेवन में दिखलाई पड़ती है। मानवीय संवेदनाओं के स्थान पर यंत्र महत्वपूर्ण हो गया है। जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन आया है। धर्म, अर्थ, घर व बाहर सभी क्षेत्रों में यह परिवर्तन दृष्टिगत होता है। धर्म संप्रदाय बन रह गया है। सत्तालोलुपता एवं भ्रष्टाचार जीवन के केंद्र में आ गए हैं। अर्थ, जो जीवन को संचालित करने का साधन-मात्र था, मनुष्य के जीवन का मुख्य आधार बन गया था। स्त्री-पुरुष के संबंधों में अंतर आ गया है। 'काम' जो जीवन का स्वस्थ पक्ष समझा जाता था, 'अर्थ' से जुड़ गया है, जिससे कालगर्ल, वेश्या, लैंगिक विकृतियाँ आदि समाज में हावी हो गई हैं। परिवर्तन के इस दौर में हिंदी-कविता भी प्रभावित हुई है, यह सत्य है।

उत्तर आधुनिकता का अर्थ है—पहला, आधुनिकता का 'उत्तर पक्ष' व दूसरा आधुनिकता के अवसान पर एक नई अवधारणा या स्थिति का पक्ष। यह आधुनिकता का ही पुनर्लेखन है। आधुनिकता जिन तत्त्वों को प्रस्तुत नहीं कर पाई, उनका 'विमर्श' उत्तर आधुनिकता है। अतः आधुनिकता ने जो प्रस्तुत किया है, वह बासा (पुराना) हो गया है। पूर्व में 'आधुनिकता' की संकल्पना को व्याख्यायित करना नितांत आवश्यक है, जिसे निम्नानुसार अभिव्यक्त किया जा सकता है।

आधुनिकता औद्योगिक संस्कृति से उत्पन्न वह जीवन-दृष्टि है, जिसे निरंतर संघर्ष करते रहने के पश्चात् 'मूल्य' के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। 'कालविशेष' की अवधि के साथ भी जोड़ा गया है। नवीन प्रवृत्तियों के साथ भी इसका संबंध है।

'आधुनिकता' के अंतर्गत पाश्चात्यीकरण, शहरीकरण, परंपराभंजन, वैज्ञानिक रुचि, नवीन नैतिकता आदि अनेक प्रवृत्तियों का समाहार है। वास्तव में साहित्यिक संदर्भ में वैज्ञानिक आविष्कारों, सामाजिक परिवर्तनों तथा सांस्कृतिक मूल्यों में भंजन, परिवर्तन की साहित्यिक परिणति ही आधुनिकता है, जिसे मानवीय चेतना के विकास के साथ भी जोड़ा जा सकता है। सिद्धांत एवं व्यवहार दोनों का यह समन्वित रूप है।

'उत्तर आधुनिकता' को समझने के लिए हम गोपीचंद नारंग की यह व्याख्या देख सकते हैं—'आधुनिक समाज की तेज़ी से परिवर्तित होती हुई स्थिति, नए समाज की वृत्ति, समस्याएँ, मानसिक अभिवृत्तियाँ या सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण या संस्कृति का परिवर्तन जो संकट की कोटि में आता है, अब इस नए संदर्भ में शामिल है।'⁵

'उत्तर आधुनिकता' की अवधारणा को सही रूप में आकलित करने के लिए पूर्व एवं पश्चिम की तत्कालीन परिस्थितियों का सम्यक् एवं तुलनात्मक विश्लेषण ज़रूरी है। वास्तव में उत्तर आधुनिकता की जन्मभूमि फ्रांस रही है। उसका प्रभाव पहले अमेरिका में पहुँचा और फिर आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से उत्तर आधुनिकता आधुनिकता के अनंतर है

और उससे विमुख भी। इन दोनों को एक-दूसरे के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जा सकता है। भारत में आधुनिकता प्रगतिशीलता के प्रतिक्रियास्वरूप आई, जबकि पश्चिम में आधुनिकतावाद (एनलाइटेनमेंट प्रोजेक्ट) प्रबोध परियोजना का हिस्सा रहा है। पश्चिम में प्रथम विश्वयुद्ध का समय आधुनिकता का है, जिसमें मनुष्य ने वैज्ञानिक प्रगति के स्वप्न सँजोए, परंतु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वे खंड-खंड हो गए थे। शताब्दियों से चली आ रही मानवीय चेतना की संकल्पना उपकेंद्रित हो गई। अस्तित्ववादी विचारकों ने निर्णय के अधिकार को सुरक्षित रखा और कहा कि मनुष्य आत्मबोध-संपन्न प्राणी है, परंतु शीघ्र ही यह भ्रम भी टूट गया। प्रौद्योगिक व तकनीकी परिवर्तनों से समाज 'मीडिया समाज' में परिवर्तित हो गया है, जिसने उपभोक्तावाद के रूपों को उत्पन्न कर दिया। कंप्यूटर मस्तिष्क ने ज्ञान के स्वरूप को ही बदल डाला व इसकी उपलब्धि में नवीन समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। इन परिवर्तनों व सांस्कृतिक वातावरण को उत्तर आधुनिकता ही स्पष्ट कर सकती है। उत्तर आधुनिकता के जो लक्षण भारत में दिखाई पड़ रहे हैं, पश्चिमी देशों में लगभग 140 वर्ष पूर्व दिखाई पड़ने लगे थे, यह ऐतिहासिक सत्य है।

श्री जगदीश चतुर्वेदी ने उत्तर आधुनिकता की विशेषताएँ बतलाते हुए कहा है कि 'पिछले सारे खेमे का काव्य 'उगला' हुआ है, वह संदेहास्पद व निरर्थक है। सामाजिक संस्कारों में घिनौनापन है। प्रेमिकाओं की घनिष्ठता में जीना संभव नहीं है। अमेरिका, जापान, फ्रांस, रूस और इंग्लैंड आदि देशों के काव्योन्मेष से परिचय पाना इनकी 'हॉबी' है। रोटी, हड़ताल, राजनीति विषय कविता के योग्य नहीं हैं। प्रतिबद्धता के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। सैक्स, घृणा, नदी, पागलखाना, वनमानुस और शैतान पर कविताएँ लिख सकते हैं।'⁶ आधुनिक कविता में उत्तर आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों की अनुगूँज दिखाई देती है। वास्तविकता में उत्तर आधुनिकता एक विचारधारा के साथ ही साथ समीक्षा-पद्धति भी रही है। इस दृष्टि से उत्तर आधुनिकता के अनेक अभिलक्षण एवं अंतर्वृत्तियाँ 'कामायनी' में मौजूद हैं। उसकी गत्यात्मक अर्थवत्ता में वह शक्ति विद्यमान है, जिससे वह उत्तर आधुनिक समीक्षात्मक प्रतिमानों के आधार पर अपना पुनर्मूल्यांकन करवा सकती है। इस प्रकार उत्तर आधुनिकता की प्रवृत्तियों को कामायनी में देखा जा सकता है, जिसका विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है—

आधुनिकता जहाँ कालगत क्रमबद्धता का अतिक्रमण करते हुए कालातीत दृष्टिकोण का परिचय देती है, वहीं वह शुद्ध इतिहास के निषेध द्वारा बीती हुई घटनाओं की क्रमागत प्रस्तुति का विरोध करती है। वह इतिहास की मृत्यु की घोषणा करते हुए, विगत घटनाओं के आभ्यंतर को नकार कर, कालदोषता को स्थापित करती है। उत्तर आधुनिकता की कालिक अवधारणा काल को निरवधि रूप में देखने की है। वह सीमाहीन काल की संकल्पना प्रस्तुत करती है। साथ ही भूत, वर्तमान एवं भविष्य को अलग न मानकर युगपत अथवा समानांतर मानती है।

जयशंकर प्रसाद अपने सार्वभौम शाश्वत दृष्टिकोण को संपूर्ण मनुष्यता के विकास, उसके संरक्षण, हितचिंतन तथा युगयुगांत की गंभीर परिवर्तनकारी, गतिशील शक्तियों को समर्थन और मानव भविष्य के प्रति विवेकपूर्ण आस्वस्ति भाव 'कामायनी' की काल चिंतात्मकता को कालातीत बना देता है। प्रसादजी विश्व-संयोजन की दृष्टि से मानव-इतिहास को चेतना के धरातल पर ग्रहण करके 'अखिल मानव-भावों के सत्य' को मानव-संपत्ति बनाते हुए

मानस-चेतना के राज्य को पूर्णता प्रदान करते हैं। वे कहते हैं—‘चेतना का सुंदर इतिहास, अखिल मानव-भावों का सत्य। पड़ा है बन मानव-संपत्ति, पूर्ण हो मन का चेतनराज।’⁷

‘कामायनी’ अखंड मानव-संस्कृति तथा चेतना का संश्लिष्ट इतिहास प्रस्तुत करने के कारण उत्तर आधुनिकता के कालातीत दृष्टिकोण से जुड़ जाती है, जिससे वह पहले से भी ज्यादा प्रासंगिक, अर्थगर्भी तथा उपादेय प्रतीत होने लगती है। वे कहते हैं—

1. देव न हम थे और न ये हैं, सब परिवर्तन के पुतले।
2. दुख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात।
3. उस एकांत नियति शासन में चले विवश धीरे-धीरे।

यहाँ ‘कामायनी’ काल की गतिशीलता तथा घटनीयता का संकेत करती है, जिससे वृत्तीय कालबोध का जो स्वरूप उभरता है, वह उत्तर आधुनिक के कालचिंतन से स्वतः जुड़ जाता है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था के दबावों को आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक स्तरों पर ही महसूस नहीं किया गया, अपितु कवि को भी इसने प्रभावित किया है। आज का साहित्यकार वैश्विक अर्थव्यवस्था के परिणामों से पूर्णतः परिचित है, अभी वह दुविधाग्रस्त मनःस्थिति में है। इससे जूझने के लिए वह स्वयं को तैयार कर रहा है। नरेश सक्सेना भी इस परिणति से परिचित हैं और उद्वेलित भी, परंतु इसका सर्जनात्मक प्रतिरोध कैसे किया जाए? इसे लेकर वे चिंतित एवं दुविधाग्रस्त रहें हैं—

अरे! कोई देखो / मेरे आँगन में गिरा कटकर,
गिरा मेरा नीम?⁸

घोर यांत्रिकता ने मानव को भीड़ बनाकर एक पदार्थ में परिवर्तित कर दिया है। केदारनाथसिंह लिखते हैं—

अब बुढ़िया के हाथ
टमाटरों से खेल रहे हैं,
वह एक भरे टमाटर को धीरे से उठाती है
और हरी पत्तियों के नीचे,
छिपा देती है माँ की तरह,
मुझे बुढ़िया की यह हरकत,
बेहद दिलचस्प लगती है,
यह माँ का एक बिलकुल नया चेहरा है,
जो हरी पत्तियों के नीचे से,
झाँक रहा है।⁹

आज का उत्तर आधुनिक युग विभिन्न प्रकार के सामाजिक अंतर्विरोधों, व्यावसायिक संस्कृति द्वारा उत्पन्न संवेदना, उपभोगमूलक जीवन-दृष्टि का युग है। उपभोक्तावादी संस्कृति विभिन्न प्रकार के साधनों का जाल बिछाती है ताकि मनुष्य उस अकेलेपन से उबर सके। यहीं उत्तर आधुनिकता की अभिव्यक्ति हुई है।

उपभोक्तावादी संस्कृति में मानव-संबंध शिथिल पड़ गए हैं। कविवर राजेंद्र शर्मा ने

‘नीलिमा बंसल’ नामक कविता में इन परिवर्तित होते हुए मानवीय संबंधों को उजागर किया है। यहाँ पारिवारिक संबंध निःशेषप्रायः हो चुके हैं। मात्र ‘अर्थ’ तक इनका संबंध है। वह कमाने की मशीन के अलावा और कुछ नहीं—

रिटायर्ड पापा, बूढ़ी माँ और लाडले छोटी की लाडली
नीलू में धीरे-धीरे प्रवेश करती इस उदासी से,
भयभीत रहने लगा है घर,
और शंका कुशंका पार करते हुए, उदासीन हो जाता है
हर महिने की पहली शाम के अलावा।¹⁰

आज उत्तर आधुनिकता के प्रभाव को कविता में स्पष्टतः देखा जा सकता है। प्रेम का स्वरूप बदल चुका है, उसे कवि नाम देने की कोशिश कर रहा है। अतीत की स्मृतियों से जुड़ा होकर भी उससे कटकर जी रहा है और दुविधा में है कि इस उपभोक्तावादी संस्कृति में सब-कुछ बदल रहा है—वह लिखता है—

एक गहराया हुआ सुख, एक विस्मृति, एक डूबापन
हरसिंगार-सा वह प्यार
उसको नाम क्या दूँ?¹¹

देश की व्यवस्था चरमराती हुई नज़र आ रही है, भूगोल व इतिहास बिगड़ गए हैं। उत्तर आधुनिकता ने इतिहास की मृत्यु की घोषणा कर दी है। वेदप्रकाश पांडेय लिखते हैं—

बिगड़ रहा भूगोल है, धूमिल है इतिहास,
देश रसातल जा रहा है, नेतागण आकाश।¹²

मनुष्य वस्तु बन गया है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य को नया रूप प्रदान किया है। वह ‘वस्तु’ बन गया है, जो उससे कहीं अधिक बड़ा सत्य है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कहते हैं—

जो पोस्टर हैं / वे आज के युग में
आदमी से अधिक बड़े सत्य हैं
उन्हें सब पहचानते हैं / वे ही महान हैं।¹³

नारी को भी ‘वस्तु’ मानकर उसका शोषण किया जा रहा है। मंगलेश डबराल की ‘अगले दिन’ कविता में दैहिक रूप से शोषित स्त्री का चित्रण है। इस स्त्री के जीवन के इस स्तर को कवि ने निजी अनुभव के रूप में नहीं देखा, अपितु वह पूरी सामाजिक प्रक्रिया को जानने को उत्सुक है, जिसमें स्त्री को मनुष्य न मानकर ‘देह’ समझा जाता है और उसका उपभोग किया जाता है। वे लिखते हैं—

अगले दिन उसके भीतर
मिलेंगे झड़े हुए कितने पत्ते
अगले दिन मिलेगी खुरों की छाप
अगले दिन अपनी देह लगेगी बेकार
आत्मा हो जाएगी असमर्थ।¹⁴

मंगलेश डबराल की कविता के उत्तर आधुनिकतावाद की प्रवृत्तियों का रूपांकन करते

हुए विजयकुमार यों बताते हैं—‘मंगलेश डबराल की संवेदना बेमेल आर्थिक विकास से दूर-दराज़ के क्षेत्रों में उत्पन्न असुरक्षा, विस्थापन और टूटन के अहसास की कविता है। उनकी कविता परंपरागत कृषि-समाज से भारी उद्योग के युग में छलांग लगाकर जानेवाले देश की अभिशप्त युवापीढ़ी के अहसास की कविता है। अपनी जड़ों से उखड़कर आए आदमी की कोमल संवेदना का महानगरीय परिवेश में किस प्रकार पदार्थीकरण होता है, इसे मंगलेश ने अब तक बहुत ठोस और भौतिक संदर्भों में चरितार्थ किया है।¹⁵ मंगलेश डबराल इन्हीं प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन करते हुए यों कहते हैं—

जिन्हें दिखता नहीं,
उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता,
जो लँगड़े हैं, वे कहीं नहीं पहुँच पाते,
जो बहरे हैं, वे जीवन की आहट नहीं सुन पाते,
बेघर कोई घर नहीं बनाते,
जो पागल हैं, वे जान नहीं पाते
कि उन्हें क्या चाहिए।¹⁶

अतः मनुष्य आंतरिक संघर्ष से विक्षिप्त-सा हो गया है।
मैं हूँ कि चिंता करता हूँ, व्याकुल होता हूँ,
झुकता हूँ, समझौते करता हूँ,
हाथ-पैर में दर्द से कराहता हूँ।¹⁷

उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में स्त्री-पुरुष संबंध—नए आयाम

श्री मंगलेश डबराल की ‘अमीर लड़की’ कविता में स्वच्छंद भोग का चित्रण है। संभोग की लालसा हेतु वह पुरुषों को विभिन्न प्रकार से प्रलोभन देती है। प्रतिदिन प्रेम को नया अर्थ देना चाहती है, विभिन्न पुरुषों के साथ संभोग करना, उसकी दिनचर्या है और पुरुषों को आकर्षित करना एक कला भी।¹⁸

पुरुषों के लिए प्रेमिका का प्यार एक पेड़ की तरह है, जिसकी छाया में वह विश्राम करना चाहता है, क्योंकि उसके लिए वह पूरा गाँव है। ‘दिल्ली’ नामक कविता में मंगलेश डबराल लिखते हैं—

इस शहर में दिखाई देते हैं विचित्र लोग,
मेरे शत्रुओं से मिलते हैं उनके चेहरे,
आरामदेह कारों में बैठकर,
वे जाते हैं इंदिरा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे की ओर।¹⁹

श्री मंगलेश डबराल की दो कविताएँ ‘आंयोबा’ और ‘अमेरिका में कविता’ इस विसंगतिपूर्ण जीवन-स्थिति का उद्घाटन करती हैं। अमेरिका में केवल आगे ही बढ़ना है, पीछे नहीं लौटना। ‘मनुष्य हाशिये की ओर’, ‘लेखक की रोटी’ में समाज के भीतर होनेवाले परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए डबराल मनुष्य को हाशिये की ओर जाता महसूस करते हैं और कहते हैं—‘उपभोक्ता चीजों का एक विशाल बाज़ार जगमगा रहा है और उनमें ज़बरदस्त प्रतिस्पर्धा है।

कंप्यूटर, रंगीन टेलीविजन, मोबाइल फोन, सोने की हीरे जड़ी घड़ियाँ और नाना प्रकार के जूते आपस में टकरा रहे हैं, एक-दूसरे पर गिर पड़ रहे हैं।²⁰

अतः भारतीय संस्कृति की पहचान ख़तरे में है। पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण हो रहा है। मनुष्यता की परिभाषा बदल गई है।

‘एक बार आयोबा’ के माध्यम से अमेरिका परिवेश एवं संस्कृति का चित्रण है। वहाँ के जीवन में व्याप्त कुंठाओं का चित्रण है। निरंतर कुछ पाने की लालसा पारिवारिक व्यवस्था को तोड़ती है। ‘हम जो देखते हैं’ कविता-संग्रह में एक तरफ़ हत्यारी संस्कृति है तो दूसरी ओर उपभोक्तावाद व बाज़ारवाद की दुनिया है। मंगलेश डबराल अमानवीय शक्तियों का विरोध करते नज़र आते हैं। यह कविता-संग्रह के शीर्षक में ही उत्तर आधुनिकता है। हम का अर्थ पाठक या मंगलेश? पाठक जो देखता है, वह कविता में दिखाई देता है। कवि तो कविता से पूर्व देखता है। इसप्रकार कवि का देखना और पाठक का देखना दोनों अलग चीज़ें हो जाती हैं। इसलिए कवि ही देखता है। कवि जो देखता है, वह हम-सब देखते हैं। भाषा के लोगों, सैट्रिक या वाक्केंद्रित अर्थवाद में यह मान लिया जाता है कि जो एक देखता है वही सब देखते हैं और यदि नहीं देखते तो देखना चाहिए। आज जहाँ चारों ओर आतंकी वातावरण है। अतः मंगलेश डबराल अत्याचारियों को निर्दोष घोषित करते हैं—

अत्याचारी इन दिनों ख़ूब लोकप्रिय हैं,
कई मरे हुए लोग, उसके घर आते-जाते हैं।²¹

यह ऐसा समय है, जब हर व्यक्ति एक आतंक, डर व डिप्रेशन में है। डॉ० सुधीश पचौरी कहते हैं—‘यदि कविता कवि का चिह्न और कवि को एक मनुष्य का चिह्न मान लिया जाए और इस तरह की कविता को कवि का व्यंजक (सिग्नीफायर) मान लिया जाए तो ख़बर हो कि मंगलेश गहरे डिप्रेशन में कविता लिखते हैं।’²²

‘बार-बार कहता था’ मंगलेश डबराल की कविता का भाव है—

ज़ोरों से नहीं बल्कि
बार-बार कहता था मैं अपनी बात,
उसकी पूरी दुर्बलता के साथ,
किसी उम्मीद में बतलाता था निराशाएँ।²³

यह निराशा क्यों? घर टूटने की निराशा है। यदि घर होता तो चैन मिलता। घर से मंगलेश बिछुड़ गए हैं, लौट नहीं सकते और नए घर में जी भी नहीं सकते। अतः उम्मीद और लाचारी दोनों ही ‘घर शांत है’ कविता में अभिव्यक्त होते हुए नज़र आते हैं—

और मैं लाचार नहीं हूँ, इस समय
बल्कि भरा हुआ हूँ, इस ज़रूरी वेदना से,
और मुझे याद आ रहा बचपन का घर
जिसमें आँगन में, औँधा पड़ा मैं,
पीठ पर धूप सेंकता था।²⁴

घर से निकलने के बाद कविता हाशिए पर पहुँच जाती है। यह भी निराशा का कारण है। कविता जो मंगलेश के जीवन के केंद्र में थी, वह हाशिए पर चली गई तथा इन दिनों

कालातीत कवि जीते-जी कालातीत हो जाते हैं। कविता कहना आज परेशानी हो गई है। इस परेशानी को छिपाना नई मुश्किल है, कविता एक असंभव स्थिति हो गई है। 'हाशिए की कविता' में कवि कहता है—

अगर हम केंद्रबिंदुओं से कुछ बाहर देखने का,
कष्ट करें तो हाशिए पर हमें एक कवि दिखेगा
एक कागज़ से दूसरे कागज़ पर कविता को उतारता हुआ²⁵

'सात पंक्तियाँ' कविता में कवि इसी लेखन की समस्या से जूझता हुआ नज़र आ रहा है। यूटोपिया के बिना कविता संभव नहीं। अतः मंगलेश देखते हैं सब-कुछ बिखर रहा है। यही है उत्तर आधुनिक विपर्यास। अमेरिका में कविता नहीं और हिंदुस्थान में भी यह संभावना मृतप्राय हो रही है। अमेरिका में कविता नहीं, चुंबन होते हैं। यथार्थ के स्थान पर नया यथार्थ अभिव्यक्त हो रहा है। यही व्याकुलता कवि के मन में उभरकर आती है। इसलिए अब कविता में एक सरल पंक्ति तक नहीं बन पाती। अतः मंगलेश का समूचा काव्य अब किसी बड़े उद्देश्य के लिए समर्पित नहीं है, परंतु एक बचाव की कोशिश है—

मैं चाहता हूँ कि स्पर्श बचा रहे,
वह नहीं जो कंधे छीनता हुआ,
आततायी की तरह गुज़रता है
बल्कि वह जो एक अजनबी यात्रा के बाद
धरती के किसी छोर पर पहुँचने जैसा होता।²⁶

उस स्वाद को कवि बचाना चाहता है, जो मिठास व कड़वाहट से दूर चीजों को खाना नहीं बल्कि उन्हें बचाने की कोशिश एक नाम है। कुछ शब्द बचे रहें तथा—

प्रेम में बचकानापन बचा रहे
कवियों में बची रहे थोड़ी लज्जा।²⁷

यहाँ कोई प्रतिरोध, लड़ाई या संघर्ष कुछ भी नहीं है। यहाँ 'बचाव' की कोशिश की गई है। मंगलेश सरल वाक्य की तलाश में हैं। उनका 'घर' उनकी कविता है। उसमें रहना कठिन हो रहा है। अतः बचाव की संभावना जताते 'गद्य' की ओर जाते हैं। उनका गद्य तर्क नहीं करता, भाव की भाषा में बात करता है। बच्चों के लिए चिट्ठी, नींद की कविता, कागज़ की कविता आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। सुधीश पचौरी इन्हें डिप्रेशन के एकाग्र कवि मानते हुए कहते हैं— 'डिप्रेशन से शैथिल्य पैदा होता है। एक अहिंसक बेचारगी भरा, करुणा के लिए इंतज़ार करता शैथिल्य। एक भारतीय ढंग की उत्तर आधुनिक अवस्था, जिसे ल्योतार ने शैथिल्य का युग कहा है, मंगलेश के यहाँ उनके न चाहते हुए भी बार-बार आती हैं। अनुभव से बाहर कोई सत्य है— यह विश्वास मंगलेश की कविता में सक्रिय है।'²⁸

मंगलेश वेदना के कवि हैं। यह वेदना हाशिये पर है, उसे जीने का अधिकार है। हाशिए का कोई केंद्र नहीं होता, उसके आसपास कई केंद्रबिंदु होते हैं, जो उसे बार-बार अपनी ओर आकर्षित करते हैं और जब हाशिया काफ़ी लाचार हो जाता है तो चीख़कर कहता है कि मुझे यहीं छोड़ दो।²⁹

यहाँ कोई किसी प्रकार का संघर्ष नहीं है, कोई सैद्धांतिक नहीं है, पर अपनी बात पर

अडिग रहने का 'संकल्प' है। यहीं से मंगलेश को एक सरल वाक्य की तलाश शुरू हो जाती है। उत्तर आधुनिकता की प्रमुख प्रवृत्तियों में इतिहास परंपरा-बोध को साहस के साथ नकारना प्रमुख है। इसी संदर्भ में चौथा सप्तक के कविवर राजेंद्रकिशोर ने अपनी 'इतिहास-बोध' कविता में इतिहास से जुड़े उस समस्त परंपरा-बोध को साहस के साथ नकारा है, जो एक निरर्थक अनुभव बन चुका है। कवि के अनुसार—

यह एक फरेब था इतिहास का,
इस फरेब में मैंने,
उन गुमशुदा लोगों की तलाश में भुला दिया,
अपनी उम्र का हिसाब।³⁰

उत्तर आधुनिकता की एक दूसरी प्रवृत्ति है, पुरानी बनी-बनाई मान्यताओं पर आघात एवं अस्वीकृति। इस संदर्भ में लेखन-कर्म की निरर्थकता पर धूमिल ने प्रश्नचिह्न लगाया है। वे कहते हैं—लेखन निरर्थक है, क्योंकि वह सक्रिय कर्म से पलायन है। यह विचार वस्तुतः रचनाकर्म की बुनियाद पर ही आघात करता है। धूमिल कहते हैं—

जब इससे न चोली बन सकती है / न चोगा,
तब आपै कहो ससुरी कविता को,
जंगल से जनता तक ढोने से क्या होगा?³¹

उत्तर आधुनिकवाद की अन्य प्रवृत्तियाँ—उन्मुक्तता

उत्तर आधुनिकता में ऐसे ही भाव हैं, जिनमें खुलापन और ऐंद्रिकता भी हावी हो जाती है। भूमंडलीकरण का प्रभाव इसमें स्पष्टतः परिलक्षित होता है। शहरी संस्कृति का गाँवों में पदार्पण परिलक्षित होता है। वहीं खलील-जिब्रान भी हैं, जो उपभोक्तावादी संस्कृति के परिचायक हैं। यहाँ नारी एक वस्तु बन जाती है मात्र उपभोक्ता के लिए। ऐसी ही कविता अवधेशकुमार की 'जिप्सी लड़की' है, जो पूरे अभावग्रस्त ग्राम को खड़ा कर देती है, जहाँ अत्याचार एवं दमन पहाड़ की उँचाइयों को स्पर्श करने लगता है। नशे में धुत हवलदार शहरी संस्कृति का परिचय दे ही डालता है। अवधेश कुमार कहते हैं—

जिप्सी लड़की के गीत के साथ कौवे की बोली और भालू का नाच
जेबकतरों और पर्यटकों का हुजूम: किराये का कमरा और
दारू के नशे में टुन्न हवलदार साहब।³²
हिलता है साँप का फन/ डफली देर तक बजती है,
सोई हुई जिप्सी लड़की की कुनमुनाती टाँगों के बीच,
रातभर पहाड़ केशरोत्सव में।³³

उत्तर आधुनिकता की अन्य प्रवृत्ति है नास्तिकता; आस्तिक, आध्यात्मिक एवं आत्मदर्शन की अस्वीकारोक्ति इस विषय में चंद्रकांत देवताले कहते हैं—

ईश्वर होता तो इतने देर में उसकी देह कोढ़ से गलने लगती, सत्य होता तो वह अपनी न्यायधीश की कुर्सी से उतरकर जलती सलाखें आँखों में खुपस लेता। सुंदर होता तो वह अपने चेहरे पर तेजाब पोत अंधे कुएँ में कूद गया होता।³⁴

परंपरा के टूट जाने की कचोट उत्तर आधुनिकता में दिखाई देती है। आधुनिकता के कारण मनुष्य परंपरा के समूल नाश में तत्पर है, जिसका परिणाम भयावह हो सकता है—यह सब वह अपने स्वार्थ के लिए कर रहा है। नरेंद्र कोहली की 'पेड़' नामक कविता में इसी स्वार्थपरता व उसकी भयावहता की परिणति को देखा जा सकता है—

पितामह मुझे छोट दो / झुलस रहा हूँ गर्मी से
 लो बेटा /
 पितामह / मुझे फल दो बच्चों के लिए / वे भूखे हैं
 लो बेटा
 मैंने देखा / पितामह के नाम पर उखड़ी हुई जड़ें पड़ी हैं सामने
 मैं चीखने लगा हूँ,
 पितामह, पितामह, मेरे पैरों की ज़मीन हिलने लगी है।³⁵

उत्तर आधुनिकता में 'देह' एक महत्वपूर्ण केंद्र है। 'थोड़ी-सी जगह' काव्य-संचयन में अशोक वाजपेयी की एक सौ तीन प्रेम कविताएँ हैं, जिनमें एक नए ढंग का श्रृंगार, नई स्त्री, देह व दैहिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। वे कहते हैं—

उदासीन /
 देह की पुकार / सुमुखि
 सुनती है / देह ही।³⁶

उनकी कविता में प्रेम मानो 'केलि' बन जाता है। विभिन्न केलि-मुद्राएँ यहाँ देखी जा सकती हैं। कवि मुक्त 'लिविडो' की अभिव्यक्ति करता नज़र आता है। 'अंगीकार' कविता में कवि यों अभिव्यक्त करता है—

जब वह अपने ओठों पर
 चुंबन की प्रतीक्षा कर रही थी,
 बसंत ने चुना स्पर्श के लिए
 उसके बाएँ कुचाग्र को।³⁷

इसी प्रकार प्रेम द्वारा सुख की प्राप्ति वह विविध उपमानों के माध्यम से मात्र संभोग-योग्य देह ही पाता है। हर जगह प्रेम के बहाने वह देह को टटोलने लग जाता है। 'वह नहाती है' कविता में कहता है—

वह नहाती है / प्राचीन तन्वंगी
 अनंत के ओसारे में,
 कविता के गवाक्ष के नीचे
 लज्जारुण जेल से
 या कि उत्तेजित कविता से।³⁸

श्री अशोक वाजपेयी की दृष्टि से कविता या साहित्य अस्तित्व का एक वैकल्पिक रूप है। 'वह तमाम सच्चाइयों के बीच किंतु उनसे विशिष्ट एक ऐसी सच्चाई है, जिसमें कोई भी सच्चाई अपवर्जित नहीं है, जिसमें सच्चाई की बहुलता का अद्वितीय रूप से निःसंकोच स्वीकार है। उसमें अंतहीन केंद्र है, वह गल्प है जैसे कि धर्म, विज्ञान, इतिहास, राजनीति आदि सभी

गल्प ही हैं।¹³⁹

इस प्रकार प्रेम-संबंधी कविताओं में अशोक वाजपेयी अनेक ढंग से प्रेम की संभावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं, जो उत्तर आधुनिकतावाद की शैली को रूपायित करती है।

उत्तर आधुनिकतावाद का समेकित विश्लेषण आधुनिक हिंदी-कविता में करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिकता की मान्यता को उत्तर आधुनिकता ने अमान्य करते हुए यह उद्घोषणा की है कि उत्तर आधुनिकतावाद आधुनिकता के विरोध में प्रतिफलित विचारधारा है तथा वह आधुनिकता का पुनर्लेखन भी है। इसीके साथ उत्तर आधुनिकतावाद की अवधारणा एक सांस्कृतिक अवस्था को अभिहित करती है। आज हम सूचना प्रौद्योगिकी युग से होते हुए 'मीडिया समाज' में इसके माध्यम से पहुँच गए हैं। उत्तर आधुनिकतावाद के विविध लक्षणों में वह साहित्य लेखन तथा इतिहास की मृत्यु की उद्घोषणा करते हुए बृहत् पूँजीवाद तथा उपभोक्तावादी समाज को अभिचित्रित करती है। इसमें केंद्रहीनता या अपकेंद्रीयता को वरीयता प्राप्त होती है।

यह सत्य है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था, उपभोक्तामूलक संस्कृति, इलैक्ट्रॉनिक माध्यम के विस्तार के चलते कविता के लिए संकट बढ़ा है। किंतु कविता समाप्त नहीं होगी। चूँकि साहित्य की मृत्यु पर प्रश्नचिह्न लगा है। साहित्य ने निरंतर परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में अपने-आपको परिभाषित किया है। उसकी अपनी स्वायत्तता है। वस्तुएँ मात्र साधन एवं माध्यम हैं।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि उत्तर आधुनिकतावाद की सारी प्रवृत्तियों के संवाहक ये सभी भारतीय आधुनिक कविगण रहे हैं, किंतु भारतीय साहित्यिक परिवेश में इस प्रवृत्ति का जन्म अधुनातन काल में (लगभग 50 वर्ष पूर्व) हुआ है, जिससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तर आधुनिकतावाद की मूल प्रवृत्ति का आत्मगत स्वरूप पश्चिमी देशों के समाज एवं सांस्कृतिक जीवन से अभिभूत रहा है, जबकि बदलती हुई परिस्थितियों में भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उसका नवीनतम रूप, जो अभिव्यक्त हुआ है, उसमें पाश्चात्य उत्तर आधुनिकतावाद से परिवेशगत पूर्णतः पार्थक्य है, जिसका आधुनिक हिंदी-कविता में पूरी तरह मूल्यांकन करना यहाँ न्यायसंगत प्रतीत हुआ है।

संदर्भ

1. कैलाश वाजपेयी, शब्द और भाषा, नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली अंक 84, फरवरी 2010, पृ० 30
2. आधुनिक हिंदी-कविता : विविध आयाम, डॉ० सरस्वती भल्ला, उत्तर आधुनिकता, पृ० 66
3. उत्तर आधुनिकतावाद की ओर, कृष्णदत्त पालीवाल, भूमिका गोपीचंद नारंग, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र, 2000, पृ० 376
4. अनुवाद और उत्तर आधुनिक अवधारणा, डॉ० श्रीनारायण समीर, पृ० 63
5. उत्तर संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र, पृ० 376
6. ललितकुमार श्रीवास्तव (संपादक) कृति परिचय, अकवितांक, जबलपुर, जून 1967, पृ० 11
7. कामायनी, जयशंकर प्रसाद
8. वर्तमान साहित्य, कविता विशेषांक, अप्रैल-मई 1992, नरेश सक्सेना, पृ० 43
9. केदारनाथ सिंह, जमीन पक रही है, पृ० 33

10. राजेंद्र शर्मा, नीलिमा बंसल, पृ० 185
11. चंद्रकांत वांदिवेडकर (सं०) धर्मवीर भारती ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 348
12. वेदप्रकाश पांडेय, बढ़ने दो आकाश, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ० 64
13. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, काठ की घंटियाँ, पृ० 343
14. मंगलेश डबराल, पहाड़ पर लालटेन, पृ० 18
15. विजयकुमार, कविता की संगत, पृ० 125, 126
16. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1997 -पृ० 55
17. मंगलेश डबराल, घर का रास्ता, पृ० 82
18. आधुनिक हिंदी-कविता, डॉ० सरस्वती भल्ला, पृ० 170
19. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, पृ० 45
20. मंगलेश डबराल, लेखक की रोटी, पृ० 143
21. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, पृ० 83
22. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिक विमर्श, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 188
23. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, पृ० 18
24. वही, पृ० 9-10
25. वही, पृ० 41
26. वही, पृ० 84
27. वही, पृ० 84
28. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिक विमर्श, पृ० 192
29. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, पृ० 40
30. राजेंद्र किशोर, चौथा सप्तक, पृ० 274
31. धूमिल, कवि 1970, पृ० 62
32. अवधेशकुमार, जिप्सी लड़की, पृ० 72
33. वही, पृ० 72
34. चंद्रकांत देवताले, लकड़बग्घा हँस रहा है, पृ० 30
35. नवान्न, जनवरी-मार्च 1988, संपादक, डॉ० रामदरश मिश्र, पेड़, नरेंद्र मोहन, पृ० 50-51
36. मदन सोनी, संपादक, अशोक वाजपेयी, चुनी हुई रचनाएँ, पृ० 73
37. वही, पृ० 110
38. वही, पृ० 95
39. वही, भूमिका

श्री सदन, अस्मिता पाठशाला के समीप
 अकोली रोड पार्वती नगर नं.-2
 अमरावती 444605
 09422916339

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध : प्रयोग और प्रयोजन

प्रो० आदित्य प्रचंडिया, डी० लिट्०

ललित निबंध गद्य में प्रस्तुत रम्य रचना है। निबंधकार के रागात्मक व्यक्तित्व की स्वच्छंद एवं कलानिष्ठ अभिव्यक्ति ही ललित निबंध है। आत्मतत्त्व की प्रधानता, कल्पना और भावना का सहज सन्निवेश, कलात्मक अभिव्यंजना, बोझिलता के स्थान पर उल्लास और मनोरंजन ललित निबंध की विशेषताएँ हैं। यद्यपि निबंधों के क्षेत्र में ललित निबंध का नाम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के आगमन से प्राप्त होता है तथापि व्यक्तिव्यंजक निबंधों के इस विकसित रूप के बीज हमें भारतेंदुयुग के निबंधों में ही मिल जाते हैं। बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, अध्यापक पूर्णसिंह, बाबू गुलाबराय, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय प्रतिष्ठित निबंधकार की श्रेणी में आते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का आगमन हिंदी ललित निबंधों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। ललित निबंधों को सुचारु और सुस्पष्ट रूप-विधान प्रदान करने तथा सम्मानीय स्थान का अधिकारी बनाने का श्रेय आचार्य द्विवेदी को जाता है। द्विवेदीजी ने इस विधा की एक अत्यंत उज्ज्वल और उन्नत परंपरा स्थापित की थी, जिसे विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय ने आगे बढ़ाया। द्विवेदीजी के ललित निबंधों में भारतीय संस्कृति अपनी मोहक भंगिमा के साथ मुखर है। हास्य-व्यंग्य, विनोद, गुरु-गांभीर्य कल्पना वैभव, कोमलकांत पदावली, इतिहास रस आदि से अनुप्राणित द्विवेदीजी के ललित निबंध हिंदी साहित्य में निरुपमेय हैं। अशोक के फूल, शिरीष के फूल, कुटज, गतिशील चिंतन, पंडितों की पंचायत, जबकि दिमाग खाली है, आपने मेरी रचनाएँ पढ़ीं, एक कुत्ता और एक मैना, हिमालय (एक), हिमालय (दो), बरसो भी, मेरी जन्मभूमि, भगवान महाकाल का कुंठ नृत्य, वैशाली, जीवेम् शरदः शतम्, दीपावली : सामाजिक मंगलेच्छा का प्रतिभाषक, केतु दर्शन, आत्मदान का संदेशवाहक बसंत, अंधकार से जूझना है, क्या निराश हुआ जाए, घर छोड़ने की माया, महात्मा के महाप्रयाण के बाद आदि द्विवेदीजी के ललित निबंध हैं।

सुचिंतित विचारधारा, उत्कृष्ट कल्पना, गहन अनुभूति, व्यापक जीवनदृष्टि, लालित्य संपन्नता, कलात्मक सौष्ठव आदि गुणों के कारण द्विवेदीजी के ललित निबंध अत्यंत सरस एवं हृदयस्पर्शी हैं। भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमा, ऋषितुल्य आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व अनेक महनीय गुणों का समवाय था। अगाध पांडित्य, ईश्वर में दृढ़ आस्था, लोकजीवन, इतिहास और सौंदर्य से प्रेम, विनोदप्रियता और रसग्राह्यता उनके व्यक्तित्व के विशेष गुण थे। द्विवेदीजी के इन्हीं गुणों से संपन्न रागात्मक व्यक्तित्व की निष्कपट अभिव्यक्ति ही उनके ललित निबंधों

में सर्वत्र हुई है। द्विवेदीजी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी के उद्भट विद्वान थे। बंगला और अंग्रेजी का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। धर्म, ज्योतिष, भाषा और दर्शन आदि विषयों में उनकी गहरी पैठ थी। ज्ञान, पुरातत्त्व और इतिहास आदि में द्विवेदीजी की जिज्ञासा उनके ज्ञान-पिपासु रूप की अभिव्यक्ति थी। वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, पुराण आदि संस्कृत साहित्य का उन्होंने सूक्ष्म और अनाविल चिंतनशक्ति से अध्ययन किया था। कालिदास और रवींद्र कवींद्र उनके प्रिय कवि थे। हिंदी में कबीर की अनासक्ति और फक्कड़पन पर द्विवेदीजी मुग्ध थे। अशोक की चर्चा चल रही हो अथवा कुटज की, देवदारू की बात हो अथवा शिरीष की, आम के बौराने का प्रसंग हो अथवा हिमालय का, कविकुल गुरु कालिदास का स्मरण द्विवेदीजी नहीं भूलते।¹ इसी प्रकार बात चल रही है अशोक के फूल की और बीच में याद आ जाते हैं कविवर रवींद्रनाथ टैगोर-रवींद्रनाथ ने इस भारतवर्ष को महामानव समुद्र कहा है।²

द्विवेदीजी के पांडित्य में सहजता है। वह जीवन का अंग बनकर द्विवेदी के ललित निबंधों में सहज और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। पंडिताई उन पर बोझस्वरूप नहीं है। यथा—‘पंडिताई भी एक बोझ है, जितनी भारी होती है उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है, तो सहज हो जाती है, तब वह बोझ नहीं रहती।³ द्विवेदीजी की विद्वत्ता कहीं उनके मौलिक चिंतन में और कहीं शास्त्रचर्चा के रूप में और कहीं विभिन्न कृतियों के उदाहरण के रूप में अभिव्यक्त हुई है। द्विवेदीजी के ललित निबंधों में सरस्वती कंठाभरण की, मालविकाग्निमित्रम् की, वृहत्संहिता की, वात्स्यायन के कामसूत्र की, भगवत्पुराण की, अभिज्ञानशाकुंतलम् की, औचित्य विचार की, विद्यापति और भारतीय पुरातत्त्व के महान प्रेमी अलेक्जेंडर कवि गहम की चर्चा सप्रसंग हो जाती है। रमेशचंद्र शाह कहते हैं—‘उनकी विद्वत्ता तटस्थ संकेतों में नहीं, बल्कि अतीत और वर्तमान के रागात्मक संबंधों को प्रकाशित करने में प्रकट होती है। विद्वत्ता संवेदना से स्निग्ध होती है और संवेदना विद्वत्ता से प्रखर। आचार्य द्विवेदी के निबंधों में विद्वत्ता ही नहीं, विद्वत्ता का रसावेश भी है।⁴ द्विवेदीजी के ललित निबंधों के विचार में, प्रवाह में, कल्पना में और शैली में सर्वत्र ही स्पष्टता का गुण विद्यमान है। द्विवेदीजी स्वयं स्वीकारते हैं—‘अस्पष्टता, उलझाव, बाह्याडंबर अंतर्विरोध अधपचे ज्ञान की खट्टी डकारे हैं।⁵ द्विवेदीजी की विचारधारा मानवतावादी पृष्ठभूमि पर अवस्थित है।

द्विवेदीजी सभी से आत्मीयता से मिलते थे। अपने शिष्यों पर तो उनका नेहामृत निरंतर बरसता रहता था। द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की महानता उनकी सादगी और सरलता के आवरण में टिक नहीं पाती थी। उनके ठहाकों, व्यंग्य चुटकियों, हास-परिहास और बातचीत में कोई जान नहीं पाता था कि वह भारतीय संस्कृति में आकंठ निमग्न इतिहास-साधक से, प्रकांड विद्वान से वार्ता कर रहे हैं। यह प्रवृत्ति उनके जीवन से प्रेम की प्रतीक थी, उल्लासप्रिय और मुक्तहृदय की साक्षी थी। द्विवेदीजी का लोकजीवन से प्रेम था। वह लोकदृष्टि से ही शास्त्रगत सत्य का मूल्यांकन करते थे। जैसे आम फिर बौरा गए में बसंतपंचमी से पहले आम्रमंजरी दिखाई देने पर उसे हथेली पर रगड़ने से हथेली वर्ष भर तक बिच्छू के डंक को आसानी से उतार सकती है। इस लोकोक्ति के सत्य का शास्त्रों, पुराणों और प्राचीन इतिहास से सामंजस्य स्थापित करते हैं। द्विवेदीजी का रागात्मक व्यक्तित्व उनके लोकजीवन-प्रेम, इतिहास-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-प्रेम आदि के रूप में अभिव्यंजित है।

द्विवेदीजी में तार्किकता है। बुद्धि की कसौटी पर परखने-निरखने पर ही उनके विचार पल्लवित होते हैं। इसीलिए उनके विचारों में एकरूपता और स्पष्टता के अभिदर्शन होते हैं। तीव्र मर्मभेदिनी दृष्टि से संपन्न द्विवेदीजी किसी तत्त्व की तह में पहुँच जाते हैं। 'कुटज' के फूल की चर्चा करते हुए द्विवेदी 'कुटज' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करने लगते हैं कि 'कुजट' अर्थात् जो कुट से पैदा हुआ हो। 'कुट' अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगत्य मुनि भी 'कुटज' कहे जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न हुए होंगे कोई और बात होगी। संस्कृत में 'कुटहारिका' और 'कुटकारिका' दासी को कहते हैं। क्यों कहते हैं? 'कुटिया' या कुटीर शब्द भी कदाचित इसी शब्द से संबद्ध है।⁶ इसी प्रकार आम्र शब्द की व्युत्पत्ति पर विचारते हुए द्विवेदीजी कहते हैं—'पंडित लोग कहते हैं कि आम्र शब्द अम्र या अम्ल शब्द का रूपांतर है। अम्र अर्थात् खट्टा। आम शुरू-शुरू में अपनी खटाई के लिए प्रसिद्ध था।⁷ निर्मलबुद्धि वाला व्यक्ति ही निष्पक्ष होता है। द्विवेदीजी जी में यह निष्पक्षता विद्यमान है। वह भारतीय संस्कृति के सच्चे और अच्छे उपासक हैं तथा उसके हर अच्छे-बुरे रूप की आँख मूँदकर प्रशंसा नहीं करते। द्विवेदीजी एक ओर मंगलकारी प्राचीन और दूसरी ओर मंगलमय अर्वाचीन को स्वीकारते हुए अपने ललित निबंधों में सुंदर सामंजस्य स्थापित करते हैं।

गांधीजी के जीवन और दर्शन ने द्विवेदीजी को बहुत प्रभावित किया है। 'शिरीष के फूल' में वह लिखते हैं—क्या यह बाह्य परिवर्तन—धूप, वर्षा, आँधी, लू अपने-आपमें सत्य नहीं हैं? हमारे देश के ऊपर से जो यह मारकाट, अग्निदाह, लूटपाट, खून-खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। यह बूढ़ा गांधीजी के लिए ही कहा गया है। गांधी के प्रति उनकी श्रद्धा 'महात्मा के महाप्रयाण के बाद' नामक ललित निबंध में भी दिखाई पड़ती है। द्विवेदीजी मानवतावाद के प्रबल पोषक हैं। मनुष्य उनके लिए चरम सत्य और मनुष्यता उनका चरम लक्ष्य है। द्विवेदीजी का इतिहास बोध जाग्रत था, जिसके कारण संपूर्ण मानव-जाति का आदिमकाल तक का इतिहास उनकी कल्पना के समक्ष साकार हो उठता था। द्विवेदीजी आज के समाज की विषमता, दरिद्रता, मारकाट को देखकर दुःखी होते थे। लेकिन 'सत्यमेवजयते' में उनकी आस्था कभी कम नहीं हुई। द्विवेदीजी घोर आशावादी थे। उनकी मान्यता थी कि यह जो ऊपरी मारकाट है, हत्या लूटपाट है, यह सच नहीं है। इन सबके बीच से होकर मनुष्य की जययात्रा चलती रहेगी और मनुष्य दिनोंदिन मनुष्यता के अपने लक्ष्य को पाता चला जाएगा। द्विवेदीजी कहते हैं—'मनुष्य थका है, पर रुका नहीं है। वह बढ़ता जा रहा है। इतिहास के अवशेष उसकी विजय-यात्रा के पदचिह्न हैं—इतिहास उन मोड़ों की कहानी सुनाता है, उन बाधाओं का रूप दिखाता है, मनुष्य की दुर्दम जययात्रा की कथा कह जाता है।⁸ द्विवेदीजी मानते हैं कि मनुष्य इस जययात्रा में प्रकृति को अनुकूल बना देने वाला अद्भुत प्राणी है।⁹

आचार्यजी की धर्म में गहन आस्था है। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' में वह कहते हैं—'आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं जैसे अन्य प्राणियों के, लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुःख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है।'¹⁰ नियति पर उन्हें विश्वास है। कर्म में द्विवेदीजी की आस्था है। तभी तो पाताल भेदकर, पहाड़ की छाती को फोड़कर, आकाश चूमकर, वायुमंडल से रस खींच मस्त

और प्रफुल्लित रहने वाला कुटज उन्हें आकृष्ट करता है। समझौता न करने वाले दृढ़ पहाड़ों के सच्चे साथी देवदारु के प्रति वह श्रद्धा से अभिभूत हो जाते हैं और आग की लपटों-सी झुलसाती ग्रीष्म की भयंकर गर्मी में भी हँसने-खिलने वाले शिरीष पर वह मुग्ध हो जाते हैं। द्विवेदीजी मानते हैं कि मनुष्य तो मात्र निमित्त है। सब-कुछ इतिहास विधाता की योजनानुसार चलता रहता है। 'कुटज' में वे कहते हैं—'जो समझता है कि वह दूसरों का उपकार कर रहा है, वह अबोध है; जो समझता है कि दूसरे उसका अपकार कर रहे हैं, वह भी बुद्धिहीन है। कौन किसका अपकार करता है, कौन किसका अपकार कर रहा है? मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा है, अपनी इच्छा से नहीं, इतिहास-विधाता की योजना के अनुसार।'¹¹ संभवतया अपने इसी विश्वास के कारण द्विवेदीजी कठिन संघर्षों के समय में भी अविचलित रह सके थे, अपने व्यक्तित्व की गरिमा को अक्षुण्ण रखने में समर्थ हो सके थे और अपने स्वाभिमान की रक्षा कर सके थे।

द्विवेदीजी विनोदप्रिय थे। खूब हँसने-हँसाने वाली प्रकृति के मनुष्य थे। उनका अट्टहास तो प्रसिद्ध था। गोष्ठी में द्विवेदीजी हों और वहाँ मुक्त अट्टहास न गूँज रहे हों, ऐसा असंभव था। विष्णुकांत शास्त्री कहते हैं—'पंडितजी की गोष्ठी जमी हो और लतीफ़े न हों, यह हो ही नहीं सकता था और लतीफ़े भी कैसे-कैसे सुनाते थे कि आदमी हँसते-हँसते लोटपोट हो जाए।'¹² द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की यह हास्यप्रियता उनके ललित निबंधों में सर्वत्र परिलक्षित है। उनका हास्य शिष्ट और परिष्कृत है। उनके व्यंग्य में कहीं द्वेष-विद्वेष नहीं मिलता। 'आपने मेरी रचना पढ़ी' शिष्ट हास्य और विशिष्ट व्यंग्य का उत्तम निदर्शन है—'रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हँसी-खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकम्पिता। 'बरसो भी' हास्य-व्यंग्य निबंध में द्विवेदीजी लिखते हैं—'सब दिल्ली की ओर भागे जा रहे हैं। बादल भी, आदमी भी। स्वराज के पच्चीस वर्ष बाद यही भाग्य में लिखा था, सोचता था, यहाँ न सही, दिल्ली में बरस जाएँ तो क्या बुरा है, पर सुना है वहाँ हालत और बुरी है। इतने कजरारे मेघ वहाँ गए, बिना बरसे ही सूख गए, अब क्या होगा? यहाँ भस्म लोट रहा है, वहाँ खेह उड़ रही है।'¹⁴ मेघों के ब्याज से सच ही द्विवेदीजी ने नेताओं पर हास्यमिश्रित तीक्ष्ण व्यंग्य किया है।

भावुक व्यक्ति ही सहृदय हो पाता है और सहृदय ही सच्चा साहित्यकार। द्विवेदीजी की सहृदयता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि वे वृक्षों, पुष्पों, जिन्हें जड़ प्रकृति कहा जाता है, तक की धड़कनों को सुन लेते थे और कुत्ते-मैना के भावों को पढ़ लेते थे। अपने धर्म के अतिरिक्त भी अन्य धर्माचारों और विश्वासों को अत्यंत सहृदय दृष्टिकोण से द्विवेदीजी ने देखा है, तभी तो उनकी मान्यता है कि सभी धर्मों में से जो कुछ भी ग़लत है, एक-दूसरे का विरोधी है, सब समाप्त हो जाएगा। हृदय की इसी सहृदयता के कारण द्विवेदीजी को कुटज गाढ़े का साथी प्रतीत होता है—'बड़भागी फूल है यह। धन्य हो कुटज, तुम गाढ़े के साथी हो।'¹⁵ इसी प्रकार देवदारु के विषय में द्विवेदीजी कहते हैं—'जमाना बदलता रहा है, अनेक वृक्षों और लताओं ने वातावरण से समझौता किया है, कितने ही मैदान में जा बसे हैं, लेकिन देवदारु है कि नीचे नहीं उतरा। समझौते के रास्ते नहीं गया और उसने अपनी ख़ानदानी चाल नहीं छोड़ी। झूमता है, तो ऐसा मुस्कुराता हुआ मानो कह रहा हो, मैं सब जानता हूँ, सब समझता हूँ, तुम्हारे

करिश्मे मुझे मालूम हैं, मुझसे तुम क्या छिपा सकते हो, मों ते दुरैहो का सजनी, निहुरै-निहुरै कहुँ ऊँट की चोरी।' हज़ारों वर्षों के उतार-चढ़ाव का ऐसा निर्मम साथी दुर्लभ है।¹⁶

सौंदर्य के प्रति आकर्षण मानव की सहज प्रवृत्ति है। द्विवेदीजी इसे जीवनमूल्य के रूप में स्वीकारते हैं। नैसर्गिक सौंदर्य के प्रति उनका रुझान सहज है। प्राकृतिक सौंदर्य का उदाहरण द्रष्टव्य है—'पता नहीं किसने इस पेड़ का नाम देवदारु रख दिया था। नाम निश्चय ही पुराना है, कालिदास से भी पुराना, महाभारत से भी पुराना। सीधे ऊपर की ओर उठता है, इतना ऊपर कि पास वाली चोटी के भी ऊपर उठ जाता है, एकदम भूलोक को भेदने की लालसा से।'¹⁷ 'आम फिर बौरा गए' में वे आम्रमंजरी के सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो जाते हैं—'आह! कैसा मनोहर कारक है। बलिहारी है इस आताम्रहरित पांडुर शोभा की। अभी सुगंध नहीं फैली, किंतु देर भी नहीं है। गृहदेवियाँ इस लाल, हरे, पीले आम्रकोरक को देखकर आनंदविह्वल हो जाती थीं। वे इस 'ऋतुमंगल' पुष्प को श्रद्धा और प्रीति की दृष्टि से देखती थीं। आज हमारा संवेदन भोथरा हो गया है।'¹⁸ निश्चल हृदय प्राणी ही किसी पर मुग्ध हो सकता है। द्विवेदीजी वृक्षों, पुष्पों तक को भी मुग्ध दृष्टि से देखते थे। बालकों का सा पर्युत्सुक भाव हमें उनमें देखने को मिलता है। उनका यही जिज्ञासा-भाव 'कभी नाखून क्यों बढ़ते हैं' का कारण ढूँढ़ने को उन्हें प्रेरित करता है, कभी दीपावली पर दीप जलाने में मनुष्य की सामान्य सामाजिक मंगलेच्छा की अभिव्यक्ति देखता है। कभी 'बसंत आ गया है' सुनकर वे भी बालकों की सी उमंग लेकर अपने चारों ओर प्रकृति में बसंत को तलाशते हैं, पर पेड़-पौधों में तो उन्हें बसंत के दर्शन होते ही नहीं। साथ ही उनके अपने पास भी ऐसे मौसम में आता है तो बुखार। द्विवेदीजी की यही पर्युत्सुक प्रवृत्ति कभी उन्हें शब्दों की व्युत्पत्ति तक जाने की प्रेरणा देती है, कभी ठाकुरजी की बटोर में बैठकर महान भारतीय संस्कृति के निष्प्रभावी होने का कारण ढूँढ़ने के लिए प्रयत्नशील बनाती है और कभी आम्रमंजरी के और भिक्षु के संबंध की खोज कराती है। आम्र फिर बौरा गए थे। वे मानते हैं कि आम प्रारंभ में खट्टा होता था और गंगा की सुवर्ण प्रसूमृत्तिका ने इसका कायाकल्प कर दिया है। मैं आश्चर्य से मनुष्य की अद्भुत शक्ति की बात सोचता हूँ। आलू क्या से क्या हो गया। बैंगन कंठकारी से वार्ताकु बन गया। आम भी उसी प्रकार बदला है।¹⁹ द्विवेदीजी का सौम्य और विनयी व्यक्तित्व ही उनके ललित निबंधों में झँकता है। कालिदास, रवींद्र, गांधी आदि के प्रति श्रद्धा उनके विनयी व्यक्तित्व की ही परिचायक है। विनम्रता के इस गुण के कारण द्विवेदीजी का वाह्याडंबरों से परे सत्य को खोजने का प्रयास प्रशंस्य है।

साहित्यकार अपनी इंद्रधनुषी कल्पना से अभिनव संसार का निर्माण करने में समर्थ होता है। द्विवेदीजी मध्यकालीन धर्म, साहित्य और साधना से प्रभावित थे। उनकी कल्पना जब उस लोक में विचरण करती है, तो ऐसे मोहक वातावरण की सृष्टि करती है कि पाठक को भी तन्मय कर देती है। द्विवेदीजी के अंतस को कोई चीज़ स्पर्श भर कर दे, फिर तो वे उसका संबंध प्राचीन शास्त्रों से जोड़कर उसे व्यापक आयाम प्रदान करते हैं और पाठक के मानस के कपाट खुल जाते हैं, वह मंत्रमुग्ध हो जाता है, अपूर्व आनंद से भर जाता है। उनकी कल्पना द्रष्टव्य है—'पेड़ क्या है, किसी सुलझे हुए कवि के चित्त का मूर्त्तमान छंद है—धरती के आकर्षण से अभिभूत करके लहरदार वितानों की शृंखला को सावधानी से सँभालता हुआ विपुल व्योम की ओर एकाग्रिभूत मनोहर छंद।'²⁰ 'देवदारु' नाम के अर्थ के विषय में जो कल्पना

आचार्यजी ने की, वह उनकी काव्यात्मकता की परिचायक है।

द्विवेदीजी की वैयक्तिकता मात्र उन तक सीमित नहीं है, अपितु समष्टि का माध्यम बनकर ललित निबंध में अवतरित हुई है। द्विवेदीजी के ललित निबंध किसी एक विशिष्ट 'व्यक्तिचेतना' के वाहक नहीं हैं। वे एक ऐसी समृद्ध और सूक्ष्म अंतर्दृष्टि के माध्यम बनकर आए हैं, जो समग्रता के साथ चिरंतन मानव को उद्घाटित करना चाहते हैं। उनका सत्य व्यक्ति का निजी सत्य नहीं, अपितु मानुष-सत्य है। द्विवेदीजी के सभी ललित निबंध मुक्त आसंग की पद्धति पर लिखे गए हैं। हिंदी-निबंधकारों में मुक्त आसंग का कलात्मक निर्वाह द्विवेदीजी ही कर सके हैं। जिस खूबी के साथ द्विवेदीजी विषय से विषयांतर करके नाना आयामों में कल्पना का लीला-विलास दिखाकर अंत में पुनः सारे सूत्रों को एकत्र करके इनका तारतम्य बिठा देते हैं, इस दृष्टि से द्विवेदीजी अनन्य हैं। द्विवेदीजी के ललित निबंधों में स्वच्छंद कल्पना के अभिदर्शन होते हैं। एक हद तक लिरिकल और रोमांटिक हैं, जो रवींद्र कवींद्र के प्रभाव का परिणाम है। वीणा का एक तार छूने पर जैसे पूरे तार झंकृत हो उठते हैं, वैसे कोई बात द्विवेदीजी को छू देती है तो उनकी प्रतिभा को उकसा देती है और तब जब वे क्रलम उठाते हैं, बहुत सी बातें सहज ही उद्भूत होती चली जाती हैं, द्विवेदीजी उसे सजाते जाते हैं और इसीप्रकार उनकी रचना एक रूप ले लेती है। उनके ललित निबंधों में स्वच्छंदता उनके व्यक्तित्व के फक्कड़पन और उनकी निराली मस्ती के कारण आई है। प्रभाकर माचवे लिखते हैं कि द्विवेदीजी के-निबंधों की शैली में वही सहजता है, जैसे गपशप कर रहे हैं, बात-बात में बात निकलती जा रही है। कभी कोई पुरानी स्मृति का टुकड़ा उज्वल हो रहा है। कोई एकदम अनूठी, एक नयी उद्भावना सामने आ रही है... उनके निबंध अनेक बार पढ़े जाने पर भी कभी बासी नहीं होंगे।²¹ द्विवेदीजी के ललित निबंधों में इतिहास, दर्शन, व्याकरण, साहित्य, लोकजीवन आदि क्षेत्रों में स्वच्छंदता का गुण विद्यमान होने के साथ-साथ एकसूत्रता का गुण भी विद्यमान है।

कृष्णबिहारी मिश्र का कथन है कि 'उनके निबंधों के बीच में भारतीय मनीषा अपने मुखश्री से घूँघट हटाकर मनुष्य को एक कारुणिक दृष्टि से निहारने लगती है। उसे देखकर सामान्य पाठक की आँखें चौंधियाने लगती हैं और एक ही छवि को विविध रूपों में देखकर वह आश्चर्य में पड़ जाता है, लेकिन चतुर पाठक की आँखें उस छवि को पहचानती हैं। तथापि एक ही दृश्य को उनके निबंधों में बार-बार देखकर भी उसकी आँखें थकती नहीं। अतृप्त मानसिक भूख उनके निबंध की ओर बड़ी त्वरा के साथ दौड़ती है, एक विशेष प्रकार की तृप्ति का अनुभव होता है, उन्हें बार-बार पढ़ने की इच्छा रहती है और यह द्विवेदीजी के शिल्प की बहुत बड़ी उपलब्धि है कि एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न संदर्भों में उपस्थित कर उसमें एक विशिष्ट अर्थवत्ता भर देते हैं, नया आकर्षण उत्पन्न कर देते हैं।²² द्विवेदीजी के ललित निबंधों में सरसता, रोचकता आदि के कारण संक्षिप्तता का गुण आ गया है। डॉ० कामेश्वर शर्मा का कहना है कि 'द्विवेदीजी में एक ठुमक है, जो समाँ में बँधी हुई चलती है। ...द्विवेदीजी का गायन कंठ से निकलकर रंगना शुरू कर देता है। इस तरह कि हम गद्गद, उत्फुल्ल और विमुग्ध रह जाते हैं... द्विवेदीजी की टेक होती है... आम फिर बौरा गया, नाखून क्यों बढ़ते हैं, जबकि दिमाग़ ख़ाली है आदि (यह उनके निबंधों के विषय हैं) जो एक हल्के आश्रय का काम करती है और जिनके आधार पर उनकी भाव-मूर्च्छना कंपनयुक्त थिरकन के साथ इधर-उधर इतराती

रहती है।²³ अपनी निबंधकला के माध्यम से द्विवेदीजी ने ललित निबंधों के विकास का जो मार्ग प्रशस्त किया है, वह निरुपमेय है। द्विवेदीजी के पूर्ववर्ती निबंधकारों के पास भाषा थी, विचार थे, विचारों को प्रकट करने की शैली भी थी, लेकिन द्विवेदीजी ने उस भाषा को काँट-छाँटकर इतनी सुसंस्कृत एवं परिमार्जित बना दिया है कि उसकी प्रभावोत्पादकता अत्यंत वर्द्धित हो गई है। विचारों में मौलिक चिंतन को जोड़कर उनका परिसर बढ़ाया है और शैली को तो अपने व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं को समन्वित करके उसे एक नया जामा पहनाया है। द्विवेदीजी अध्यापक थे, ज्योतिषी थे, संस्कृत के प्रकांड पंडित थे और साथ ही विविधमुखी साहित्यकार थे। इतिहासवेत्ता द्विवेदीजी की भारतीय संस्कृति के प्रति अप्रतिम निष्ठा उनके निबंधों में सर्वत्र परिलक्षित है। द्विवेदीजी में आदिकाल की ओजस्विता, भक्तिकाल की विनयसंपन्नता एवं रीतिकाल की कलात्मकता विद्यमान है।²⁴ द्विवेदीजी के ललित निबंधों में औदात्य, सौंदर्य, गरिमा और ओज समाविष्ट हैं।

इस प्रकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की शैली अत्यंत लालित्यमयी एवं विलक्षण है। प्रभाकर माचवे कहते हैं—‘हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की शैली की अनुकृति हिंदी में हुई, पर उनकी बात हमें औरों में नहीं मिली। न विद्यानिवास मिश्र में, न भगवतशरण उपाध्याय, न बकलम खुद के नामवर लेखक में।²⁵ वस्तुतः हजारीप्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध मंदाकिनी की पावन धारा सदृश हैं और द्विवेदीजी इस मंदाकिनी के भागीरथ के रूप में समादृत हैं।

संदर्भ

1. संपादक डॉ. मुकुंद द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1981, भाग 9, पृ० 28
2. हजारीप्रसाद द्विवेदी, ग्रंथावली, भाग 9, पृ० 20
3. वही, पृ० 22
4. संपादक शिवप्रसाद सिंह, शांति निकेतन से शिवालिक, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967, पृ० 369-370
5. संपादक शंकरदयाल सिंह, स्मृति धरोहर, मुक्तकंठ प्रकाशन, पटना, 1981, पृ० 13
6. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 9, पृ० 31
7. वही, पृ० 43
8. वही, पृ० 187
9. वही, पृ० 49
10. वही, पृ० 109
11. वही, पृ० 34
12. स्मृति धरोहर, पृ० 14
13. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-10, पृ० 127
14. वही, भाग 9, पृ० 77
15. वही, पृ० 30
16. वही, पृ० 42
17. वही, पृ० 35
18. वही, पृ० 44

19. वही, पृ० 49
20. वही, पृ० 35
21. स्मृति धरोहर, पृ० 25-26
22. शांतिनिकेतन से शिवालिक, पृ० 351
23. स्मृति धरोहर, पृ० 64
24. डॉ० विदुषी भारद्वाज, हिंदी का ललित निबंध साहित्य और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1992, पृ० 166
25. शांतिनिकेतन से शिवालिक, पृ० 351

मंगलकलश
394, सर्वोदय नगर, आगरा रोड,
अलीगढ़ 202001 (उ०प्र०)
दूरभाष (0571) 2410486
मो० 09897144022

खंड-खंड चाँदनी आत्मानुभूत क्षणों की यथार्थ अभिव्यक्ति

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

हिंदी-काव्य में निरंतर विकासशील परंपरा की कड़ी के रूप में नव्यतर हिंदी-कविता अनेक प्रकार के साहित्यिक वादों से बहुत-कुछ तटस्थ रहकर गतिशील हुई है। नए युग के गीतकारों ने गीतों को अपने व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःखों, हर्ष-विषादों के अतिरिक्त जीवन के उल्लास और आशा-निराशा को व्यक्त करने का माध्यम बनाया। इसके साथ ही गीतिकाव्य को युग के अनुरूप जागरूकता से समन्वित भी किया। ये गीतकार साहित्यांदोलन के किसी वाद-विशेष के साथ प्रतिबद्ध होकर गीत-सृजन में प्रवृत्त नहीं हुए वरन् सभी ने स्वाभाविक भाव-भूमि पर काव्य की संरचना की।

नवीन गीत-सृजन की एक महत्वपूर्ण विशेषता सामाजिक चेतना की अनुभूति और अभिव्यक्ति है। यह युग का ही प्रभाव है, जिसके कारण ये गीतकार अपने वैयक्तिक प्रणय या जीवन के अतिरिक्त समय और समाज के प्रति भी आकर्षित हुए। सामाजिक अनुभूति और गीत की भाव-प्रवणता ने इन गीतकारों की रचनाओं को विशेष मार्मिकता और सजीवता प्रदान की। सामाजिकता की अभिव्यक्ति इन गीतकारों के काव्य में अनेक प्रकार से हुई है, जिनका आकर्षक पक्ष है जीवन के प्रति उनकी गहन आस्था। जीवन के प्रति आस्थावान ये कवि समाज के निर्बाध विकास के लिए हर प्रकार की स्वीकृतियाँ प्रदान करते हैं।

इन नव्यतर हिंदी-गीतकारों में शचींद्र भटनागर एक ऐसे सशक्त हस्तक्षर हैं, जिनकी गीत-सृष्टि में प्रकृति और प्रणय, व्यष्टि और समष्टि या व्यक्ति और समाज को पूर्ण संतुलन के साथ अभिव्यक्ति मिली है। इनके गीतों में जहाँ स्वस्थ और ताजा शृंगारिक अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं, वहीं प्रकृति के अनेक रंगबिरंगे चित्र भी उभरे हैं। जहाँ उनके गीतों ने देश के स्वर के साथ स्वर मिलाया है, वहीं सामाजिक संत्रास और छटपटाहट भी उनमें मुखरित हुई है।

‘खंड-खंड चाँदनी’ के गीत चार खंडों में विभाजित किए गए हैं—स्वर देश के साथ, सामाजिक संत्रास और छटपटाहट, शृंगारिक अनुभूतियाँ, बदलते प्रहर-बदलते मौसम : कुछ बिंब।

स्वर : देश के साथ

इन रचनाओं में कवि कहीं स्वदेश की सांस्कृतिक महानता, विशाल धार्मिक सहिष्णुता एवं सामाजिक औदार्य की वंदना करता है तो कहीं परिवार-नियोजन की अनिवार्यता स्वीकारते हुए कहता है :

सही-सही अंतर पर
बस गेंदा और जुही काफ़ी है
सारा घर-आँगन महकाने को
ज्यादा पौधों की तो हर मुरझी कॉपल
अश्रु झरेगी
अपने माली की भूल पर!¹

कवि की विकासशील स्वदेश में दृढ़ आस्था है। उसका देश कभी अगति को प्राप्त नहीं होगा। वह सदैव विकासशील रहेगा—

देश का विकास-काल कभी नहीं बीतेगा

स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू के निधन के कुछ समय उपरांत कवि को यह विश्वास होने लगा कि उस सूर्य की एक किरण सशक्त आलोक पुंज बनकर निकट भविष्य में देश का सफल नेतृत्व करेगी। इसी विश्वास के वशीभूत कवि भविष्यवाणी करता-सा प्रतीत होता है—

हो रहा सतेज
वह प्रकाश-पुंज
प्रथम किरण जिसे मिली थी तुमसे
मेघों की ओट में लगता जो हल्का था

कुंदन-सी निखर रही
कल तक जो संध्या की धूल थी!²

सामाजिक संत्रास और छटपटाहट

कवि ऐसे किसी भी अनुबंध को स्वीकारने की तैयार नहीं हैं जिसमें 'प्रगति का व्यतिक्रम' हो। वह अतीत के उस विशाल भवन के उस अंश से असंबद्ध और असंपृक्त रहने की इच्छा करता है, जिसकी चौखट घुन चुकी है, जिसकी दीवारें खोखली हो चुकी हैं, जिसके लौह-द्वार जंग के कारण व्यर्थ हो चुके हैं। यथा—

घुनी हुई चौखट के बाहर जाकर
मैं
फिर खुद को दुहराऊँगा

यहाँ कितने दिन और मैं सुरक्षित रह पाऊँगा
भीतर से खाली दीवारों में
जंग लगे द्वारों में!³

समाज में व्याप्त विषमता आज उसको खोखला करने में प्रयत्नशील है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वैषम्य का कटीला वृक्ष निरंतर फल-फूल रहा है। कवि इस वैषम्य से पर्याप्त विक्षुब्ध है। अपनी बात को उसने कितनी प्रतीकात्मक पद्धति से प्रकट किया है—

स्वस्थ हो रहे शूल करीलों के
लजवंती सूखती

कैसी अनहोनी होती मधुमास में
अनगिन सूरजमुखी सिसकते यहाँ
भोर की गोद में
एक रश्मि छटपटा रही है।⁴

कैसा है समय
कि अब मरुथल के नाम लिखा
काम सजल बादल के मूल्यांकन करने का
जेठ की दुपहरी को श्रेय मिला
धरा की दरारें भरने का।⁵

सामाजिक कहलाने वाले व्यक्तियों के व्यवहारों में जब कवि को कृत्रिमता दिखाई देती है तो वह तड़प-तड़प उठता है—

एक भी निःश्वास स्वाभाविक नहीं वातावरण में
इस कदर वातावरण बदला हुआ है।⁶

‘दिशाहीन गतियों के नाम’ में अपने इन्हीं भावों को अभिव्यक्त करता हुआ कवि इस प्रकार कहता है—

सारा माहौल यहाँ घिरा हुआ मकड़ी के जालों से
कहीं-कहीं पीली आवाजें मिल जाती हैं
सबकी सब लगती है
आर्शकित
डरी-डरी
फिर भी शिष्टता लिए होठों पर हरी-हरी
जैसे कुछ कहने का अभिनय-सा करती है।⁷

‘और कहीं’ में कवि अपने चंदनमन को संबोधित करता हुआ कहता है—

यहाँ स्वार्थ केवल
संबंधों की सीमा
एक वृत्त केवल
स्वच्छंदों की सीमा
हृदयों की नहीं
अधर तक सीमित शिष्टता
सारे-के-सारे अनुबंधों की सीमा।⁸

आज जिए जाने वाले जीवन की अतिव्यस्तता से कवि कभी-कभी ऊबता-सा प्रतीत होता है—

भाग रहे हैं
अनगिन व्यस्त गली-कूचों में

चौराहों-मोड़ों पर
भीड़ों के बीच कई एकाकीपन
मन से अनजुड़े हुए तन⁹

इन सबके कारण कवि को तीव्र आक्रोश हो उठता है, जिसके आवेश में वह ऐसा बाना उतारकर फेंक देना चाहता है, जो उसे क्षण-भर भी सहजता से जीने का अवकाश नहीं देना चाहता है—

कभी-कभी मन होता
फेंक दूँ उतारकर
विवशता में पहना
यह कंठहार गंधहीन कागज़ का।¹⁰

कवि का आक्रोश परिस्थितिजन्य है किंतु किसी भी समय कुंठा अथवा निराशा उसे ढक नहीं पाती है। किसी क्षण जब वह कह उठता है कि

झुलसाते अणुओं की गोद से
चलो चलें और कहीं चंदन मन मेरे!¹¹

तब ऐसा लगता है कि उसका स्वर पलायनमुखी हो रहा है किंतु तत्क्षण उसका स्वर बदल जाता है। उसका आत्मविश्वास संत्रस्त पीढ़ी को साथ लेकर क्रांति का आह्वान करने लगता है।

पहचानो अपनी क्षमताएँ
बिंघ जाएँगी निर्ममताएँ
बाधाओं के द्वार
टूट जाएँगे।¹²

जबरदस्त घुटन एवं संत्रास के क्षणों में कवि के हृदय में मुक्ति की अदम्य छटपटाहट द्रष्टव्य है—

एक सीमा
किंतु
अस्पर्शित अभी है इस अतल की
जागती जिसमें अदेखी छटपटाहट
जो न बंधक हो सकी है
जो न मोड़ी जा सकी है
किसी भी सामर्थ्य के द्वारा न तोड़ी जा सकी है
जो
पुलिन के पास की फेनिल सतह को
चीरकर
सायास
आना चाहती है
और हर बंधन

परायापन मिटाना चाहती है।¹³

कैसे भूल जाऊँ : शृंगारिक अनुभूतियाँ

समाजगत संत्रासों और वैषम्य से परिपूर्ण समाज के बिंबों को प्रकट करने के साथ ही शचींद्र जी ने वैयक्तिक प्रणय की संयोग और वियोगजन्य अनुभूतियों को भावुकता, कल्पनाशीलता और सहृदयता के साथ अभिव्यक्त किया है। संयोग-वियोगजन्य इन अनुभूतियों के बिंबीकरण में कहीं भी बासीपन नहीं है। घिसेपिटे उपमानों की भीड़ एवं लिजलिजी भावुकता की दलदल भी उसमें नहीं है। कवि ने सर्वत्र ताजा सौंदर्य-बिंबों को एकत्र किया है। संयोग के 'अनभिव्यक्त क्षण' में कवि को 'पहले आषाढी घन के झरने का सुख' प्राप्त होता है। 'आज तुम्हें पाकर' में वह कह उठता है—

ऐसी ज्योति खिली
नक्षत्रों की आँखें भी कौंध गईं
दिशा-दिशा आक्षितिज उजाला गहराया
मेघायित आकाश चाँदनी बनकर कुछ ऐसा बरसा
खिला मोरपंखी पल जिसने ठहराया
अंतर रह न गया कोई
दिनमान इंदु में।¹⁴

मिलन के यही क्षण जब अकेलेपन में बदलते हैं तो कवि के हृदय की स्वच्छ झील के 'नीर की हर बूँद दर्पण बन गई' प्रतीत होती है। देखिए—

यह अकेलापन
चरण में चुभ गई
कोई हटाकर आज कोई कील
तल में तैरती हर मीन तक
है स्वच्छ सारी झील
भूमितल तक
हर किरण है छन गई
नीर की हर बूँद
दर्पण बन गई
किंतु कोई मथ गया आकर सेवारी नीर।¹⁵

बदलते प्रहर, बदलते मौसम : कुछ बिंब

शचींद्र जी ने प्रणय के साथ और उसकी विभिन्न अनुभूतियों को साकार करते हुए जिस दूसरी वस्तु को आत्मीयता के साथ देखा है, वह प्रकृति है, जो कवि की मनःस्थितियों के अनुरूप ही विविध परिधानों में वेष्टित होकर उसके काव्य में उतरी है। कवि ने प्रकृति को उसके उद्दीपन रूप में ही अधिक प्रस्तुत किया है। वह संयोग और वियोग की अनुभूतियों को तीव्र करती है, उन्हें उभारकर हर्ष एवं विषाद की नई-नई आकृतियाँ प्रदान करती है। कवि के ये प्रकृति-चित्र अनेक प्रकार के हैं। कुछ विशुद्ध प्रकृति-चित्र हैं, जैसे अंधकार उतरा, संध्या और

क्षितिज, रंगों की सहचरी, चाँदनी और भीगी सड़क, खंड खंड चाँदनी इत्यादि। कुछ कवि की वियोगानुभूति को तीव्रतर कर रहे हैं। जैसे—दिन ठहर गया, शिथिल संस्पर्श, साँझ आ गई तथा कुछ को कवि ने आर्थिक-सामाजिक वैषम्य से उत्पन्न असंतोष, व्यस्तता, संत्रास आदि की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया है—

‘नारिकेल कुंज से’ गीत में कवि का मन पल-पल बीतते जा रहे समय के साथ कैसा बँधा हुआ-सा अनुभव करता है—

पल पल दिन बीतते चले जाते
 एक पल समर्पित है हठी अहम् के लिए
 शेष सभी बंधक हैं
 रेतीले द्वीपों में
 ऋण के चुक जाने तक
 एक भी निमिष न स्वयं के लिए
 बहुत जतन करता हूँ
 कैसे प्रिय नारिकेल-कुंज से पुकारूँ
 मैं कैसे इस आँगन में इंद्रधनु उतारूँ।¹⁶

‘ग्रीष्म की तपती हुई दोपहर’ के माध्यम से कवि ने एक भीगे हुए यथार्थ की वाणी दी है—

नतमस्तक हुए सभी
 सत्ता के आगे
 झुलस गए, जो भी कुछ जागे
 लेकिन जो मौन रहे
 कष्ट सहे
 फिर भी अवरोध रहे
 उन्हें
 समारोहों में दिया गया अतुलित सम्मान।¹⁷

पुरानी और नई पीढ़ी के वैचारिक अंतराल की और कवि जाड़े की एक शहरी भोर के माध्यम से संकेत करता है—

कमरे का हर कोना
 बिखरन से घिरा हुआ
 देखने लगा
 मुझको नूतन संदर्भ में।¹⁸

जर्जरित मान्यताओं के प्रति विद्रोह कवि के इन प्रकृति-चित्रों में दिखाई देता है—

बरफ़ीली राह बहुत भारी है
 बढ़ती लाचारी है
 किरणों की गोद
 बर्फ़ घुलने दो

घुलने दो
सख़ा बर्फ़ घुलने दो।¹⁹

अन्य नव्यतर गीतकारों की तरह ही 'खंड-खंड चाँदनी' के कवि की रुचि प्रकृति के मानवीकरण की ओर ही सर्वाधिक रही है और इस रूप में उनके गीतों में प्रकृति-चित्र भारी संख्या में देखे जा सकते हैं—

सरिता के कूल बैठ
अपने पग धो गया समीर
टूट गई
इस तट से उस तट को बाँधती
रुपहली जंजीर।²⁰

चाँदनी का रूप
केवल एक जीरो वाट वाले बल्ब के धूमिल उजाले में
यहाँ पर सो रहा है
कंठ तक ओढ़े हुए
झिरझिरी चादर
जरी सलमे सितारे की।²¹

शाम के लुहार ने
तपा हुआ लौह
अभी अग्नि से निकाला
पलभर में
बुझा हुआ दिवस पड़ा काला।²²

इस प्रकार कवि ने प्रकृति को एक नए और ताजे रूप में प्रस्तुत किया है। उसकी संपन्न कल्पना ने उसे प्रकृति के सौंदर्य-चित्रों के प्रणयन में पर्याप्त सहायता दी है।

इन गीतों में कुछ विशेषताएँ इतने सहज और आकर्षक रूप में प्राप्त हैं कि उनके कारण पाठकों का हृदय चमकृत हो उठता है।

नव्यतर हिंदी-गीतिकाव्यों में बिंब-विधान ने गीतों को एक नई भाव-व्यंजनाशक्ति प्रदान की है। इन बिंबों में चमत्कार नहीं, भावनाओं का सहज कल्पनात्मक उच्छलन है। शचींद्र जी की बिंब-विधायिनी कल्पना ने मुख्य रूप से प्रकृति की परिक्रमा की है और उससे संबंधित अनेक सुंदर बिंबों की सत्ता उनके गीतों में दिखाई देती है। इन बिंबों के लिए उन्होंने रूपक का आश्रय ग्रहण किया है या फिर मानवीकरण का और इसमें उन्हें सहज सफलता प्राप्त हुई है। ये पंक्तियाँ इस कथन की सबसे जानदार गवाह हैं—

ऐसी ज्योति खिली
नक्षत्रों की आँखें भी कौंध गईं
दिशा-दिशा आक्षितिज उजाला गहराया
मेघायित आकाश चाँदनी बनकर कुछ ऐसा बरसा

खिला मोरपंखी पल जिसने ठहराया
अंतर रह न गया कोई
दिनमान-इंदु में²³

पर्वत के श्रृंगों पर गूँज-गूँज गई अभी
अनचीन्हीं चाहें
धुँधलाई घाटी में
मैदानी घाटी में
फैल गई
किरण-किरण की अननिग बाहें
भाव-भरा मन डूबा पाकरिया छाँव में
सोनरा सपन डूबा महके फैलाव में
एक किरण मुस्काई
और पारदर्शी हुई, वह नीली रातें²⁴

शचींद्र जी के गीतों के ये बिंब मात्र 'फ़ोटोग्राफ़िक' चित्र ही बनकर नहीं रह गए हैं। उनमें कल्पना का पूर्ण औदात्य है, जोकि बिंब-विधान के लिए अपेक्षित है। उनके काव्य में न केवल दृश्य-बिंबों की ही सत्ता है, वरन् कृत्रिम प्रगति (एक भी निःश्वास स्वाभाविक नहीं), बिडंबना और विरोधाभास (कितने दिन और), गंध (एक मौन कोलाहल, वयः संधि), ध्वनि (मेघवर्ती बाँसुरी) आदि को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने वाले अनेक चित्रों का सौंदर्य दर्शनीय है। इसके साथ ही विभिन्न प्रहरों और समयों जैसे दुपहर (दुपहर और सम्मान), गोधूली (दिन ठहर गया), संध्या (अंधकार उतरा), रात्रि (शिथिल संस्पर्श), चाँदनी रात (बिखरी चाँदनियाँ) के बिंबिकरण में भी कवि को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

शचींद्र जी के गीतों में प्रयुक्त प्रतीकों की चर्चा करना भी उपयुक्त होगा। विशेष रूप से गीतिकाव्य के ऐसे वातावरण में जिसमें प्रतीक कई बार काव्य को बोझिल बनाने में सहायक हुए हैं अथवा व्यक्तिगत प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत भाव-सृष्टि कठिन से कठिनतर होती गई है। उनकी गीत-सृष्टि में प्रस्तुत अधिकांश प्रतीक जैसे जुही, गेंदा, सूर्यमुखी, कनेर, कमल, लजवंती, शूल, चंदन, मोर, पपीहा, झील, अंधकार, भँवर, वर्षा, छाँह, धूप, क्षितिज, रश्मि, संध्या, भोर इत्यादि भी प्राकृतिक वातावरण से उभरकर आए हैं। इनमें से कई प्रतीक यद्यपि परंपरागत प्राकृतिक प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं, उनके प्रयोग में एक नयापन है, विशेष रूप से सामाजिक परिवेश को मुखर बनाने में और सामाजिक बिडंबनाओं के अभिव्यक्तिकरण में इनका सौंदर्य और भी निखर आया है—

अनगिन सूरजमुखी सिसकते यहाँ
भोर की गोद में
आँखें पथरा रहीं तिमिर के द्वार में
एक रश्मि छटपटा रही है
कंपन-सा होता काली दीवार में²⁵

यहाँ पर 'सूरजमुखी' विकास के लिए छटपटाते प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति के प्रतीक के रूप में उभरा है, जो प्रतिकूल परिस्थितियों (तिमिर के द्वार) में कुछ देर तक बँधा रहता है, परंतु तभी 'रश्मि' (ऊर्जा) 'तिमिर के द्वार' (प्रतिकूल परिस्थितियाँ) पर उदित होती है और बाधाओं की काली दीवार कंपित हो उठती है।

एक दूसरे गीत (एक गेंदा एक जुही) में एक पूरे रूपक के माध्यम से कवि ने जनसंख्या-वृद्धि के कारण बढ़ती हुई सामाजिक विषमताओं की ओर इंगित करते हुए कहा है कि ऐसा उद्यान बिलकुल व्यर्थ है, जिसकी क्यारियों में उगने वाले पौधे मुरझा जाएँ। ऐसे उद्यान के स्थान पर वह क्यारी (घर) श्रेष्ठ है, जहाँ सही-सही अंतर (उचित समय) पर एक गेंदा (पुत्र) और जुही (कन्या) क्यारी महकाने के लिए उत्पन्न किए जाएँ—

आओ हम रोपें दो पौधे फुलवारी में
इतने ही काफ़ी हैं
नन्ही सी क्यारी में

सही-सही अंतर पर
बस गेंदा और जुही काफ़ी हैं
सारा घर-आँगन महकाने को
तन मन या जीवन महकाने को
ज़्यादा पौधों की तो हर मुरझी कोपलें
अश्रु झरेगी
अपने माली की भूल पर।²⁶

भाषा के संबंध में शचींद्र जी किसी पूर्वाग्रह में बँधे दिखाई नहीं देते हैं। सरल-सुबोध भाषा में अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदारी बरतते हुए गीत-रचना इनकी ऐसी विशेषता है, जिसके कारण एक ओर अँकोरना, बतियाती, पनीले, जतन, सँवलाई, सौनाली, साँनरा, पाकरिया आदि शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है तो दूसरी ओर संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी वातावरण की सृष्टि में सहायक है—

मत बाँधो सुरधनुषी सरिता की लहरों में
डूब-डूब उतराते किसी गंध-विभ्रम को
प्रगति के व्यतिक्रम को।²⁷

बाहर की
पारदर्श किरणरँगी हरियाली का प्रवेश
हर समय निषिद्ध है
आओ इस नीले व्यवधान को हटाकर
हम
झाँकें इस खिड़की के पार।²⁸

भाषा के संबंध में कवि की यह धारणा भी प्रतीत होती है कि कोई शब्द चाहे वह किसी भी भाषा का क्यों न हो, यदि भाव-प्रेषणीयता की दृष्टि से सहायक हो तो उसका

निःसंकोच प्रयोग किया जाना चाहिए। संभवतः इसी कारण कवि को अपने गीतों में उर्दू भाषा के शब्दों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी के ज़ीरो, वैक्युम, लैटर, रैक, आर्ट गैलरी आदि शब्दों के प्रयोग में कोई हिचक नहीं हुई है।

भाषा का सौंदर्य कहीं लौकिक शब्दों के प्रयोग से उत्पन्न हुआ है तो कहीं शुद्ध साहित्यिक शब्दों के प्रयोग से। कहीं-कहीं शब्द की पुनरावृत्ति मात्र से कवि ने एक असाधारण भावगम्यता उत्पन्न कर दी है—

अभी न जाओ

रोई-रोई रात रूठ जाएगी।²⁹

रोई-रोई शब्द में जो व्यंजना है, 'रोती हुई' अथवा 'रोती-रोती' कहने से उत्पन्न नहीं हो सकती थी। एक उदाहरण और—

कूलों से नाव बँधी

और थमी डाँडों की छपक-छपक छड़िया।³⁰

छंद की दृष्टि से शचींद्र जी ने अभिनव प्रयोग किए हैं। छंद के संबंध में उनका मत है कि 'गीत में छंद दासत्व नहीं होता।'³¹ इससे उनका तात्पर्य यह है कि छंद छंद के लिए न लिखकर यदि कवि की भावनाओं के अनुकूल गेयत्व का उचित महत्त्व स्वीकारते हुए लिखे जाएँ तो अधिक श्रेयस्कर होंगे। छंद तभी अधिक सहज होंगे, जबकि छंद छंद-बंधन मुक्त होकर लिखे जाएँ। इसी कारण उन्होंने अपने गीतों को पारंपरीय परिपाटी में लिखने की अपेक्षा भावानुकूल तोड़कर लिखना ही अधिक उपयुक्त समझा है। भावात्मक उत्तेजना में वृद्धि अथवा कमी होने के साथ-साथ उन गीतों की पंक्तियाँ छोटी-बड़ी होती रही हैं, किंतु कहीं पर भी लयात्मकता नहीं टूटने पाई है। शचींद्र जी के ये सभी गीत लय-प्रधान हैं, क्योंकि वास्तव में लय ही गीत की आत्मा है।

गीत की लंबाई कितनी हो, इस संबंध में भी शचींद्र जी की अपनी निश्चित धारणा है। उनके विचार से, 'कवि जहाँ पर भी यह महसूस करे कि उसकी अनुभूति गीत लिखने के लिए विवश करती-सी प्रतीत नहीं होती है, वहीं पर उसे गीत समाप्त कर देना चाहिए चाहे वह एक छंद का गीत ही क्यों न रह जाए।'³² उदाहरण के लिए उनके 'आकर्षण', 'आज तुम्हें पाकर' आदि गीतों को लिया जा सकता है।

इस प्रकार 'खंड-खंड चाँदनी' आकुलता और विवशता, भावोत्तेजना और अनिवार्यता के क्षणों में अभिव्यक्त ऐसे भाव-समूह का नवीनतम आंदोलन है, जो काव्य-समाज में जीते हर श्वास की गति बनने में समर्थ है।

जहाँ तक मैं उनके गीतों में पैठ पाया हूँ, मैंने इतना अवश्य समझा है कि गीत लिखना उनके जीवन की अनिवार्य विवशता है, परंतु इस विवशता में विषयों का अनुक्रम एकदम नवीन है, परंपरित छंदों की अपेक्षा उसमें नए प्रयोगों का सफल प्रयत्न हुआ है, साथ ही बासी शब्दावली और रूप-विधान से उनको कोई लगाव नहीं है। उनके गीत जीवन से पूर्णरूपेण संपृक्त हैं। सामाजिक वैषम्य के प्रति जहाँ इन गीतों में आक्रोश का महत्त्वपूर्ण स्वर उभरा है, वहाँ पर वे इस जीवन को ही जीने की सलाह देते हैं, पलायन से सर्वथा विमुख होकर।

वास्तव में आत्मानुभूत क्षणों की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इन गीतों की जीवनी शक्ति

है—कवि का अभिप्रेत भी यही है।

संदर्भ

1. खंड-खंड चाँदनी, शचींद्र भटनागर, पृ० 4
2. वही, पृ० 7
3. वही, पृ० 11-12
4. वही, पृ० 16-17
5. वही, पृ० 24
6. वही, पृ० 15
7. वही, पृ० 20
8. वही, पृ० 24
9. वही, पृ० 18
10. वही, पृ० 19
11. वही, पृ० 25
12. वही, पृ० 17
13. वही, पृ० 29
14. वही, पृ० 35
15. वही, पृ० 31
16. वही, पृ० 66
17. वही, पृ० 45
18. वही, पृ० 57
19. वही, पृ० 64
20. वही, पृ० 68
21. वही, पृ० 53
22. वही, पृ० 50
23. वही, पृ० 35
24. वही, पृ० 36-37
25. वही, पृ० 17
26. वही, पृ० 3-4
27. वही, पृ० 11
28. वही, पृ० 13
29. वही, पृ० 41
30. वही, पृ० 65
31. आधुनिक गीत का छंद-विधान, साप्ताहिक हिंदुस्तान, 27 नवंबर 1966
32. वही

16, साहित्य विहार
बिजनौर (उ०प्र०) 246701
मो० 07838090732

हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण समाज का राजनीतिक चिंतन

डॉ० मंजू देवी

संविधान के समक्ष आज प्रत्येक जाति एवं लिंग का व्यक्ति समान है। जातिगत विषमता के उन्मूलन करने एवं राजनीतिक दृष्टि से समानता स्थापित करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय चुनाव व्यवस्था में शताब्दियों से पिछड़े हुए हरिजनों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की हैं। जनता के लिए विधान-निर्माताओं को चुनने का वयस्क मताधिकार वस्तुतः भारतीय ग्रामीण जन-जीवन में एक महान ऐतिहासिक क्रांति का सूचक है। वयस्क मताधिकार एवं विचार-अभिव्यक्ति करने की स्वतंत्रता एवं प्रजातांत्रिक व्यवस्था के इतर अवयवों ने भारतीय ग्रामीण जनता के सामाजिक रूप से पिछड़े हुए वर्ग को सर्वाधिक लाभान्वित किया है। आज हरिजन सभा करते हैं, उनके नेता उन्हें प्रगतिपथ पर अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। हिंदी के आंचलिक उपन्यास साहित्य में ग्रामीण जनता में अवतरित इस परिवर्तन को पूर्ण एवं व्यापक स्तर पर उदघाटित किया गया है।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'परती परीकथा' में दो निम्न जातियों के पात्रों की राजनीतिक भागीदारी को इस प्रकार अंकित किया गया है—

काँग्रेस दल की सभा में जयमंगल तांती लाउडस्पीकर लेकर बोलता है तो ग्रामीण जनता आश्चर्यपूर्ण मुद्रा में कहती है—'ये जयमंगल तांती भी लेक्चर देगा? क्यों नहीं देगा। कॉलेज में पढ़ता है। कहाँ लिखा हुआ है कि भाषण केवल ऊँची जाति वाला ही देगा? तांती टोली वालों को कम सताया है, स्टेट वालों ने? वाह, जयमंगल तांती लाउडस्पीकर के सामने कितना शोभता है! देखो-देखो!'

पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोजपुरी-भाषी अंचल पर आधारित 'आधा गाँव' आंचलिक उपन्यास में हरिजनोद्धार के विषय में मुस्लिम समुदाय के लोग परस्पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि 'आसिया ने एक अचंभे की बात बताई कि सुखा मवा चमार का लड़का परसरमवा खद्दर की टोपी पहिने ऐसी-ऐसी तकरीर कर रहा था कि मौलवी इतनेहसन का करिहे।'²

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत लिखे गए आंचलिक उपन्यासों के पात्रों में राजनीतिक चाह साफ़ स्पष्ट होती है और पिछड़े हुए वर्गों में अवतरित इस क्रांतिकारी परिवर्तन की अभिव्यंजना मिलती है।

मुगल एवं आंग्ल प्रशासन से विरासत में प्राप्त भारतीय ग्रामीण समाज की जर्जर अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के लिए भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया। हिंदी के आंचलिक उपन्यासकारों ने इन योजनाओं एवं ग्रामीण जनता पर उसके प्रभाव

को पूर्णरूपेण चित्रित किया है।³

मोंगरा उपन्यास के एक अन्य कथन द्वारा कृषकवर्ग को सरकार की योजना के माध्यम से मिले लाभ को इस प्रकार दर्शाया है—‘भाइयो और साहबो, राम-राम। मैंने इतनी अच्छी खेती कैसे की, यह मैं आप लोगों को बता सकता हूँ, पर वह आप लोगों की समझ में आएगा कि नहीं यह नहीं कह सकता। मैं रहपुरा ग्राम के जुन्ना गोंटिया का बेटा हूँ। मेरे दिन काफ़ी खराब हो गए थे। ऐसे समय में मेरी बहिनी ने मुझे खेती की याद दिलाई, पर मेरा हाथ खाली था। अगर सरकार मेरे जैसे छोटे किसानों की मदद नहीं करती तो मेरे लिए कुछ भी नहीं होता। आज हमारी सरकार छोटे किसानों की बहुत मदद कर रही है।’⁴

अंचल में चरनदास लघु उद्योगों के निर्माण एवं विकास-संबंधी योजना के अंतर्गत भारत सरकार से सहायता लेकर मुर्गी-पालन उद्योग प्रारंभ कर रहा है।⁵

आंचलिक उपन्यासकार बलदेव दत्त शर्मा अपने उपन्यास ‘गरीबी से आगे’ में अपनी वाणी प्रदान करते हुए लिखते हैं—‘पिछले डेढ़ वर्ष में सरकार ने जर्जर मार्ग को सड़क का रूप दे दिया है। यद्यपि सड़क कच्ची ही हैं, तो भी यहाँ के लोगों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं। जबसे सड़क बनी है, गाँव का हुलिया ही बदल गया है। इसी प्रकार भारत सरकार ने सिंचाई-संबंधी जो योजनाएँ चलाई, उसी का एक उदाहरण जगदीशचंद्र के उपन्यास ‘गंगा के तट पर’ देखने को मिलता है।

बिरौदा ग्राम में भारत सरकार की सिंचाई-संबंधी योजनाओं से तीन ट्यूबवेलों का निर्माणकार्य आरंभ है, जिनसे खेतों की प्यास बुझाई जा सकेगी।⁶

एक अन्य उदाहरण—खेती के विकास के लिए अच्छे-अच्छे बीजों को जनता को बुलाकर देने के संबंध में मंत्री महोदय जनता को समझाते हुए कहते हैं—हमारा मुल्क किसानों का मुल्क है। किसान यदि अपने काम पर पूरी तरह जुटा रहे तो भारत स्वर्ग हो जाएगा। इसलिए सरकार विदेशों से अच्छे-अच्छे बीज मँगाकर सस्ते दामों में बेच रही है।⁷

बिहार अंचल के पूर्णिया ज़िले के मेरी गंज ग्राम में भारत सरकार के नियोजन द्वारा नवीन चेतना की जागृति आई है। इस अंचल पर आधारित मैला आंचल उपन्यास के संबंध में डॉ॰ रामगोपाल चौहान ने लिखा है, देश को आज़ादी मिलने के बाद नई चेतना की लहर भी गाँव में प्रवेश कर रही है। नई विकास योजनाओं का प्रचार आरंभ हो गया है। गाँवासियों के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए सरकारी मलेरिया सेंटर स्थापित हो गया है।⁸

इसी अंचल के परानपुर ग्राम पर आधारित आंचलिक उपन्यास ‘परती परिकथा’ को डॉ॰ बृजभूषण सिंह ‘आदर्श’ ने पुनर्निर्माण का उपन्यास कहते हुए लिखा है—‘रेणु के दूसरे बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास ‘परती परिकथा’ को हम स्थूल रूप में पुनर्निर्माण का उपन्यास भी कह सकते हैं, क्योंकि लेखक ने उपन्यास के माध्यम से ग्राम-सुधार एवं विकास-योजनाओं, जमींदारी-उन्मूलन, लैंडसर्वे आपरेशन, कोसी योजना आदि समसामयिक घटनाओं से परिचित कराया है।’⁹

स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त परंपरागत जर्जर भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के लिए भारत सरकार द्वारा किए गए प्रयासों के अंतर्गत ग्रामपंचायत की पुनः स्थापना एक महत्त्वपूर्ण चरण था। इसके लिए आंचलिक उपन्यास साहित्य में भारत सरकार के

ग्राम पंचायत की पुनः स्थापना संबंधी प्रचार-प्रसार का चित्रण भी मिलता है।

आंचलिक उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में नेता जी ग्रामीण जनता को ग्राम पंचायत के विषय में समझाते हुए कहते हैं कि-'भारत की सच्ची आत्मा पंचायतों में ही है। पंचायत की व्यवस्था भारत की सबसे पुरानी व्यवस्था है। पंचायत सचमुच सत्य और असत्य, पाप और पुण्य का फैसला कर सकती है। गाँव के ही पंच होते हैं। वे गाँव के सारे लोगों और परिस्थितियों से परिचित होते हैं, वे वकीलों की बहस से नहीं, प्रत्यक्ष अनुभव और जाँच से फैसला करते हैं। सत्यदर्शी गांधी जी ने देश की आत्मा को पहचाना था और उन्होंने अनुभव किया था कि इस देश में सच्ची न्याय-व्यवस्था पंचायत द्वारा हो सकती है। सरकार पंचायतराज कायम करने जा रही है, सभी लोगों को पंचायतराज की सफलता के लिए जी-जान से कोशिश करनी चाहिए।'¹⁰

इसी प्रकार इतर अंचलों में भी परंपरागत सत्ताशाली वर्ग ही ग्रामपंचायतों में अधिष्ठित हुआ है एवं उसने ग्रामपंचायत की शक्ति को भी अपने वैयक्तिक पारिवारिक एवं वर्गीय हितों के लिए प्रयोग किया है।

भारत एक कल्याणकारी देश है, जो संपूर्ण राष्ट्र की जनता के अधिकाधिक कल्याण के लिए संविधान में वचनबद्ध है। भारत राज्य के कल्याणकारी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सरकारी प्रशासन तंत्र किस सीमा तक जनता की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं के अनुकूल कार्य कर रहा है तथा जनता के साथ उसके परंपरागत व्यवहार में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं, यह सारा घटनाक्रम हम आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन से जान सकते हैं और समझ सकते हैं कि उपन्यासकारों ने कितनी सत्यता अपने लेखन के माध्यम से व्यक्त की है। उपर्युक्त समग्र प्रस्तुतीकरण के आधार पर यह कह सकते हैं कि आंग्ल प्रशासन में सरकारी सेवकगणों का ग्रामीण जनता के साथ व्यवहार प्रेरणाप्रद, उत्साहजनक अथवा उदार नहीं था, बल्कि यह संपूर्ण वर्ग प्रशासन एवं परंपरागत धनसंपन्न वर्ग की सुरक्षा का साधन-मात्र था। उसी की आड़ में अपने आत्महित में रत था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत ग्रामीण जनता में जनतांत्रिक पद्धति के आविर्भाव से जनता अपनी शक्ति को समझने लगी है तथा ग्रामीण जनता का सुशिक्षित वर्ग प्रशासन के भ्रष्टाचारी सेवकों का विरोध करने लगा है एवं सरकारी सेवकगण भी अब उनसे भयभीत रहने लगे हैं।

हिंदी के आंचलिक उपन्यास साहित्य में चित्रित ग्रामीण समाज में राजनीतिक पक्ष के विविध नियामक तत्त्वों पर विचार करने के उपरांत हम कह सकते हैं कि इस साहित्यिक विधा ने स्वातंत्र्योत्तरकाल के भारतीय ग्रामीण समाज के राजनीतिक जगत के विकास एवं ह्रास, उत्थान एवं पतन, जड़ तथा चेतन, अधुनातन तथा प्राचीनतम स्वार्थपूर्ण एवं राष्ट्रीय और मानव कल्याणकारी भावना से परिपूर्ण कार्य तथा गतिविधियों एवं परंपरा और परिवर्तन के विविध नूतन आयामों को वाणी प्रदान की है।

इस वाणी को जन-जन तक पहुँचाना और आंचलिक उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक स्वरूप की विशेषताओं से अवगत कराना ही मेरे लेखन का उद्देश्य है।

संदर्भ

1. फणीश्वरनाथ रेणु, परती परीकथा पृ० 95-96
2. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृ० 122

3. शिवशंकर शुक्ल, मोंगरा, पृ० 7
4. शिवशंकर शुक्ल, मोंगरा, पृ० 95
5. राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृ० 13
6. बलदेवदत्त शर्मा, गरीबी से आगे, पृ० 69
7. जगदीशचंद्र पांडेय, गंगा के तट पर, पृ० 49
8. डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान, आधुनिक हिंदी उपन्यास, पृ० 223
9. ब्रजभूषण सिंह आदर्श, हिंदी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन, पृ० 450
10. डॉ० रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृ० 214-15

हिंदी, संस्कृत विभागाध्यक्षा
आर्यस इंटरनेशनल स्कूल, मुरादाबाद (उ०प्र०)
मो० 09458810527
09412440527

डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव की कहानियों में स्त्री-विमर्श और दलित-चेतना

नूतन जैन, शोधार्थिनी

दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग

आगरा

डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव जी बहुआयामी प्रतिभा के धनी साहित्यकार तथा पत्रकारिता के पर्याय हैं। वे दीन-दुखियों के पक्षधर, कृषकों के मित्र, अन्याय के विरोधी, शोषण के शत्रु और साहित्य के पुजारी हैं। उन्होंने 'रोटी की तलाश' और 'तलाश राह की' कहानी-संग्रहों की रचना की है। 'रोटी की तलाश' कहानी-संग्रह में चौदह तथा 'तलाश राह की' कहानी-संग्रह में अठारह कहानियाँ हैं। डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव की इन कहानियों में 'स्त्री-विमर्श' और 'दलित-चेतना' पर विचार करना अभीप्सित है।

डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव अपनी कहानियों में नारी की समस्याओं को उकेरने में सफल सिद्ध हुए हैं। उनकी नारी दुर्बल नहीं है, अपितु साहसिकता और जीवटता की जीवंत प्रतीक है। वह पुरुष को सही-ग़लत की पहचान कराकर उसे गुलामी के चंगुल से बाहर निकालती है। डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव ने अपने कहानी-संग्रहों के माध्यम से दलित-चेतना को भी जाग्रत करने का प्रयास किया है। उन्होंने दलितों की समस्याओं को चित्रित ही नहीं किया बल्कि उनके उस अस्तित्व को भी चित्रित किया है, जो गुलामी की जंजीरों को तोड़ने में पूरी तरह से सक्षम है।

स्त्री-विमर्श एक ऐसा आंदोलन है, जो आधुनिककाल में बड़े जोरों से उठाया जा रहा है। यह आंदोलन व्यवस्था में केवल सुधार की नहीं, बल्कि आमूल परिवर्तन की रखता है। स्त्री-लेखन तथा विमर्श का प्रेरक स्त्रीवाद को ही माना जाता है। नारी-लेखन ने स्त्री के विषय में गूढ़ता से सोचने-समझने के लिए ध्यान आकृष्ट किया है। इस संबंध में डॉ० राजेंद्र यादव का कथन, जिसमें वे पुरुष को नारी की लाचारी तथा विवशता का कारण मानते हैं, 'विडंबना यहाँ भी यही है कि मूल स्रोत होने के बावजूद परिवार भी स्त्री का अपना नहीं होता, पति या बेटे का ही होता है। हाँ, उसकी मर्यादा और हितों की रक्षा वह जान देकर भी करती है। वह उस परिवार की इज़्ज़त होती है मगर इस इज़्ज़त की परिभाषा परिवार का केंद्रीय पुरुष तय करता है, जिसके पीछे धर्म, संस्कृति, वंश और रक्त परंपराएँ होती हैं।'¹

स्त्री-विमर्श के संदर्भ में अनेक समस्याएँ सामने आती हैं। जैसे-बाल-विवाह, विधवा-विवाह, अनमेल विवाह, सती-प्रथा, बलात्कार, स्त्री-शिक्षा, साहसपूर्ण कारनामे आदि इन सभी विषयों का विमर्श में समावेश होता है, 'स्त्री के लिए चुनौती है कि बदलते परिवेश में सामाजिक

मान्यताओं का सम्मान करते हुए वह समाज की सोच को बदल डाले कि 'स्त्री ही स्त्री की सबसे बड़ी शत्रु है।' स्त्री अपने अनेक रूपों को सहज रूप में बनाए रखकर अपनी लड़ाई लड़ सकती है या नहीं क्योंकि उच्छृंखलता, उन्मुक्तता, परकीयता भारतीय स्त्रियों के परिवेश और पारिवारिकता के विपरीत है। यदि रचनात्मक जीवन स्त्री को जीना है तो उसे पुरुष द्वारा खींची गई लक्ष्मणरेखा को लांघना ही होगा।²

डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव कृत 'तलाश राह की' कहानी-संग्रह की कहानी 'परिचय की त्रासदी' में नारी-शिक्षा का चित्रण हुआ है। यह कहावत सत्य हो गई कि स्त्री ही स्त्री की सबसे बड़ी शत्रु है। गोदावरी शालिनी की सौतेली माँ है। शालिनी पढ़ने में अत्यधिक होशियार है। उसने हाईस्कूल की परीक्षा अच्छे अंकों से पास की है, किंतु गोदावरी को यह देखकर अच्छा नहीं लगता है। वह उसके पढ़ने का विरोध करती है। शालिनी ने ननिहाल में रहकर बी०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है। उसके पिताजी राघवेंद्र उसे एम०ए० कराकर प्रतियोगी परीक्षाओं में बिठाना चाहते हैं, किंतु वह उसकी शादी करना चाहती है। शालिनी के पिता राघवेंद्र और उसके दोस्त शीतांशु द्वारा समझाए जाने पर गोदावरी यही कहती है—'तुम्हें क्या अनुभव है ज़िंदगी का। तुम पढ़ो, मुझे कोई परेशानी नहीं है, परंतु शालिनी को आगे पढ़ाना या कंपीटीशन में बैठाना ठीक नहीं। देखो, शीतांशु बेटा, यह गाँव है। यहाँ का सोच अलग होता है। सयानी लड़की के विवाह की चिंता तो होती ही है। ...मेरे भाई ने एक अच्छा लड़का बताया है, नहीं शायद इंटर है। रोजगार से भी लगा है, लेखपाल है। उसके साथ शालिनी सुखी रहेगी।'³

शालिनी की सौतेली माँ गोदावरी उसकी शादी कम पढ़े लड़के से कर देती है। नारी को इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है कि वह स्वयं निर्णय ले सके। वर्तमान में स्त्री-शिक्षा का मुद्दा बड़े जोरों से उठाया जा रहा है और यह विमर्श का विषय बन गया है।

इसी कहानी-संग्रह की कहानी 'संकल्प' में नारी की साहसपूर्णता का परिचय मिलता है। नारी किसी से भयभीत नहीं है। नारी चाहे तो स्वयं के दम पर राजा-महाराजाओं के निर्णय को भी बदल देती है। 'संकल्प' कहानी में नारी के साहसपूर्ण कारनामे दृष्टिगत होते हैं। किसान बालिका अत्यधिक साहसी है। वह राजा सिकंदर के शिविर में जाकर सिकंदर से उसकी स्थिति के विषय में अनुमान लगाने को कहती है। अंगरक्षक द्वारा डाँटने पर वह निर्भीक बनकर खड़ी रहती है। सिकंदर उसकी स्थिति को देखकर अस्मत लूटने का अनुमान लगाता है। तब किसान बालिका निर्भीकतापूर्वक कहती है—'अस्मत लूटने के पहले भारतीय वीरांगनाएँ स्वयं अपने हाथों मुस्कराते हुए अपने शरीर में तलवार की पैनी नोंक भौंक लेती हैं। विश्वविजेता, आपने युद्धों में अभी तक केवल राजाओं को ही पराजित किया है, भारतीय नारियों का सामना नहीं पड़ा।'⁴

सिकंदर उसकी निडरता से प्रसन्न होकर उसकी बात सुनने को कहता है, तब किसान बालिका स्वयं का परिचय देती हुए कहती है—'क्या विश्वविजय की महत्त्वाकांक्षा की चकाचौंध के सामने किसी के श्रम की विनाशलीला नहीं दिखाई देती, सम्राट।'⁵

वर्तमान समय की नारी अपने खिलाफ़ हो रहे जुल्म के प्रति पूर्ण रूप से सचेत है। यही स्थिति किसान बालिका की थी। उसने अपनी साहसिकता का जीवंत संकेत दिया। वह राजा सिकंदर से भयभीत नहीं हुई। नारी जब अपने प्रति हो रहे जुल्म के खिलाफ़ आवाज़ उठाती है तो उसके सामने बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी घुटने टेक देती है।

‘कुंदनलाल’ कहानी में नारी की निर्भयता दृष्टिगत होती है। नारी को नेता जैसे बड़े लोगों से डरना नहीं चाहिए बल्कि आवाज़ उठानी चाहिए। प्राचीनकाल में नारी को पुरुष के सामने बोलने की अनुमति नहीं दी जाती थी। ‘कुंदनलाल’ कहानी में जगरनिया नेता तथा नेता के चेलों से बिल्कुल नहीं डरती है। कुंदनलाल नेता के चले गाँव के लोगों को जबरदस्ती कुंदनलाल का स्वागत करने के लिए स्टेशन पर ले जा रहे हैं, तब जगरनिया कुंदनलाल नेता के चेलों से कहती है—‘जबरिया इकट्ठी की गई भीड़ से नेताओं का रुतबा नहीं बढ़ेगा। वह तो गाँववाले खुद ही जाएँ, तभी बढ़ेगा। ऐसे दिखावे से क्या फायदा?’⁶

डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव द्वारा रचित ‘रोटी की तलाश’ कहानी-संग्रह की कहानी ‘रिक्शेवाला’ में नारी की निर्भीकता का चित्रण हुआ है। पुरुष-प्रधान समाज होने के कारण नारी को आवाज़ उठाने का हक़ भी नहीं है। पुरुष उसे हमेशा से कठपुतली समझता आया है, जबकि वह यह नहीं जानता है कि पत्नी, पति की हमेशा से सहचरी रही है। वह ही उसे सही-ग़लत की पहचान कराती है। रिक्शेवाला कहानी में गजुआ की पत्नी फुलबसिया गजुआ से नहीं डरती है। वह गजुआ को ग्रामप्रधान की गुलामी से बाहर निकालना चाहती है। वह जीवटता का परिचय देती हुई गजुआ से कहती है—‘तुम रहोगे, बुद्धू के बुद्धू, क्यों नहीं कह देते कि कमाई नहीं हो रही। सवारी नहीं मिलती, पचासों बहाने हो सकते हैं। हद है तुम्हारे बुद्धूपन की। वह आया और छिदा दिया, उसे रुपये।’⁷

दलित-चेतना की उत्पत्ति का कारण भारतीय वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था तथा अस्पृश्यता की दारुण वेदना को माना जाता है। दलित-चेतना सदियों से सताए हुए लोगों की वेदना की अभिव्यक्ति है। इसमें अस्वीकार, निषेध, विद्रोह और संघर्ष के प्रति निष्ठा निरंतर जन्म ले रही है। भारत में दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार ही दलित-चेतना की जागृति का कारण है। कमलेश्वर दलित शब्द को परिभाषित करते हुए लिखते हैं—‘भारतीय समाज के संदर्भ में दलित वह है, जो मनुवादी वर्ण-व्यवस्था के तहत शूद्र वर्ण में गिना जाता है। ‘दलित’ शब्द किसी जाति या समुदाय का प्रतीक न होकर एक सार्वभौमिक अत्याचारी सत्य है। जो भी व्यक्ति सताया गया है, चाहे जातिगत रूप से या सामाजिक रूप से प्रताड़ित किया गया है, वह दलित है। दलित का अर्थ वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत शूद्र अर्थात् छोटी जाति के समझे जाने वालों के लिए रूढ़ हो गया है, लेकिन मैं इसे उचित नहीं मानता। ‘दलित’ का अर्थ है शोषित और पीड़ित, चाहे वह किसी भी वर्ण, जाति, धर्म, लिंग या नस्ल का हो, यदि जुल्म और उत्पीड़न का शिकार है तो मैं उसे दलित मानता हूँ।’⁸

दलित-साहित्य के संदर्भ में डॉ० माताप्रसाद लिखते हैं कि—‘दलित-साहित्य कठोर अनुभवों पर आधारित साहित्य है। दलित-साहित्य में आक्रोश या विद्रोह की भावना प्रमुख है, किंतु आक्रोश या विद्रोह साहित्यिक है, ऐसा मानना पूरी तरह सच नहीं है। दलित-साहित्य में जहाँ सामाजिक दर्द है, जातिवाद की पीड़ा है, शोषण तथा उत्पीड़न की कसक है, वहीं जाति-उत्पीड़न तथा शोषण के कारणों की तलाश भी है। इसमें भाग्यवाद को अस्वीकार करने की भावना भी है। यह साहित्य छंदविधान को तोड़ता है और जनभाषा का हिमायती है।’⁹

डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव ने ‘रोटी की तलाश’ कहानी-संग्रह की कहानी ‘सिसकती आत्मा’ में दलितों में चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया है। बनकटा गाँव के लोग अधिकांशतः

आदिवासी हैं। वे अत्यधिक पिछड़े हुए हैं। बनकटा गाँव तथा वहाँ के लोगों का विकास करने के लिए चुनाव के कर्मचारी, मलेरिया वाले तथा परिवार-नियोजन वाले जाते हैं। मलेरिया वाले बनकटा गाँव के पिछड़े तथा आदिवासी लोगों को समझाते हैं कि—‘यह एक खराब बीमारी है, जो मच्छरों से पैदा होती है। इसमें जाड़ा देकर बुखार आता है।’¹⁰

किंतु बनकटा गाँव के पिछड़े तथा आदिवासी लोग यह समझने के लिए तैयार नहीं हैं और वे उन लोगों को गाँव से भगा देते हैं।

‘तलाश राह की’ कहानी-संग्रह की ‘दो सूखी रेखाएँ’ कहानी में दलित-चेतना का चित्रण हुआ है। करीम नाल, कील तथा हथौड़ी का कार्य करता है। यह कार्य उसका पुशतों से चला आ रहा है। वह चाहता है कि उसका पुत्र इस कार्य को न करे, क्योंकि इस कार्य को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है। एक दिन जब उसका पुत्र रमजानी नाल, कील तथा हथौड़ी के कार्य को करता है, तब करीम उससे कहता है—‘रहने दो बेटा, तू मत छू इन सब चीजों को। मैं सब कर लूँगा। तू पढ़, ऊँची तालीम हासिल कर। छोड़ इस पेशे को, क्या रखा है इसमें? न इज्जत न आमदनी। तू मत छू इनको। नहीं तो तू भी लगा लेगा इन्हें सीने से और छोड़ने का नाम नहीं लेगा, बुजुर्गों की तरह, मेरी तरह। मैं तुमको ऊँची तालीम देना चाहता हूँ। किसी ऊँची जगह पर देखना चाहता हूँ। नाल वाले करीमवा का लडका रमजनिया नहीं।’¹¹

इस प्रकार समाज में उपेक्षित करीम रमजानी को ऊँची तालीम देकर चेतना का संदर्भ प्रस्तुत करता है।

‘दो बीघा ज़मीन’ कहानी में भी दलित-चेतना का चित्रण द्रष्टव्य है। सुखदीन गजानन के यहाँ काम करता है। गजानन उससे गुलामी करवाता है, किंतु सुखदीन का पुत्र विनयदास गजानन की गुलामी नहीं करता है। न ही वह यह चाहता है कि उसके पिता गजानन की गुलामी करें। विनयदास अपने पिता सुखदीन को समझाते हुए कहता है कि—‘अच्छा तो देख लो गजानन के यहाँ काम पर न जाकर। ज़ोर-ज़बरदस्ती पर उतर न आएँ तो मेरा नाम नहीं। मदद अपनी मर्जी से की जाती है, जबरिया कराई नहीं जाती। दिन-भर काम करो, फिर शाम को बैठकर पैसों के लिए खीसों काढ़ो, तब कहीं टिका दिए दो टके। क्या है उनकी नज़रों में मदद की कीमत। वह तो समझते हैं गुलामी कर रहे हैं। तुम भले समझो मदद। देखो बापू, अब मैं अच्छा-खासा कमाता हूँ, तुम्हें खाने-पहनने को पैसे भेजता हूँ, तो क्या पड़ी है तुम्हें यह सब करने की।’¹²

निष्कर्षतः डॉ॰ रमाकांत श्रीवास्तव के कहानी-संग्रहों ‘रोटी की तलाश’ और ‘तलाश राह की’ में पुरुष के व्यक्तित्व के समान ही स्त्री का अस्तित्व भी उसकी अस्मिता के साथ जुड़ गया है। नारी अब कमजोर नहीं है। उसने स्वयं के प्रति होने वाले अत्याचार तथा शोषण के प्रति आवाज़ उठानी शुरू कर दी है। ‘रोटी की तलाश’ कहानी-संग्रह में डॉ॰ रमाकांत श्रीवास्तव जी ने दलितों और उपेक्षित वर्ग में चेतना जगाने का प्रयास किया है तो दूसरी ओर तलाश राह की कहानी-संग्रह में दलित और उपेक्षित वर्ग को शिक्षा के द्वारा स्वयं ही जाग्रत दिखाया है। इनके कहानी-संग्रहों में दलित और उपेक्षित जीवन, हिंदू-समाज की वर्ण-व्यवस्था के शिकार लोगों का चित्रण है, भले ही यह चित्रण हृदयस्पर्शी न हो, किंतु दलितों और उपेक्षित वर्ग के लोगों का चित्रण अवश्य है।

संदर्भ

1. डॉ० सिद्राम कृष्णा खोत, शिवानी के उपन्यासों में समाज, सन्-2009, रोली बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन, कानपुर, पृ० 173
2. सं० प्रो० शर्मिला सक्सेना, शोधश्री, दयालबाग, आगरा, पृ० 14,
3. डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव, तलाश राह की, सन् 2014, उत्तरायण प्रकाशन, लखनऊ, पृ० 114
4. वही, पृ० 107
5. वही, पृ० 108
6. वही, पृ० 58
7. डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव, रोटी की तलाश, सन् 1980, प्रकाश कमल प्रकाशन, बरेली, पृ० 58
8. कमलेश्वर, दलित जीवन की संवेदनाएँ बहुत प्रखर हैं, पृ० 49
9. मृणाल पांडे, अपनी गवाही, सन्-2003, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 92,
10. डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव, रोटी की तलाश, सन्-1980, प्रकाश कमल प्रकाशन, बरेली, पृ० 39
11. डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव, तलाश राह की, सन्-2014, उत्तरायण प्रकाशन, लखनऊ, पृ० 52
12. वही, पृ० 62-63

मकान नं०-269 सेक्टर-13 बी आवास विकास कॉलोनी
सिकंदरा, आगरा (उ०प्र०) 282007
मो० 09411652011, 09759901980

कल्पना और विज्ञान की सहोपस्थिति लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' का बालसाहित्य

डॉ० रंजना अरगडे

प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग

गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

विश्व के बालसाहित्य का एक प्रधान हिस्सा कविताओं ने घेर लिया है। उसके बाद उपदेश-प्रधान नीति-वार्ता वाले कथासाहित्य का क्रम है। इसके अलावा लिखे जाने वाले साहित्य में पहेलियाँ, नाटक तथा विज्ञान-कथाओं का समावेश होता है, किंतु जितनी तल्लीनता से सामान्य पाठकों के लिए उपन्यास या कहानियाँ लिखी जाती हैं, उतनी तल्लीनता से हिंदी में बाल-उपन्यास नहीं लिखे गए हैं; ऐसे बाल-उपन्यास जिसमें बच्चों की निजी भावनाओं, राग-द्वेष संबंधों की बात हो, वैसा नजरिया बालसाहित्य में कम देखने को मिलता है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि बच्चों की अपनी एक अलग श्रेणी बाज़ार और मीडिया ने तो स्वीकार कर ली है, पर समाज अभी उन्हें एक अलग श्रेणी के रूप में उतनी गंभीरता से नहीं स्वीकार करता। ऐसे में, साहित्य-स्वरूपों में बालसाहित्य की एक अलग श्रेणी है, यह अपने-आपमें आश्चर्य जगाने वाली बात है। एक तरफ़ साहित्य में बालसाहित्य को एक अलग श्रेणी देकर उसे मुख्य से अलग कर दिया और दूसरी तरफ़ समाज में अलग श्रेणी न देकर बच्चों के अस्तित्व को पूरी तरह, एक अलग व्यक्ति/ हस्ती की तरह स्वीकार नहीं किया गया; समाज का यह कॉन्ट्रेडिक्शन (विरोधाभास) इस बात का गवाह है कि समाज अपने बाल-बंधुओं को किस दृष्टि से देखता है। सेंट एक्सपुरी ने 'दी लिटिल प्रिंस' नामक अपनी पुस्तक में बड़ों के नज़रिए का जो हवाला दिया है, वह ध्यान देने योग्य है। आज बच्चे स्वयं अपने-आपको, अपनी कल्पना तथा चेतना में, माता-पिता की कठोर पकड़ से कबके मुक्त कर चुके हैं, परंतु माता-पिता अब भी उनकी कल्पनाओं तथा उनकी सोच का अभिभावकत्व करने के भ्रम में जी रहे हैं। उनकी सामाजिक आवश्यकताओं तथा उनके भविष्य-निर्माण का अभिभावक बनना निस्संदेह उन (माता-पिता) का नागरिक कर्तव्य है, किंतु लोकतांत्रिक देशों में पलने वाले बच्चे जिस तरह की शिक्षा-पद्धति में जी रहे हैं और जिस तरह की सूचना-विस्फोट वाले परिवेश के बाशिंदे हैं, उसे देखते हुए यह एक असंभव घटना होगी अगर बच्चों की कल्पना और सोच पर वह किसी प्रकार का अधिकार रखने का दावा करते हों। ऐसे में जहाँ बालसाहित्य लिखना ही बहुत चुनौती भरा काम है वहाँ अफसोस इस बात का है कि बाल कथासाहित्य में गंभीरता से लिखने वाले साहित्यकारों को भी गंभीरता से नहीं लिया जाता। बालसाहित्य की चर्चा भी कम ही होती है। जिस तरह बालसाहित्य की रचना चुनौति भरा काम है उसी तरह बालसाहित्य का मूल्यांकन भी

कठिन ही है। चूँकि बालसाहित्य के अधिकारी पाठकों में पेशे से कोई आलोचक नहीं है और आलोचक बालसाहित्य का आधिकारिक पाठक नहीं होता; कई बार रुचि से भी वह बालसाहित्य का पाठक नहीं होता, केवल वह इसी नाते बालसाहित्य का मूल्यांकन करता है जिस नाते वह दलित-साहित्य या महिला-लेखन या अन्य किसी भी साहित्य की आलोचना करता है। किंतु इस पूरी चर्चा में एक प्रश्न यह भी है कि जितना भी बालसाहित्य लिखा जा रहा है, काल के गाल को पार करता हुआ इसमें से जो टिका रहेगा, ऐसा बालसाहित्य कितना होगा? कम ही होगा।

चर्चा का आरंभ इस बात से करना चाहिए कि बालसाहित्य किसे कहते हैं या कहा जा सकता है—बालकों द्वारा रचा गया साहित्य, बालकों के लिए उनकी भावनाओं को व्यक्त करता साहित्य अथवा बालकों के लिए बड़ों की दृष्टि से लिखा गया साहित्य अथवा तीनों को। यानी एक श्रेणी पंचतंत्र की श्रेणी का साहित्य है और दूसरी श्रेणी आश्चर्यलोक में एलिस की श्रेणी का साहित्य है। तीसरी श्रेणी बालकों द्वारा बालकों के लिए लिखा गया साहित्य, जो प्रायः बाल-पत्रिकाओं या अखबारों के बाल-विभाग में नियमित छपता है। पर उसके प्रति हम क्या गंभीर हैं? क्या उसे लिखने वाले बच्चे भी लिखने की अपनी क्रिया के प्रति गंभीर हैं? यह प्रश्न तो है ही। पंचतंत्र, हितोपदेश जैसी रचनाएँ, अलीबाबा चालीस चोर, सिंदबाद की साहस कथाएँ अपनी लोकप्रियता में चिरस्थायी हैं। विष्णु शर्मा रचित पंचतंत्र की लोकप्रियता के कारणों की चर्चा में यह भी देखना होगा कि आज के पर्यावरणविद् इस रचना के विषय में जो सोचते हैं वह दीर्घकाल तक टिकेगा या पंचतंत्र की कहानियाँ! प्राणियों में मानवीय स्वभाव की बुराइयों अथवा अच्छाइयों को डालकर बच्चों को शिक्षित करना संभवतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विपरीत है; पर प्रश्न यह है कि जब कहानियों में आते प्राणी मनुष्य की तरह बोलते हैं तो क्या यह संभव है कि ऐसा न करके काम चल सकता है, अर्थात् पशु-पक्षियों में मनुष्य के चरित्र का आरोपण किए बिना भी काम चल सकता है। ऐसी कहानियों का मूल्य क्या केवल इनका शिक्षाप्रद होना था अथवा कुछ और भी...आज के समय में यह प्रश्न महत्वपूर्ण माना जाएगा।

इस प्रपत्र में लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' की तीन कृतियों की चर्चा अपेक्षित है—एक उनकी एकदम छोटे बच्चों के लिए लिखी गयी कहानियों की पुस्तक 'शेर की सवारी' दूसरी पूर्व किशोर वय के बच्चों के लिए लिखी कहानियाँ 'क्या? क्यों? कैसे?' तथा तीसरी, किशोर वय के बच्चों के लिए लिखा बाल-उपन्यास 'अजूबे' तथा 'नन्हें अजूबों की दुनिया'। 'शेर की सवारी' एकदम छोटे बच्चों के लिए लिखा गया कहानी-संग्रह है। बहुत आकर्षक और सुंदर चित्र से सजा यह संग्रह बुक ट्री पब्लिशिंग हाउस ने छापा है। इसमें कुल बारह कहानियाँ हैं और जंगल के शेर, हाथी, चीते, भालू से लेकर कुत्ते, बिल्ली, हिरन और चूहा, कछुआ जैसे प्राणियों के साथ चिड़िया और मुर्गी को भी शामिल किया गया है। ये सारे प्राणी बच्चों के लिए अजनबी नहीं हैं। कुछ को उन्होंने देखा है, कुछ के बारे में सुना है। इन कहानियों में लेखक ने प्रायः एक-दूसरे की मदद करते प्राणी चित्रित किए हैं। जैसे—कुत्ता भेड़ों की मदद करता है या कछुआ बिल्ली की; अथवा मुर्गा-मुर्गी या झबरा-झबरी या कोई अन्य प्राणी मिलकर किसी समस्या का समाधान करते हुए बताया गया है। पर यह भी सही है कि लेखक समाज की सर्व-सामान्य मान्यताओं के अनुरूप मादा प्राणी को समझदारी न होने के कारण या स्वभाव के

कारण किसी भी समस्या के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। जैसे पापा चूहे में अथवा मुर्गी और बिल्ली में अथवा बुद्धू चिड़िया में। आज के बदले हुए प्रतिमानों में इस तरह का रवैया वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है। यह छोटे बच्चों के मन में समाज द्वारा निर्मित पूर्वग्रहों को दूर करने का काम नहीं करेंगे। पर हाँ, इन्हीं कहानियों में एक-दूसरे की मदद करते इतने नर और मादा प्राणी हैं कि वह दूसरे की मदद करने का मूल्य बच्चों के मानस में अवश्य रोपित करते हैं। यह सही है कि इसे पढ़ने अथवा सुनने वाले बच्चे बहुत छोटे हैं, किंतु बच्चों में संस्कार ग्रहण बहुत पहले से हो जाता है। समझ बाद में आती है, संस्कार पहले पड़ता है। लेकिन लेखक का ध्यान इस मुद्दे की तरफ़ है। लिंगभेद जैसे गंभीर मुद्दे को लेखक ने अपने बाल-उपन्यासों में अच्छी तरह समेटा है, जिसमें बौनों को बचाने, ढूँढ़ने का काम लड़कियाँ अपने साहस और बुद्धि से करती हैं।

‘क्या? क्यों? कैसे?’ किशोर वय से पूर्व के बच्चों के लिए लिखा कहानी-संग्रह है। असल में क्या क्यों और कैसे... यही वे तीन सवाल हैं, जो बच्चों के जेहन में सबसे पहले आते हैं। विज्ञान सदैव इस तरह के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करता है। छोटे बच्चों की उम्र और समझ वह नहीं होती कि अगर उन्हें वास्तविक कार्य-कारण का संबंध समझा भी दिया जाए, तो उसे वह ग्रहण कर सके। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें या तो हतोत्साहित किया जाए अथवा टाल दिया जाए। यह नज़रिया अ-वैज्ञानिक है। बच्चे इन सवालों के जवाब में इस तरह के बयान सुनकर सर्वाधिक निराश होते हैं—‘मुझे नहीं मालूम’, ‘चुपचाप बैठे रहो’, ‘बहुत सवाल करता है’, ‘बंद कर अपनी चपड़-चपड़’, ‘बस ऐसे ही होता है—भगवानजी ने बनाया है..हमने तो कभी अपने बड़ों से ऐसा पूछा नहीं’ इत्यादि। बनिस्बत, बच्चों को ऐसे कारण देने चाहिए, जो अगर एकदम सच्चे और वैज्ञानिक न भी हों तो भी कम-से-कम तार्किक एवं प्रतीतिकर, सत्य के निकट तो हों ही। इन कहानियों के शीर्षक ही इतने रोचक पद्धति से दिए गए हैं कि शीर्षक देखते ही कहानी पढ़े बिना नहीं रहा जा सकता। जैसे ‘कुत्ते बिल्लियों के पीछे भागते क्यों हैं’ अथवा ‘जिराफ नदी में नहाता क्यों नहीं’। बच्चे तो बच्चे, बड़ों को भी उत्सुकता होती है, क्योंकि उन्हें अचानक याद आता है कि ऐसा प्रश्न या तो उन्होंने कभी किया नहीं था अथवा इसका जवाब उन्हें कभी मिला नहीं था। इन सवालों के जवाब वैज्ञानिक सत्य के आधार पर टिके नहीं हैं, परंतु अरस्तु के जिस संभावना वाले सिद्धांत के आधार पर ट्रेजेडी को प्लेटो के आरोपों से मुक्ति मिली है, उसी सिद्धांत के आधार पर ऐसे कितने ही सवालों के जवाब लक्ष्मी खन्ना ‘सुमन’ अपनी इन कहानियों में देते हैं। इसमें भी लोमड़ी चालाक है, बंदर के लाल मुँह के राज में उसकी बदनीयती को लाने जैसे तर्क खन्ना सुमन करते हैं। मजे की बात यह है कि बंदर का मुँह लाल उसकी मक्कारी के कारण है तो लंगूर का मुँह काला उसकी दूसरों की मदद के फलस्वरूप हुआ है। काला मुँह एक कलंक है, जिसे लेखक सकारात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। कह सकते हैं कि बिना किसी सीधे तौर पर शैक्षिक उद्देश्य से लिखी इस तरह की कहानियाँ आज के समय की पंचतंत्र की कहानियाँ हैं। लोकमान्यताएँ, सामाजिक विश्वास और कहीं-कहीं पर अंधविश्वास के विरुद्ध बिगुल बजाती लगती हैं ये कहानियाँ। इस पुस्तक में ‘अपनी बात में’ लेखक ने स्वयं कहा है—‘ये कहानियाँ मनोरंजन से भरपूर और शिक्षाप्रद तो हैं ही इसमें पाठकों की अंत तक उत्सुकता बनी रहती है कि क्या क्यों और कैसे

हुआ। इसमें कल्पना का तानाबाना ऐसा बुना गया है कि सब तर्कसम्मत भी हो। मुझे आशा है कि ये कहानियाँ बच्चों और किशोरों के साथ-साथ व्यस्कों को भी रुचिकर लगें।'(अ)

परंतु विश्वफलक पर अगर देखा जाए तो बालसाहित्य की विभिन्न विधाओं की लोकप्रियता में सबसे पहले नंबर पर कहानियाँ हैं और बाद में कविताएँ। किशोरों में उपन्यास अधिक लोकप्रिय हैं। इसका भी एक मनोविज्ञान है—छोटे बच्चों का ध्यान एक बात पर अधिक देर तक नहीं रहता। अतः उनकी कहानियाँ भी छोटी-छोटी ही होती हैं। यों देखा जाए तो उपन्यास आधुनिक समय की विधा है। अतः चाहे सामान्य पाठक हो अथवा बालपाठक, इसमें पुराने समय की कथा-वार्ता नहीं होती है, फिर भी पश्चिम में बाल-उपन्यास लिखने की परंपरा बहुत पहले से है, जैसे वहाँ पर बहुत पहले से उपन्यास लिखा जाने लगा। यह निर्विवाद है 100 से भी अधिक वर्ष पुरानी किताब 'एलिस इन वंडरलैंड' की आज भी लोकप्रियता की क्या मिसाल हो सकती है। अपनी कल्पनाशीलता, वैज्ञानिकता तथा कथन-पद्धति में वह अपनी मिसाल आप है। आज के समय में आज की भावनाओं तथा समस्याओं को केंद्र में रखकर आर० रॉडलिग्स द्वारा लिखे गए हैरी पॉटर ने अपनी रचनाकार को अकल्पनीय यश तथा अर्थ प्रदान किया होगा, परंतु समय ही यह तय करेगा कि क्या वह गुलीवर (1699-1715, गुलीवर के चार भाग) तथा एलिस (वंडरलैंड एवं थ्रू लुकिंग ग्लास), जैसे बाल-उपन्यासों से आगे जा पाया है या नहीं। हमें यह याद रखना चाहिए कि हैरी पॉटर इस बाजारवाद के समय में सूचना प्रौद्योगिकी तथा मल्टी-मीडिया के दौर की रचना है, जो दृश्य-श्रव्य तथा पाठ दोनों में एक ही समय में साथ आ सकता है।

आज, जो कम-से-कम 60 या उससे अधिक के करीब उम्र में पहुँचे लोग हैं, उन्होंने अपने बचपन में इनीड ब्लायाटन की प्रसिद्ध पुस्तक श्रेणियाँ-फेमस फाइव तथा सीक्रेट सेवेन जो अत्यंत लोकप्रिय थीं, अवश्य पढ़ी होंगी, अगर उनके लिए किसी भी अच्छे पुस्तकालय में जाने की सुविधा हो तो। यह एक तरह की साहस कथाएँ हैं, जो बच्चे समूह में रहते हुए, संभव कर सकते थे। लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' के बाल-उपन्यास अजूबे तथा नन्हे अजूबों की दुनिया, इनीड ब्लायाटन की सीक्रेट सेवेन की संरचना का स्मरण दे जाते हैं। यह उपन्यास कुल 132 पृष्ठों का है और उसमें लगभग पच्चीस तथा तेरह जितने चित्र हैं। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि उपन्यास में दिए गए चित्र बहुत सुंदर, प्रभावशाली, कथानुसारी एवं बाल-पाठकों को आकर्षित करने वाले हैं। अजूबे उपन्यास के प्रथम तथा आखिरी कवरपेज पर दिए गए रंगीन चित्र उपन्यास के आरंभ तथा अंत का निर्देश करते हैं। सन् 2010 में प्रकाशित इस उपन्यास की चौथी आवृत्ति सन् 2013 में छपी है। इसका अँग्रेजी तथा पंजाबी में अनुवाद भी हुआ है। सन् 2014 में केटरपिलर प्रकाशक ने नन्हे अजूबों की दुनिया नाम से एक और उपन्यास प्रकाशित किया, जो अजूबे उपन्यास की सिक्वील में गिना जा सकता है। यह उपन्यास भी 132 पृष्ठों का है तथा इसमें 13 चित्र हैं। 13 अजूबे वही के वही हैं, हालाँकि इस दूसरे सिक्वील में उनके नाम कुछ भिन्न हैं। उन्हें अपना पिछला समय कुछ-कुछ याद है। इसमें छः बच्चे हैं—वर्षा, रिंकी, रीमा, मीरा, पंकज और अमित। अजूबे उपन्यास में भी छः बच्चे हैं; बच्चों के नाम थे—रीमा, राधा, सुकन्या, युवराज, शमीम, रुखसाना, पर ये वो बच्चे नहीं जो अजूबे में हैं, दूसरे हैं। दोनों में कोई बात समान है तो वह है अजूबों का प्रकट होना और अजूबों का पुनः

हायबरनेशन में चले जाना। हर बार किसी एक किसान को ही को वे मिलते हैं। संभवतः इसलिए भी कि लेखक स्वयं एक किसान हैं और जंगल में वर्षों तक रहे हैं। उन्हें हर बार खेत में ही गाड़ा जाता है और हर बार वे किसी खेत में से ही मिलते हैं। इसका तीसरा भाग कुछ ही समय में प्रकाशित होगा, जिसमें बौने स्वयं अपने तरीके से जंगल में किस तरह रहते हैं, इसकी कथा है।

लेखक ने इन उपन्यासों को स्वतंत्र रूप से लिखा है, सीक्रेट सेवेन के जैसे लगते हुए भी 'अजूबा सिक्वील' पर इनका कोई प्रभाव है, ऐसा लेखक नहीं मानते क्योंकि उन्होंने इन उपन्यासों (सीक्रेट सेवेन) के बारे में सुना नहीं है। अपने कथ्य में लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' का उपन्यास भारतीय पृष्ठभूमि को ही उजागर करता है। इस उपन्यास में खेत है, किसान है, श्रमिक भी है और सामान्य मध्यवर्गीय परिवार के पात्र। बाल-उपन्यास लिखना बहुत ही कठिन काम है। कल्पना, नीति, बोध, स्वाभाविकता रसात्मकता और अपने समयानुसार वैज्ञानिक दृष्टि रखकर लिखना आसान नहीं है। फिर वह दृष्टि ऐसी हो कि कई वर्षों बाद भी विश्वसनीय होनी चाहिए। इस दृष्टि से एलिस उपन्यासों (वंडरलैंड तथा थ्रू लुकिंग ग्लास) ने एक स्तरीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

'अजूबे' उपन्यास में लेखक लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' ने 13 बौनों की ऐसी अद्भुत फैटेसी रची है, जिसके द्वारा मानवीय व्यवहार एवं नैतिकता को प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है। जीवन में सच-झूठ के मसले अथवा गोपनीयता इस बात पर आधारित होनी चाहिए कि उसमें व्यापक हित का कितना समावेश है—यह एक प्रमुख बात इस उपन्यास से उभरकर आती है। आलू के एक खेत में किसान को ऐसा पौधा दिखाई पड़ा है जो बहुत विशाल है और उस पर बड़े फूल खिले हैं, जो कालांतर में सूख जाते हैं और वह पौधा भी। किसान उस पौधे को उखाड़ने की कोशिश करता है, जिसमें जमीन के भीतर से एक बड़ा-सा कद्दू निकलता है। इतना बड़ा कि जिसे उसने इससे पहले कभी नहीं देखा था। वह उस कद्दू को घर ले जाने के लिए हाथ में उठाता है, पर अंधकार में किसी चीज से टकराता है और कद्दू हाथ से छूटकर गिरता है और जैसे ही वह जमीन पर गिरकर टूटता है उसमें से ये छोटे-छोटे 13 बौने निकलते हैं, बस, किस्सा यहीं से शुरू होता है।

कहानी के दो हिस्से हैं—पहला कि ये बौने कैसे आते हैं? दूसरा हिस्सा किस तरह खोते हैं और उपसंहार के रूप में फिर किस तरह एक लंबी नींद (हायबरनेशन) में चले जाते हैं। कहानी के ये बौने कभी मरते नहीं हैं—एक निश्चित समय बाद में हायबरनेशन में चले जाते हैं और फिर जब नई नींद में सोते और जागते हैं तो नया जन्म पाते हैं। कहानी के बच्चों के साथ रहते हुए जब उनके हायबरनेशन का समय आता है तो वे बच्चों से कहते हैं कि उन्हें बिना कपड़ों के लौकी में डाल दिया जाए। यह बड़ा दार्शनिक है। यह हायबरनेशन यानी शीत-निष्क्रियता। यह एक तरह से मृत्यु-सम-निद्रा ही है; और उस हायबरनेशन से जागना मानों दूसरा जन्म पाना है। जाहिर है छोटे बच्चों के लिए यह इतना गंभीर अर्थ नहीं है, उनके लिए तो यह भी एक तरह का मजा ही है कि लौकी में नंगे-नंगे ही उन्हें डाल दिया, एक खेल ही है। पर अगर बच्चों की कहानी से बड़े अपने लिए कोई अर्थ निकालते हैं, तो यह बालसाहित्य उनके लिए भी अवश्य लिखा गया है, ऐसा मान लेना चाहिए। लेखक ने प्रयत्न किया है कि

इस उपन्यास को वह बाल-पाठकों से आगे बढ़कर वयस्क पाठकों तक ले जाए।

चूँकि किसान ने बौनों को खोजा। अतः अब ये बौने किसान के गुलाम हो गए। जादुई चिराग के जिन के मानिंद वह अपने मालिक के सभी काम करने के लिए बँधे हैं। 'नन्हे अजूबों की दुनिया' में लेखक ने बौनों की मदद करने में बच्चों की भूमिका कल्पित की है। असल में इस प्रकार के रोल के कारण बच्चों में एक तरह की समझदारी और जिम्मेदारी का भाव भी जागता है। बच्चे सोच सकते हैं, जिम्मेदारी ले सकते हैं, उसे निभा सकते हैं और समाज में एक सकारात्मक भूमिका अदा कर सकते हैं, यह बात इस उपन्यास में उजागर होती है। यह बात बच्चों और बड़ों दोनों के समझने की है। इस उपन्यास सिक्वील में लेखक ने क्रमशः नियति द्वारा स्वाभाविक रूप से प्राप्त गुलामी भावना से आगे बढ़कर स्वयं अर्जित एवं समझदारी से प्राप्त स्वतंत्रता की दिशा में अग्रसर होते इन बौनों की कहानी कही है। इस स्वतंत्रता की दिशा में उन्हें बच्चों द्वारा सीखी तमाम बातें मदद करती हैं। यानी कि ज्ञान उन्हें गुलामी से स्वतंत्रता की ओर ले जाता है। यही बात इन बाल-उपन्यासों का एक वाक्य में लुब्बे-लुबाब है। साथ ही दूसरों की मदद करना, दूसरों की सुरक्षा के लिए उनके राज छिपाना, दूसरों का सम्मान करना आदि मूल्य बच्चों में इन उपन्यासों को पढ़कर सहज रूप से बाल-मानस में प्रवेश करते हैं।

लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' के बालसाहित्य का हिंदी बालसाहित्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसका कारण उनकी कल्पना शक्ति तो है ही; साथ ही कहने का तरीका बहुत रोचक और बच्चों को समझ में आए ऐसी ही भाषा में है। इन कहानियों को पढ़कर बच्चों में सही भाषा-प्रयोग के संस्कार भी पढ़ेंगे। यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि आज सबसे अधिक इसी बात की आवश्यकता है कि देश के ये बाल-नागरिक सही भाषा सीखें। शिक्षा-जगत् में भाषा के प्रति बरती जाने वाली उदासीनता, नेताओं तथा अभिनेताओं का दरिद्र भाषाज्ञान एवं दृश्य-श्रव्य माध्यमों में दिखाए जाने वाले कार्टूनों में अनूदित भाषा के दयनीय एवं कई बार अप्राकृतिक प्रयोगों की उपस्थिति में, इस प्रकार की भाषा-सजगता एक आश्वासन देता है कि हमारे रचनाकार हमारे बच्चों की सच्ची चिंता करते हैं। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि बाल-मनोविज्ञान, सामाजिक मूल्य तथा तार्किक अभिगम युक्त ये पुस्तकें कहीं-न-कहीं विज्ञान की छाया में लिखी गई हैं।

क्या रोमन लिपि अपनाने से ही हिंदी बचेगी

डॉ० परमानंद पांचाल

हाल ही में दिल्ली के एक हिंदी दैनिक में प्रकाशित चेतन भगत का लेख 'रोमन लिपि अपनाओ हिंदी बचाओ' पढ़कर आश्चर्य हुआ। जहाँ एक और सभी लोग नागरी लिपि की वैज्ञानिकता और उसकी श्रेष्ठता की दुहाई दे रहे हैं और इसे कंप्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त लिपि मान रहे हैं, वहीं कुछ लोग इसे छोड़कर रोमन जैसी अवैज्ञानिक लिपि अपनाने की सलाह दे रहे हैं। उनके विचार से यदि हिंदी ने रोमन लिपि नहीं अपनाई तो वह मर जाएगी। शायद भगत जी यह भूल जाते हैं कि हिंदी का अस्तित्व लगभग एक हजार वर्ष से है। उसने अनेक उतार चढ़ाव देखे, किंतु उसका अस्तित्व शेष रहा। अब से करीब 700 वर्ष पहले अमीर खुसरो (1265-1325) अपनी मसनवी 'नूर-सिपहर' में कहते हैं, 'हिंदवी बूद अस्त दर अय्यामे कुहन' अर्थात् हिंदवी (हिंदी) प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। अनेक घात-प्रतिघात के बावजूद भी हिंदी जीवित रही, क्योंकि वह जनभाषा है, उसे कोई मार नहीं सकता। इस देश में कई सौ वर्षों तक फ़ारसी राजभाषा रही, फिर भी हिंदी अपनी लिपि के साथ जीवित रही। सभी जानते हैं कि मुगलकाल में हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति फ़ारसी जानता था, जिसका साक्षी यह कहावत है—'हाथ कंगन को आरसी क्या, पढ़े लिखे को फ़ारसी क्या?'

कालांतर में उस फ़ारसी का क्या हुआ। वह तो नहीं रही। हिंदी फिर भी रहीं। हिंदी तो जनभाषा है। वह मरे भी तो कैसे? अँग्रेजी काल में, अँग्रेजी राजभाषा रही, किंतु वह हिंदी का स्थान नहीं ले सकी और हिंदी आज भी जीवित है। हिंदी परिवर्तनशील है। इतिहास के हर मोड़ पर हिंदी के जीवित रहने और लोकप्रिय बने रहने का कारण इसका लचीलापन तथा उसकी वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक लिपि 'देवनागरी' ही है, जिसे नकारने का दम भरनेवाले भूल जाते हैं कि देवनागरी लिपि विश्व की सर्वश्रेष्ठ और वैज्ञानिक लिपि है, जिसकी प्रशंसा आधुनिककाल के अनेक पश्चिमी विद्वानों ने भी की है। स्वरविज्ञान (फोनोग्राफी) के अनुसंधानकर्ता आइजेक पिटमैन का कहना है कि संसार में यदि कोई पूर्ण अक्षर है तो देवनागरी के हैं। प्रो० मोनियर विलियम्स ने कहा था 'देवनागरी अक्षरों से बढ़कर पूर्ण और उत्तम अक्षर दूसरे नहीं हैं।' जॉन क्राइस्ट तो यहाँ तक कहते हैं कि मानव मस्तिष्क से निकली हुई नागरी की वर्णमाला ही पूर्ण है। रोमन लिपि के सबसे बड़े समर्थक सर विलियम जॉन्स को भी कहना पड़ा था कि हमारी भाषा अँग्रेजी की वर्णमाला तथा वर्तनी अवैज्ञानिक तथा किसी रूप में हास्यास्पद भी हैं।

जार्ज बर्नाड शाँ जैसे अँग्रेजी के विद्वान रोमन लिपि से खिन्न थे। डॉ० आर्थर मैकडानल ने अपनी लिपि रोमन को हास्यास्पद बताते हुए लिखा था, 'हम यूरोपियन लोग इस वैज्ञानिकयुग में 2500 वर्ष बाद भी उस वर्णमाला को गले से लगाए हुए हैं, जिसे ग्रीकों ने पुराने सैमेटिक

लोगों से अपनाया था, जो हमारी भाषाओं के समस्त ध्वनि समुच्चय का प्रकाशन करने में असमर्थ है तथा तीन हजार साल पुराने अवैज्ञानिक स्वर-व्यंजन मिश्रण का बोझ अब भी पीठ पर लादे हुए है।'

सर्वश्री एफ० एस० ग्राउसु, व्यूलर हार्नले, हुक्स मैक्डानल थामस, जॉन शोर तथा आइजेक टेलर जैसे विद्वानों ने भी जी खोलकर नागरी लिपि की प्रशंसा की है। सभी जानते हैं कि रोमन में उच्चारण की दृष्टि से एकरूपता का होना कठिन है। स्वयं अँग्रेजी और फ्रेंच भाषाएँ इसका जीवंत उदाहरण हैं। रोमन के कारण अँग्रेजी शब्दों के उच्चारण में सर्वत्र अराजकता है। स्वयं अँग्रेजीभाषी लोग भी रोमन लिपि के कारण शब्दों का उच्चारण भिन्न-भिन्न रूप से करते हैं। इसी कारण विभिन्न क्षेत्रों और देशों में एक ही शब्द का उच्चारण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। बोलने से लिखने तक कहीं कोई समानता नहीं है।

पिछले दिनों 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में एक समाचार प्रकाशित हुआ था कि ब्रिटिश लायब्रेरी का रिसर्च इंस्टीट्यूशन लोगों से कुछ अँग्रेजी शब्दों के सही उच्चारण आमंत्रित कर रहा है, क्योंकि भिन्न-भिन्न लोग एक ही शब्द का उच्चारण भिन्न-भिन्न प्रकार से कर रहे हैं। जैसे टमाटर के लिए Tomoto और कुछ लोग Tomatao कहते हैं। इसी प्रकार Garage को Marriage के वजन पर बोला जाए या Mirage के वजन पर। Eat का भूतकाल Ate हो या att होगा। इस प्रकार रोमन के कारण एक अराजकता है। ये उदाहरण मैंने इसलिए दिए हैं कि हिंदी के लिए जिस रोमन लिपि की सिफ़ारिश विद्वान लेखक ने की है, उसकी हकीकत स्वयं रोमन के प्रयोक्ताओं के मुँह से ही सुन ली जाए।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में देवनागरी लिपि को भारत की राजभाषा हिंदी की आधिकारिक लिपि स्वीकार किया गया है। देवनागरी मात्र हिंदी की ही लिपि नहीं है, संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल संस्कृत, मराठी, डोगरी, बोडो, नेपाली, मैथिली, आदि भाषाओं की आधिकारिक लिपि भी है। संथाली, कोंकणी तथा सिंधी के अतिरिक्त अपभ्रंश और प्राकृत भी नागरी में ही लिखी जाती हैं। भारत के संविधान-निर्माता इतने नासमझ नहीं थे कि वे बिना सोचे-समझे नागरी लिपि को राजभाषा हिंदी की अधिकृत लिपि स्वीकार करते। पर्याप्त विचार-मंथन के बाद ही नागरी को अपनाने का निर्णय लिया गया था। यह देश का दुर्भाग्य ही माना जाएगा कि उनके उत्तराधिकारी देश के कर्णधारों ने उसे सच्चे मन से कार्यान्वित करने में विशेष रुचि नहीं दिखाई और शिक्षा-पद्धति में तदनुसार परिवर्तन नहीं किया गया। समय-समय पर गठित शिक्षा आयोग कहते रहे कि शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं को बनाया जाए और बच्चे की प्राथमिक शिक्षा उसकी मातृभाषा में ही दी जाए, किंतु गुलामी की मानसिकता में पले और दीक्षित हुए सरकारी तंत्र के नौकरशाहों ने अपनी दुलमुल कार्यप्रणाली के तहत इसे लागू ही नहीं होने दिया। स्वतंत्रता-आंदोलन से जुड़े देशभक्त लोग धीरे-धीरे विदा होते गए और वह भावना भी मंद पड़ती गई, जो राष्ट्र की एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिंदी और भारतीय भाषाओं को समीप लाने वाली लिपि, देवनागरी को आवश्यक मानते थे। कहना न होगा कि बाद की पीढ़ी के नेता स्वार्थवश क्षेत्रीय राजनीति और संकीर्ण मानसिकता के शिकार होते गए। फलतः एकता के स्थान पर अलगाव के स्वर सुनाई देने लगे और राष्ट्रीय मुद्दे हाशिये पर चले गए। समाज में अपना वर्चस्व बनाए रखने की मानसिकता ने ब्रिटिशराज की दोहरी शिक्षा प्रणाली

को ही जारी रखा। अँग्रेजी माध्यम के प्राइवेट स्कूलों की बाढ़-सी आ गई। शिक्षा एक उद्योग में तब्दील हो गई। अँग्रेजी माध्यम के निजी स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया। फलतः अँग्रेजी और रोमन लिपि ही सर्वत्र छाती चली गई।

श्री सेम पित्रोदा की अध्यक्षता में गठित 'ज्ञान आयोग' की सिफारिश ने तो रही-सही कमी को और पूरा कर दिया। अँग्रेजी को पहली कक्षा से अनिवार्य रूप से पढ़ाए जाने की सिफारिश ने बच्चों को मातृभाषा से बिल्कुल विमुख ही कर दिया। वे पहली और नर्सरी कक्षा से ही अँग्रेजी और रोमन लिपि सीखकर हिंदी और देवनागरी जैसी श्रेष्ठ वैज्ञानिक लिपि से दूर होने लगे। यही कारण है कि रोमन लिपि के अभ्यस्त छात्रों को नागरी लिपि पराई लगने लगी और रोमन सुविधाजनक। परिणामतः ए०एम०एस० पर उलटी-सीधी हिंदी रोमन लिपि में लिखी जाने लगी, क्योंकि उन्हें नागरी का अभ्यास ही नहीं रह गया था। इसके लिए नागरी लिपि की कमजोरी नहीं, हमारी शिक्षा नीति उत्तरदायी है। सबसे बड़ी बात यह है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पहली कक्षा से ही शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी बनाया जा रहा है, जो सर्वथा अनुचित और अस्वाभाविक है। अँग्रेजी भाषा की शिक्षा के हम विरोधी नहीं, हम शिक्षा माध्यम के रूप में किसी विदेशी भाषा के प्रयोग को उचित नहीं मानते। गांधी जी तो अँग्रेजी माध्यम के बिल्कुल विरुद्ध थे। जो भाषा शिक्षा का माध्यम नहीं होती, वह एक बोली और कविता, कहानी आदि की भाषा के रूप में ही सीमित रह जाती है। ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी, राजनय और व्यापार की भाषा नहीं बन पाती। अँग्रेजी माध्यम के कारण ही रोमन लिपि का प्रचलन बढ़ा है। इसे रोमन लिपि की श्रेष्ठता नहीं कहा जा सकता। क्या इसलिए हिंदी को भी रोमन लिपि अपना लेनी चाहिए। यह स्थिति नागरी लिपि में नहीं है। यहाँ उच्चारण की स्थिति निर्धारित और सुनिश्चित है। इसमें जैसा बोलोगे वैसा लिखोगे और जैसा लिखोगे वैसा पढ़ोगे। देवनागरी हिंदी के लिए एक वरदान है।

सभी जानते हैं कि उर्दू ने फ़ारसी लिपि को अपनाया है, किंतु जमीनी हक़ीक़त यह है कि आज का उर्दू-साहित्य नागरी में ही सर्वाधिक लोकप्रिय हो रहा है। फ़ारसी या रोमन में नहीं। पूर्वोत्तर भारत के अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और नागालैंड जैसे राज्यों की बोलियों की कोई लिपि नहीं है। वे अपनी बोलियों को जीवित रखने के लिए नागरी लिपि ही अपना रहे हैं, क्योंकि इस लिपि में ही उनका स्वाभाविक उच्चारण सुरक्षित रह सकता है, रोमन में नहीं।

विश्व के विद्वान अब यह मानने लगे हैं कि अपने ध्वन्यात्मक और वैज्ञानिक गुणों के आधार पर नागरी लिपि 'विश्व लिपि' बनने की क्षमता रखती है। लिप्यंतरण और प्रतिलेखन की दृष्टि से भी यह सबसे उपयुक्त लिपि है, रोमन और फ़ारसी आदि नहीं। कहने को रोमन लिपि में 26 अक्षर हैं, किंतु उनके 'कैपिटल' और 'स्मॉल' अक्षर दो प्रकार होने से 26 गुना 4.0 अर्थात् 104 प्रकार के अक्षर सीखने होते हैं। क्या यह कम पेचीदा काम है?

सभी जानते हैं, कि आज विश्व में हिंदी का प्रचलन बढ़ रहा है और इसे विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा माना जाता है। यह भी एक तथ्य है कि विश्व में हिंदी जहाँ गई, अपने साथ अपनी लिपि देवनागरी भी लेती गई। देखा जाए तो देवनागरी लिपि भारत की एक पहचान भी है। क्या हम अपनी इस पहचान को मिटा दें?

सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या रोमन में हिंदी की ध्वनियों को सुरक्षित रखा जा

सकता है? क्या हिंदी के शब्दों का रोमन लिपि में सही उच्चारण भी हो सकता है? यदि नहीं, तो फिर ऐसी लिपि को ओढ़ने से क्या लाभ है? डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या जैसे विद्वानों ने भी ऐसा सुझाव एक बार दिया अवश्य था, किंतु वह किसी के भी गले नहीं उतरा। नागरी लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही लिपिचिह्न है, इसमें जैसा लिखा जाता है वैसा ही पढ़ा जाता है। यह विशेषता रोमन और फ़ारसी आदि लिपियों में हरगिज नहीं है। नागरी एक विकासशील लिपि है। आवश्यकतानुसार इसमें नए लिपिचिह्न भी शामिल होते रहे हैं। इसकी वर्णमाला बड़ी वैज्ञानिक है। इसमें ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं का भेद सुस्पष्ट है। रोमन में लिखे शब्द Kamal को आप ही पढ़कर बताइए क्या कहेंगे? 'कमल', 'कामल', 'कामाल' या 'कमाल'। रोमन की वकालत करने वाले अँग्रेजी लेखक चेतन भगत के नाम Chetan का उच्चारण 'चेतन' हो या 'केतन', इसका निर्णय भी आसान नहीं होगा, क्योंकि Ch का उच्चारण 'च' ही नहीं 'क' भी होता है।

जहाँ तक विज्ञापन का प्रश्न है अब विज्ञापन की भाषा धीरे-धीरे हिंदी बन रही है। उसमें अँग्रेजी के शब्दों का बाहुल्य अवश्य बढ़ा है, किंतु वह नागरी में ही। अँग्रेजी शब्द को स्वीकार करता है, जैसे यह 'दिल माँगे मोर' यहाँ 'मोर' नागरी में ही लिखा जाता है। रोमन में नहीं। अँग्रेजी माध्यम के पढ़े-लिखे कुछ लोगों के कारण हिंदी की लिपि को नहीं बदला जा सकता। हिंदी के समाचारपत्र अँग्रेजी की अपेक्षा कई गुणा अधिक है। उनकी पाठक संख्या भी अँग्रेजी से बहुत ज्यादा है।

आज यूरोप और अमेरिका आदि के देशों में कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के विकास में जो शोधकार्य हो रहा है, उसने भी नागरी लिपि की वैज्ञानिकता के प्रति विशेषज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया है। स्वयं भारत में भी आज सूचना प्रौद्योगिकी के लिए प्रयुक्त होने वाले लगभग हर कंप्यूटर, टैब, मोबाइल सहित हर इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस में देवनागरी का प्रयोग संभव है। यूनिकोड ने देवनागरी को दुनिया के हर कोने में उपयोगी बना दिया है।

इस सारे विवाद के पीछे असली कारण यह है कि विदेशी कंपनियों का बढ़ता बाज़ार अपने स्वार्थ और माल की बिक्री के कारण हिंदी के बाज़ार पर नियंत्रण करना चाहता है। वह करोड़ों लोगों की भाषा हिंदी को तो बदल नहीं सकता, उसकी लिपि को बदलने के लिए अपना प्रभाव मीडिया के माध्यम से अवश्य डालना चाहता है। यहाँ रोमन लिपि का वातावरण बनाना चाहता है। हिंदी में अँग्रेजी के शब्दों की अनावश्यक भरमार से हिंदी का स्वरूप बदलने के प्रयास हो रहे हैं। इस बहाने यह प्रभाव बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है कि इन्हें रोमन में लिखना सरल होगा। इसलिए हिंदी को रोमन अपना लेनी चाहिए। प्रश्न यह उठता है कि यदि हिंदी को रोमन में लिखा जाए तो क्या वह हिंदी रह जाएगी? वह तो 'हिंग्लिश' जैसी एक नई भाषा बन जाएगी। इतिहास साक्षी है कि जब हिंदी (हिन्दवी) को फ़ारसी लिपि में लिखा जाने लगा तो वह 'उर्दू' बन गई। अब आप ही बताइए कि क्या हिंदी को अपनी श्रेष्ठ लिपि छोड़कर रोमन जैसी अपूर्ण लिपि अपना लेनी चाहिए।

महामंत्री नागरी लिपि परिषद्

232-ए, पाकेट-1, मयूर विहार, फेस-1, नई दिल्ली-110091

मो० 09818894001

भक्त चरणदास के साहित्य में योगविषयक चिंतन

कुलदीप सिंह, शोधार्थी

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय

रोहतक (हरियाणा)

भारतवर्ष योग ऋषियों की धरती रही है। आधुनिक समय में भी विश्व-भर में भारत की ख्याति योगियों की धरती के रूप में विख्यात है। विश्व इतिहास साक्ष्यों के अनुसार प्राच्य जगत में ज्ञान तथा पाश्चात्य जगत में विज्ञान फलता-फूलता आ रहा है। भारतवर्ष में जहाँ भौतिक सुख-सुविधाओं की उपेक्षा कर सूक्ष्म जगत का प्रादुर्भाव हुआ। भारतवर्ष में अध्यात्मवाद का बोलबाला रहा, जिसके परिणामस्वरूप तंत्र, क्रिया, उपासना आदि पद्धतियों का विकास हुआ। वैदिककाल से जीवन की श्रेष्ठ पद्धतियों पर अनुसंधान होता आ रहा है। इनमें से साधना की योग-पद्धति का भी प्रादुर्भाव व विकास हुआ। महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योगदर्शन का संकलन व व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया, जिसमें यम, नियम आदि पर विशेष बल दिया। योग की एक दूसरी धारा, जिसमें मच्छेंद्रनाथ जी ने हठयोग पर बल दिया, जिसमें अष्टांग योग के तीसरे-चौथे अंग (आसन, प्राणायाम) तथा बंद, मुद्रा एवं षट्क्रम क्रियाओं पर ज्यादा बल दिया गया है। योग के इसी स्वरूप को हठयोगियों ने स्वीकार किया। इन दोनों के मध्य की एक शाखा जो पहले से ही थी, जिसका सूत्रपात महर्षि वशिष्ठ से माना जाता है, जिसमें इन दोनों मार्गों की कठिनाइयों को सरल बनाते हुए इस मार्ग का संपादन किया। इसी मार्ग के अनुवर्ती महर्षि व्यासपुत्र शुकदेव मुनि ने अपने शिष्य रणजीत को इस पद्धति का विशिष्ट ज्ञान दिया। यही रणजीत आगे चलकर भक्त श्याम चरणदास के नाम से प्रख्यात हुआ। भक्त चरणदास जी ने साधनात्मक अष्टांग योग-दर्शन को व्यावहारिक व लोकसमाज में जनप्रिय बनाया।

चरणदास जी की रचनाओं से पता चलता है कि उन्होंने योगविषयक, लीलाविषयक, भक्ति-विषयक तथा निज उपासना आदि विषयों पर पद्य रूप में लेखनी चलाई है। इनकी रचनाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने पर पता चलता है कि इनके अंदर उच्चकोटि का संतत्व व श्रेष्ठ भक्तत्व दोनों एक साथ मिलते हैं, परंतु मूलतः ये कृष्ण भक्ति-भाव के कवि थे। अतः इनको भक्त कहना उचित है। इनकी योगविषयक रचनाओं से पता चलता है कि जीवन के प्रारंभिक समय में 12 साल तक स्वयं एकांत में रहते हुए योग-साधना की, जिसकी ख्याति उस समय में सर्वत्र रही।

योग का अर्थ

योग शब्द युज् धातु से 'धज्' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ जोड़ना है, परंतु इस शब्द की योगसाधना के क्षेत्र में कोई उपयोगिता नहीं। धातुपाठ में योग शब्द के लिए दो

धातुएँ होती हैं—युर्जियोग और युज् समाधौ। युजि धातु से निष्पन्न योग शब्द सामान्य संबंध का वाचक है। युज् समाधौ धातु से निष्पन्न योग शब्द ही यहाँ ग्राह्य है, जिसका अर्थ है—समाधि। व्यास भाष्य में 'योगः समाधिः' कहकर योग को समाधि का पर्याय स्वीकार किया गया है।¹

परिभाषा

श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणादि में योग की विभिन्न परिभाषाएँ प्राप्त होती हैं। पहले पतंजलि प्रोक्त परिभाषा का विश्लेषण करते हैं। पतंजलि कहते हैं—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।² अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग कहलाता है। यहाँ चित्तवृत्तियों और उनका निरोध ये तीन बातें विशेष रूप से ज्ञातव्य हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार महर्षि याज्ञवल्क्य ने योग को इस प्रकार से परिभाषित किया है—संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः। अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा के समानरूपत्वरूप संयोग का नाम योग है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने योग की व्याख्या इस प्रकार की है—योगः कर्मसु कौशलम्।³ फलासक्ति का त्याग करके कर्म करना ही कर्मकौशल है।

महर्षि पतंजलि की तरह चरणदासजी ने भी योग के आठ अंग माने हैं। ये इस प्रकार हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

योग अष्टांग बुझाइहैं, भिन्न-भिन्न सब अंग।

पहिलै संयम सीखिये, जाते होय न योग।⁴

श्याम चरणदास जी ने अष्टांग योग से पहले संयम साधना आवश्यक बतलाया। चरणदास जी ने यम-नियम आदि की शास्त्रीय व्याख्या करने से पहले जनभाषा में संयम की विस्तार से व्याख्या की है। उनके अनुसार, हल्का भोजन, इंद्रियों के रस से विरक्ति, लौकिक समाज से दूरी रखकर योगयुक्ति करना चाहिए। ऐसा सभी योग ऋषियों ने भी स्वीकार किया है कि साधना के लिए एकांत का होना परम अनिवार्य है, तभी साधक को अपने लक्ष्य की प्राप्ति संभव है।

चरणदास की इस उक्ति से यह बात सिद्ध होती है—

यह सब निरयही, करै योग युक्ति के साथ।

पहिले ऐसा होय करि, पीछे साधन साधा।⁵

वशिष्ठ साहित्य के लेखक महर्षि वशिष्ठ की तरह श्याम चरणदास जी ने यम व नियम की दस-दस संख्या मानी है। यम व नियम के इन भेदों को मुख्य मोक्ष के साधन के रूप में माना जाता है। इनके पश्चात्, पाँच प्राण व पाँच ही सहयोगी प्राण। कुल मिलाकर 10 वायु का वर्णन भी किया है तथा इनके स्थानों के बारे में भी बताया है, जो कि हठयोग साधना पद्धतियों की स्वीकारोक्ति को दर्शाता है।

चरणदास ने प्राणायाम से पहले षट्चक्रों का ज्ञान, इनका स्थान, इनके प्रमुख देवता, रंग, कमल, पंखुरी का वर्णन किया है तथा दस प्रकार के अनहद नादों का व इनसे प्राप्त सिद्धियों का वर्णन भी किया गया है। साधक को जब अनहद नाद सुनाई देना शुरू हो जाता है, तब इसमें फल-प्राप्ति होती है। वह दूसरों के मन की बात को जान लेता है। दूर पड़ी हुई किसी भी वस्तु आदि को देख पाने में समर्थ हो जाता है। श्याम चरणदास जी ने मन के वश में होने पर ही

आनंदमय स्रोत पाया है। इन सबको साधने के लिए चरणदास जी ने अन्य संत व भक्तों की वाणियों के अनुसार मन की साधना को सर्वश्रेष्ठ माना है।

पाँच थके आनंद बढ़ै, अरु मनुआ वश होया।
शुकदेव कही चरणदास मुनि, आप अपन जो खोया।⁶

चरणदास जी ने 72864 नाड़ियों में से 10 मुख्य नाड़ियों का वर्णन तथा इनमें भी सुषुम्ना नाड़ी अनहद की माँ को सबसे प्रमुख नाड़ी माना है तथा आठ प्रकार के कुंभकों को अनहद का भाई माना है। पाँच मुद्राओं में भी खेचरी मुद्रा को अनहद की बहन कहा है। श्याम चरणदास ने माना है कि योग को साधने से पहले आसन को साधना अति आवश्यक है। महर्षि पतंजलि की तरह आसनों की महत्ता को इन्होंने स्वीकार किया है—

योग पहिले आसन नहीं साझै। आसन बिना योग बरबादे।

चरणदास निश्चय करै। बिन आसन नहीं योग।⁷

श्याम चरणदास जी ने भी आसनों की संख्या 84 लाख मानी, इनमें भी प्रमुख 84 माने तथा साधना की दृष्टि से केवल 2 आसनों को ही प्रधान माना है। इन्होंने भी प्राणायाम में पूरक रेचक, कुंभकों को ही स्वीकार किया। इनको लेने की विधि के बारे में बतलाया कि पूरक 16 मात्रा कुंभक 64 मात्रा तथा रेचन 32 मात्रा कर धीरे-धीरे और बढ़ाते रहना चाहिए। चरणदास जी प्राणायाम को योग युक्ति की जड़ जानकर इसको बहुत महत्त्व देते हैं और चरणदास जी मानते हैं कि इसके करने से असीम बल की प्राप्ति होती है। प्राणायाम के अभ्यास से दीर्घायु बन, सात्त्विकता जीवन में बढ़ाकर जीवन के पापों का नाश होता है।

पाँचवाँ अंग प्रत्याहार तथा छठा अंग धारणा, सातवाँ अंग ध्यान के चार प्रकार श्याम चरणदास के अष्टांग योग में वर्णित है—‘पदस्थ पिंड रूपस्थ है, चौथा, रूपातीत।’⁸

अष्टांग योग के अंतिम अंग-समाधि के तीन प्रकारों को श्याम चरणदास जी ने स्वीकार किया है—भक्तियोग अरु ज्ञान की, त्रैविधि कहूँ समाधी।⁹

चरणदास जी के अष्टांग योग में आठों अंगों में अंतिम अंग समाधि को अष्टांग योग का फल बताया है, जिसको गुरु के सानिध्य में रहकर ही इन सबसे कठिन अंग को सहज ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। ध्याता जब ध्यान करते-करते ध्येय हो जाता है तथा जीवात्मा तथा परमात्मा में द्वैतभाव समाप्त हो जाता है और समरसता की दशा प्राप्त हो जाती है, तब वह समाधिस्थ हो जाता है। हठयोग के छः कर्म करने से ही यह शरीर शुद्ध होकर साधक का चित्त भी शुद्ध होता है। उन्होंने चार प्रकार के बंधों तथा अष्टसिद्धियों का भी लोकभाषा में सुंदर वर्णन किया है।

अष्टसिद्धियाँ—योगसाधना को दूसरे शब्दों में हम प्राणसाधना भी कह सकते हैं। प्राण की अधिकता ही उत्तम स्वास्थ्य व प्रबुद्ध व्यक्तित्व की पहचान है। योगसाधना में कुंडलिनी जागरण के माध्यम से षट्चक्रों का भेदन कर ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाया जाता है। मुद्रा, बंधों आदि की सहायता से भी इस क्रिया को सहयोग दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप शरीरगत व चेतनागत परिवर्तन होते हैं। चेतन दृष्टि से जो साधक में असीम शक्तियों का संचार होता है, जिन्हें हम सिद्धि कहते हैं। विभिन्न योग शास्त्रों में आठ सिद्धियों का वर्णन आता है। चरणदास जी ने भी इन्हीं आठ सिद्धियों का वर्णन किया है—

अणिमा सिद्धि—इस सिद्धि की प्राप्ति पर साधक अपनी इच्छानुसार अपने लघुतम आकार में आ सकता है। अणु के समान छोटा हो जाना अणिमा सिद्धि कहलायी।

महिमा सिद्धि—इस सिद्धि के बल पर साधक अपना आकार बड़े से बड़ा कर सकता है।

गरिमा सिद्धि—इस सिद्धि के बल पर साधक अपना भार अधिक से अधिक बढ़ा सकता है।

प्राप्ति—किसी भी व्यक्ति, वस्तु आदि की इच्छा मात्र करने से इच्छित वस्तु प्राप्त होती जाती है।

पराकाम्य—इस सिद्धि की प्राप्ति पर साधक अत्यंत शक्तिशाली हो जाता है और वह जो चाहे वह कर सकता है।

ईशिता—चरणदास जी ने इस सिद्धि को सिद्धियों की रानी कहा है। इसकी प्राप्ति पर साधक अपनी आज्ञा से सबको चला सकता है।

वशीकरण—चरणदास जी कहते हैं कि इस सिद्धि के मिलने पर साधक जिस किसी को भी वश में कर सकता है।

इस प्रकार आठ सिद्धियों का वर्णन करते हुए चरणदास जी ने कहा है कि—

चरणदास सिद्धै कही, समझ लेही मनमाहिं।

ओ है जनुआँ राम का, इनमें उरझै नहीं।¹¹

चरणदास जी ने आगे कहा है कि योग करने से आठों सिद्धियाँ मिल जाती हैं। कोई तो इन्हें भोगता है, परंतु कोई इनमें चित्त न लगाकर उस परम लक्ष्य परमात्मा का दीदार करना ही चाहता है। इस स्थिति में पहुँचने पर योगी कुछ भी कर सकता है। परंतु भोग को छोड़कर योग का मार्ग ही अपनाना चाहिए। इस प्रकार श्याम चरणदास जी का चिंतन ब्रह्मोन्मुख है।

अतः श्याम चरणदास जी ने संपूर्ण अष्टांग योगविधि का वर्णन करते हुए माना है कि यह मार्ग सब जीवात्माओं का परमात्मा में विलीन हो जाने का मार्ग है। इन साधनों को करके मनुष्य सांसारिक कष्टों तथा जीवन-मरण के आगमन के मार्ग से छुटकारा पाकर एकमात्र ब्रह्म में विलीन हो जाता है।

श्याम चरणदास जी की यह कृति गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में रचित इस ग्रंथ में शास्त्रीय और स्वानुभूत दोनों प्रकार के ज्ञान की चर्चा है तथा हर विषय का निरूपण गहराई के साथ किया गया है। इस प्रकार योगविद्या का एक आकार ग्रंथ है। लेखक का योग-संबंधी ज्ञान इतना गहन है कि उसकी पकड़ से इस विषय की, कोई बात छूट नहीं पाई है। चरणदास जी का योगशास्त्र-संबंधी ज्ञान मात्र पुस्तकीय प्रमाण पर आधारित नहीं था, वरन् उन्होंने अपने अनुभवजनित ज्ञान के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की थी, इसलिए इसमें विवेचित विषयों की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता असंदिग्ध है। स्वयं कवि ने इस तथ्य की पुष्टि इन शब्दों से की है—

पोथी माहि देखकर, करै जो कोई योग

तन छीजे सिधि ना भवे, देहि आवे रोग

देखि-देखि गुरु सों करे, लै आज्ञा रहु संग

सिधि होय साधन सबै, कछू ना आवै भंग।¹⁰

इस प्रकार श्याम चरणदास का योगविषयक चिंतन अत्यंत व्यावहारिक व जनप्रिय बनकर समाज में स्थापित हुआ। इनके पश्चात् इनके अनुयायियों द्वारा चलाए गए चरणदासी संप्रदाय में कृष्ण के युगलोपासना एवं माधुर्य रूप की उपासना की जाती है, परंतु इनके कुछ शिष्यों में अष्टांग योगसाधना का भी प्रचलन है। आज भी इनके द्वारा बताए गए अष्टांग योगसाधना के मार्ग पर चलने वाले साधक अब भी मिलते हैं। इन्हीं की विशेष अष्टांग योगसाधना की परंपरा के अनुवर्ती आचार्य योगी ग्यान जी इटली में एक बड़ा योगसाधना केंद्र चलाते हैं। भारतवर्ष में भी इसी परंपरा से जुड़े इनके अनुयायी योगसाधक आज भी साधनारत हैं। संयोग से इस पत्र के लेखक भी इनके परम शिष्य हैं।

संदर्भ

1. डॉ० सुरेशचंद्र शास्त्री कृत व्यासभाष्य पातंजलयोगदर्शनम्, पृ० 30
2. महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र, पृ० 12
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/50
4. चरणदास कृत भक्तिसागर, पृ० 80
5. चरणदास कृत भक्तिसागर, पृ० 82
6. चरणदास कृत भक्तिसागर, पृ० 87
7. चरणदास कृत भक्तिसागर, पृ० 96
8. चरणदास कृत भक्तिसागर, पृ० 110
9. चरणदास कृत भक्तिसागर, पृ० 114
10. चरणदास कृत भक्तिसागर, पृ० 104
11. चरणदास कृत भक्तिसागर, पृ० 129

पुत्र श्री भीमसिंह खोखर
ग्राम शामरी (शीसान)
तहसील गोहाना (सोनीपत) हरियाणा

समकालीन कविता का बहुरंगी बिंब

प्रियंका सिंह

शोध छात्रा

पश्चिम बंग राज्य विश्वविद्यालय, जमशेदपुर

पश्चिम में समकालीनता का अर्थ समसामयिकता से लिया जाता है, लेकिन भारतीय परिदृश्य में समकालीन कविता केवल कालबोधक रूप में ग्राह्य नहीं है, अपितु मूल्य-बोधक भी है, जो अपनी रचनाशीलता में वर्तमान को इतिहास-निरपेक्ष ढंग से न देखकर इतिहास-बोध से जोड़कर अर्थात् भविष्योन्मुख दृष्टि से देखता है। विद्वानों में मतैक्य के बावजूद मूलतः 1970 से अब तक की कविता को समकालीन कविता की परिसीमा में समेटा जाता है। मोटे तौर पर कविता भी अभिजात्य संस्कृति और जनवादी परंपरा को वहन करती नज़र आती है, लेकिन जनवादी परंपरा अपने लोकपरक दृष्टिकोण के कारण अधिक प्रभावशाली एवं कारगर सिद्ध हुई है।

समकालीन कवि विशेष राजनीतिक परिस्थिति की उपज है। समकालीन राजनीति में व्याप्त आदर्शहीनता, राजनीतिज्ञों का जनविरोधी चरित्र, लोकतंत्र में अभिजात्य के लिए विधेयक का पारित होना, राजनीति में असमाजिक तत्त्वों को प्रश्रय दिया जाना आदि परिस्थितियों से आहत समकालीन कवि व्यवस्था-विरोधी दृष्टिकोण अपनाते हैं। कुमार विकल जैसे कवि 'वापसी' शीर्षक कविता में जहाँ भारत की संसदीय प्रणाली को 'राजतंत्र की वनतंत्री व्यवस्था' करार देते हैं, वहीं चंद्रकांत देवताले लिखते हैं—

'बुखार बढ़ता जा रहा है

डॉक्टर कहाँ है...संसद के सामने

सिर्फ़ सैकड़ों मुख भाषण उगल रहे हैं

घोषणा-पत्र गधे के मुख में चबता जा रहा है।' (प्रजातंत्र का बुखार)

इस तरह के वर्णनों की बहुआयतता को देख नंदकिशोर नवल 'कविता की मुक्ति' में लिखते हैं—'समकालीन कविता का प्रमुख नारा है—व्यवस्था का विरोध। यह विरोध सही ढंग से किया जा रहा हो या ग़लत ढंग से, लेकिन इसमें कोई शक की बात नहीं कि यह विरोध राजनीतिक है।'¹

समकालीन समाज की बागडोर असामाजिक एवं भ्रष्ट लोगों के हाथ में है। जिस वजह से गुंडे, मवाली खुलेआम घूम रहे हैं और जनता घरों में बंद है, दहशत-भरे माहौल में जीवन-यापन कर रही है, क्योंकि अरुण कमल के शब्दों में—'जिनके मुँह में कौर मांस का उनको मगही पाना।'

असुरक्षित वर्तमान को देख जहाँ समकालीन कवि आदिम सभ्यता की ओर रुख करते हैं, वहीं जनता में जागरूकता, चेतना देखने के कामी हैं। नरेंद्रमोहन इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं—‘आज की कविता समकालीन संकट से जुड़ी हुई कविता है, जीने की शर्त और सार्थकता के प्रश्नों ने मनुष्य को जिन चुनौतियों और अस्तित्व की खोलती हुई बेलौस स्थितियों से भिड़ा दिया है, उन्हीं से यह संकट पैदा हुआ जो आज के प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति का संकट है। इस संकट की अभिव्यक्ति कविता में कई रूपों और स्तरों पर होती रही है। आज भी इसे कविता के धरातल पर पहचानने की कोशिश जारी है।’¹²

धार्मिक कठमुल्लापन और राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु आज भी समाज में जाति और मजहब के नाम पर दंगे करवाए जा रहे हैं। राजेश जोशी की ‘सलीम और मैं उनसठ का साथ’, ‘मुनीर मियाँ और मौसम’ में जहाँ सांप्रदायिकता में खोती जा रही मानवता का चित्रण करते हैं, वहीं गोरख पांडेय लिखते हैं—

इस बार दंगा बहुत बड़ा था
खूब हुई थी खून की बारिश
अगले साल अच्छी होगी
फ़सल
मतदान की।’ (दंगा)

अर्थात् लाशों और हत्याओं को वोटों में बदलने की साजिश है।

रामकली सराफ का मानना है—‘समकालीन कविताएँ मानवीय भावबोधों की गहरी संवेदनात्मक सक्रियता लिए हुए हैं।’¹³

महानगरीय जीवन की विषमताओं के बीच मिली सुविधाओं, व्यवस्था से जुड़े अपने हित-साधन में लिप्त, अस्तित्ववाद के व्यक्ति केंद्रित दर्शन से प्रभावित, रचनात्मक संघर्षशीलता से विहीन सुविधाजीवी वर्ग और मध्यवर्ग के मौकापरस्ती वाले चरित्र को समकालीन कवि अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं। गिरधर राठी की ‘उनींदें की लोरी’, भागवत रावत की ‘आग पेटी’ इसी मानसिकता का चित्र उकेरती है। वहीं दूसरी तरफ़ विनोदकुमार शुक्ल मध्यवर्ग द्वारा क्रांति का सक्रिय संकल्प न ले पाने पर खेद प्रकट करते हैं—

‘आखिर किस नाक-नकशे का आदमी हूँ
जो अपना हिस्सा छीन नहीं पाता।’

परमानंद श्रीवास्तव इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हैं—‘इधर की कविता में विद्रोह की रूमानियत से मुक्ति है, पर नए ढंग का चुपचुप विरोध जब तब अर्थमय है, ताकतवर है और अपने कठिन समय की संवेदना से वंचित नहीं है।’¹⁴

भारत की अर्थव्यवस्था अब पूरी तरह से पूँजीवादी मॉडल को अपना चुकी है, फलस्वरूप एक वर्ग निरंतर कुबेरपति बनते जा रहा है, वहीं दूसरा दाने-दाने के लिए मोहताज। पूँजी के इस असमान वितरण ने बच्चों से उनका बचपना छीन उन्हें हाथ में कुदाल, फावड़ा से खेलने को मजबूर कर दिया है। राजेश जोशी लिखते हैं—

‘बच्चे काम पर जा रहे हैं

हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह लिखा जाना चाहिए इसे एक सवाल की

तरह काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?’ (बच्चे काम पर जा रहे हैं।)

बाल-शोषण को आधार बनाकर बहुत सारी रचनाएँ हुई हैं, जिनमें इब्बार रब्बी की ‘दूध पीता हुआ बच्चा’, ‘सोमदत्त की भूख प्यास किलकारी’, अरुण कमल की ‘होटल’ आदि कुछ प्रमुख हैं। अरुण कमल ‘कविता का समय’ में लिखते हैं—

‘आज का कोई भी कवि मानव-संस्कृति और समस्त जीवन को नष्ट करने वाली पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध कर ही महत्त्वपूर्ण बन सकता है। अभी कवि के लिए सबसे जरूरी है दिन-ब-दिन तेज़ हो रहे भारतीय जनता के मुक्ति-संघर्ष में हिस्सा लेना और कविता को उन लोगों तक पहुँचाना, जिनका भाव वे व्यक्त कर रहे हैं।’¹⁵

इस काल में आदिवासियों की पीड़ा, उनकी अभावग्रस्तता को भी अभिव्यक्ति मिली है। अशोक वाजपेयी ‘कविता का जनपद’ में लिखते हैं—‘कविता मानवीय मूल्यों का पक्ष है और किसी भी तरह के अमानवीकरण के खिलाफ़ तीव्र प्रतिक्रिया, चाहे वह सामाजिक और व्यावसायिक अनैतिकता हो, चाहे व्यवस्था की हृदयहीन जकड़। यह चिंता एक ख़ास तरह से आज की कविता की जिम्मेदारियों और संभावनाओं को बढ़ाती भी है।’¹⁶

नारी को लेकर समकालीन कवियों में मूलतः दो दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं। अशोक वाजपेयी जैसे अभिजात्य संस्कृति के कवि आज भी नारी को केवल सेकेंड सेक्स के रूप में ही देखते हैं, वहीं रघुवीर सहाय जैसे कवि ‘किसी मूर्ख की हो परिणीता’ के माध्यम से उनके सामाजिक पिछड़ेपन को अभिव्यक्ति देते हैं। आलोक धन्वा की ‘भागी हुई लड़कियाँ’, ‘छतों पर लड़कियाँ’, ‘ब्रजों की बेटियाँ’ में जहाँ उनकी व्यथा-कुंठा को प्रकट किया गया है, वहीं मंगलेश डबराल ‘अगले दिन’ कविता में उसके दैहिक और मानसिक शोषण को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं—

अगले दिन अपनी देह लगेगी बेकार
आत्मा हो जाएगी असमर्थ
कितने कीचड़ कितने खून से भरी
रात होगी उसके भीतर अगले दिन।

आजकल शादी भी बलात्कार करने का लाइसेंस बनता जा रहा है। स्त्रियों के विविध रूपों के वर्णन की बहुतायत को देखते हुए रोहिताश्व लिखते हैं—‘नारी-जीवन के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को समकालीन कविता में पूर्ववर्ती कविता से परिमाणात्मक परिवर्तन के रूप में ही नहीं बल्कि गुणात्मक परिवर्तन में परिलक्षित किया जा सकता है।’¹⁷

आज पूँजीकेंद्रित बाजार में रिश्ते-नाते, घर-परिवार सब बिकाऊ बन चुके हैं। अशोक वाजपेयी के अनुसार—‘जहाँ हर मकान दुकान में बदलने की होड़ में है। (हम अपने बच्चों को छोड़ जाते हैं पूर्वजों के पास काम पर जाने से पहले।)

आज उपभोक्तावाद हमारी आत्मा तक में धँस गया है जहाँ खरीदने की ही नहीं, बिकने की भी हड़बड़ी है। इस बाज़ारू संस्कृति में प्राकृतिक संसाधनों का भी दुरुपयोग किया जा रहा है। लीलाधर जगूड़ी लिखते हैं—

‘गंगा घुस जाती है पोलीथीन पाउच में
पहुँच जाती है फाइव स्टार।’ (अनुभव के आकाश में चांद)

मनीषा झा इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करती हैं—

‘समकालीन कवि संबंधों में अपनी आस्था प्रकट करता है। वह अपनी कविता में मानव का मानव तथा प्रकृति से संबंध निरूपित कर हिंसा एवं विखंडता के प्रतिपक्ष में संवेदना का भरा-पूरा संसार स्थापित करता है।’

शंभूनाथ का मानना है—‘समकालीन कविता में एक भोलापन मिलेगा, कोमलता और एक उदार विस्तार। ये सब उपभोक्ता समाज की धूर्तता, कठोरता और संकीर्णता के ही प्रति ध्रुव है।’⁹

समकालीन कविता में युगीन परिस्थितियों, संदर्भों, समस्याओं, जटिलताओं का यथार्थ अंकन हुआ है। एक तरफ़ समकालीन कवि जहाँ परिवेशगत भय, निराशा, बेरोजगारी, विषमता, धार्मिक कठमुल्लापन, टेक्नोलॉजी से त्रस्त मानव, राजनीतिक विडंबनाओं का शिकार मानव आदि का यथातथ्य निरूपण करते हैं, वहीं दूसरी तरफ़ इन विषम परिस्थितियों में भी मनुष्य को जूझने, लड़ने की शक्ति प्रदान करते हैं। रागात्मक संबंधों की महत्ता, ग्रामीण संस्कृति, प्रकृति को अपने काव्य में रूपायित कर आज के मनुष्य को बाज़ार के चंगुल से छुड़ाने के लिए संघर्षरत है।

संदर्भ

1. समकालीन कविता का बीजगणित, कुमार कृष्ण, पृ० 23
2. समकालीन कविता के बारे में, नरेंद्रमोहन, पृ० 74
3. समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ, रामकली सरॉफ, पृ० 279
4. कविता का अर्थात्, परमानंद श्रीवास्तव, पृ० 74
5. कविता का समय, अरुण कमल, पृ० 191
6. कविता का जनपद, अशोक वाजपेयी, पृ० 14
7. समकालीन कविता और सौंदर्य-बोध, रोहिताश्व, पृ० 102
8. प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता, मनीष झा, पृ० 43
9. संस्कृति की उत्तरकथा, शंभूनाथ, पृ० 95

द्वारा श्री अशोककुमार सिंह
ए०बी०एन० हाईस्कूल के पास
छोटा गोविंदपुर
जमशेदपुर 831015 (झारखंड)

काँगड़ा के लोकगीतों का सांस्कृतिक विश्लेषण

मंजु पुरी

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग

राजकीय महाविद्यालय, देहरी, काँगड़ा (हि०प्र०)

काँगड़ा प्राचीन सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक जनपद होने के कारण लोक-साहित्य से समृद्ध क्षेत्र है। इसमें आर्य-अनार्य सांस्कृतिक रूपों का समन्वयात्मक रूप परंपरित रहा है। स्थानीय प्राकृतिक सुषमा ने यहाँ के लोकमानस को अनेक रूपों में मुखरित एवं प्रभावित किया है। घाटी के सौंदर्य का आधार इसके उत्तर में स्थित धौलाधार तथा सुदूर दक्षिण में बिखरी शिवालिक पहाड़ियाँ हैं।

यह पर्वतमाल काँगड़ी लोकजीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती उसमें उत्साह, प्रेम, उदारता, आतिथ्य सेवा-भावना आदि का संचार करती है।¹

डॉ० रंधावा ने काँगड़ी जीवन के बारे में लिखा है कि यहाँ के लोग प्रकृति के निकट रहते हैं। अतः इनके जीवन में एक सूरत मिलती है। वहीं डॉ० गौतम व्यथित ने काँगड़ा की सुंदरता का वर्ण करते हुए लिखा है—‘काँगड़ा घाटी के मस्तक पर सजी-सँवरी धौलाधार के सौंदर्य से प्रभावित होकर कर्नल हरकोर्ट आदि विदेशी प्रशंसकों ने इतना तक कह दिया है कि विश्वभर में इसके समानांतर प्राकृतिक शोभा वाला क्षेत्र अन्यत्र नहीं देखा।²

लोकगीतों की आत्मा लोकहृदय में बसती है। उनका क्षेत्र गाँव है तथा गायक अनपढ़ साधारण स्वाभाविक जीवन के अभ्यस्त ग्रामीण पुरुष-स्त्रियाँ जो बिना किसी प्रलोभन, प्रशंसा, लिप्सा के जीवन के खाली क्षणों को सरसता से भरते रहते हैं। ये गीत इनके संपूर्ण जीवन के कोश हैं।

लोकसाहित्य लोक एवं साहित्य दो शब्दों से बना है। साहित्य को लोक का विशेषण प्राप्त होने से लोक साहित्य की एक पारिभाषिक शब्दों के रूप में व्युत्पत्ति हुई है। ‘लोक’ शब्द समस्त संसार समाज एवं जन साधारण को अपने में आत्मसात् किए हुए है। लोक साहित्य में क्षेत्र विशेष के विविध समुदायों, संस्कृतियों एवं लोकजीवन का यथार्थ रूप व्याप्त रहता है। यह लोक मानस के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, धर्म और संस्कृति की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति करता है।

लोक साहित्य में लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। लोकगीतों में प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के चित्र अंकित रहते हैं। लोकगीतों के उद्गम की परंपरा वैदिक साहित्य में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। हिमाचल के गीत अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक सरस, मधुर एवं हृदयस्पर्शी हैं। हमारे संस्कारों से जुड़े लोकगीत हमारे सुख-दुख के सच्चे भागीदार हैं। हमारे यहाँ

प्रचलित संस्कारों में जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह एवं मृत्यु संस्कारों को प्रमुखता प्राप्त है। प्रत्येक अवसर के लोकगीत अपनी अलग-अलग छटा बिखेरते हैं। प्रेम पखरोलवी का मानना है कि 'इन गीतों में जनसाधारण के वास्तविक जीवन की झाँकी मिलती है। इन गीतों की परंपरा बहुत अनोखी है। ये गीत बेटी को अपनी माँ से, बहू को सास से प्राप्त होते चले आ रहे हैं। तभी तो ये जीवित हैं और उतने ही प्रभावोत्पादक भी हैं।' 3

जन्मगीत : दोहदण

गीतों के इस रूप में गर्भवती स्त्री में गर्भधान से नौ महीने तक की भाँति-भाँति की वस्तुएँ खाने की इच्छाएँ देशकाल और वातावरण के अनुसार व्यंजित मिलती हैं। काँगड़ी सोहर में गर्भवती की इच्छाएँ हर महीने स्थानीय जलवायु और खाद्यों के अनुरूप कैसे परिवर्तित होती रहती है, जैसे—

ऐह जिसा पहलिया सूहडिया, ओठ सुके मुख पीलो ऐ
ऐह जिसा दूजिया सूहडिया, चरुहए दा रिहदा भतनी भौए।

बधाइयाँ

बच्चे को कृष्ण का स्वरूप मानकर माता-पिता को बधाई देने के संदर्भ में काँगड़ी सोहर निम्नलिखित है—

घर वसुदेवे दे जन्मेया पुत्र, जसोदा पलंग चढी
नंद करके गौआं दे दान, सोपने दे सिंग मढी।

चूड़ाकर्म

काँगड़ी चूड़ाकर्म गीत में माँ नाई को धर्म भाई कहती है और बाल के कोमल बालों को सोने या चाँदी की कैंची से धीरे धीरे काटने का आग्रह करती है—

नाई ऐ नाई, तू मेरा भाई, धर्म को भाई
मेरा लाड़ा पीड़ा न लाई, पीड़ा न लाई।

उपनयन गीत

बौआ दीआ परौली में भिच्छेण मंगेदा, दीआँ नी माये भिच्छेया
मैं नी जो मंगणा सिखियां, दे माथे भिच्छेया।

विवाह गीत

सुहाग, कन्या पक्ष के यहाँ गाए जाने वाले हर्षोल्लासपूर्ण गीत हैं। इनमें कन्या का पिता से सुयोग्य व सुंदर वर ढूँढने का आग्रह, सुविधा भरे गाँव में ब्याहने की इच्छा तथा उपयुक्त वर पाने की संवेदना व्यक्त की गई है—

बौआ अंगे बेटी अरज करैं दी
जोड़ी दा वर स्हामो टोल, मेरे बाबाजी।

बेमेल विवाह

बेमेल विवाह के प्रति घृणा का भाव प्रस्तुत काँगड़ी लोकगीत में देखिए—

धीया सरेखा न मिलेया जुआई
असां क्या पाप कमाया।

विदाई गीत

विदाई गीतों में जहाँ बेटा माता-पिता, सगे-संबंधियों के नाम ले-लेकर विलाप करती सभी को द्रवित करत हैं। इस भाव को काँगड़ी विदा गीत में बड़ी सरसता से अभिव्यक्त किया गया है—

बेटी बावे बेहडे गई से, सुहाग मंगण
बावे ऐह वर दित्ता, सो वर दित्ता।

मृत्युगीत

मृत्यु संस्कार जीवन का अंतिम संस्कार है। यह शोक का दृश्य उपस्थित करता है। काँगड़ी मृत्यु गीतों में व्यंजित लोक भावनाओं का स्वरूप निम्नलिखित है—

मौत न मानणी आई गई, जिन्दड़ी तलमल होई गई
छातीया जंदरा चढी गिआ, करना नीं दिंदा गल
सुखो तै आइयां चिठियां, हरि बोलो, वावला हरि बोलो।

देवी-देवता पूजन संबंधी गीत

वैदिक, पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना के अतिरिक्त लोक देवी-देवताओं को लोकजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयुक्त मान्यत मिली है। भगवती माता की ज्योति सदैव जलती रहे, इसकी शक्ति हो अकबर जैसे महान सम्राट ने नत मस्तक होकर स्वीकार किया। माँ भगवती के दर्शन करने को उत्कंठित भक्त की भावनाएँ सर्वत्र एक समान प्रकट हुई हैं। एक काँगड़ी भेंट देखिए—

रंग बरसे, रंग बरसे गुलानारी, भवन पर रंग बरसे
जगदी रहे, जगदी रहे जगदंबा की जोत तेरी जगदी रहे।

ऋतु गीत

भारत में ब्रज की होली की अपनी परंपरा है, जिसकी छाप समस्त भारतीय हिंदी जनपदों में परंपरित होली गीतों में सहज द्रष्टव्य है। काँगड़ी होली गीत का रूप देखिए—

रंग दे चुनरिया, रंग रे लाल
मेरे पिया से रंगाई मंगले, रंग दे चुनरिया लाल

श्रमगीत

लोक में सामूहिक रूप से काम निपटाने की परंपरा है। धान रोपती, फसल काटती तथा घास काटती कृषकाएँ शारीरिक थकान को दूर करने हेतु गीत गाती हैं। सामाजिक विसंगतियों को रूपायित करता एक काँगड़ी गीत निम्नलिखित है—

अमाँ तां बापू मेरे द्रमाँ दे लोभ, छोटडे बरे जो ब्याही
कदी तां होणा मेरे बरे लम्मडे, कदी तां होणी मेरे जोवन जोड़ी।

अतः कहा जाता सकता है कि पहाड़ी लोक स्वर लहरों में काँगड़ी गीतों की स्वर

माधुरी जादुई प्रभाव रखती है। विभिन्न गीतों में निहित भावना को जाग्रत करने की क्षमता इनकी विषय-वस्तु में न होकर स्वाभाविक संगीत में है, क्योंकि इन गीतों का अंतरंग जितना जीवंत तथा प्रभावशाली है, बहिरंग उतना ही उसके अनुरूप समृद्ध एवं स्वस्थ है।

संदर्भ

1. डॉ० गौतम शर्मा 'व्यथित', काँगड़ा के लोकगीत साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन, पृ० 18
2. डॉ० गौतम शर्मा 'व्यथित', हिमाचल की ठोलर लोकगाथाएँ, पृ० 11
3. प्रेम पखरोलवी, हिमाचल का जनजीवन एवं आस्थाएँ, पृ० 38
4. डॉ० गौतम शर्मा 'व्यथित', काँगड़ा के लोकगीत साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन, पृ० 109

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानियों में

सांप्रदायिक सद्भावना

डॉ० वी० जयलक्ष्मी

असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग

मद्रास क्रिस्चियन कॉलेज

ताम्बरम, चेन्नई 600059

साहित्य-सृजेता डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न रचनाकार हैं, जिन्होंने मूलतः कवि एवं ग़ज़लकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की है। इसीके साथ नाटक, निबंध, एकांकी, नुक्कड़ नाटक और उपन्यास के साथ-साथ कहानियों के क्षेत्र में भी डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल ने अपनी लेखन-प्रतिभा और शब्द-शिल्प के कौशल का अच्छा परिचय दिया है। उनके व्यक्तित्व का विशिष्ट पक्ष कोशकार एवं संपादक का भी रहा है, जिसके कारण वे हिंदी-जगत् में विशेष रूप से याद किए जाते रहेंगे।

डॉ० अग्रवाल की कहानियों का संग्रह 'जिज्ञासा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। 'जिज्ञासा' में 21 कहानियाँ हैं। डॉ० अग्रवाल की ये कहानियाँ मानव-जीवन की जिज्ञासा की कहानियाँ हैं। अगर घटना नहीं है तो कहानी भी नहीं है। इन कहानियों की विषयवस्तु जीवन की वास्तविक घटनाओं से जुड़ी हुई है। इन कहानियों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। कहानीकार सामयिकता से बंधे हुए हैं तथा कहानी का कथ्य कहानीकार की जीवनदृष्टि से प्रभावित नज़र आता है।

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानियों में सांप्रदायिक सद्भावना

अयोध्या के रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद के कारण हुए सन् 1990 के सांप्रदायिक दंगों में उत्तरप्रदेश के अनेक शहरों में सांप्रदायिकता की आग लगी। उनमें से एक शहर बिजनौर भी है। कथाकार डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के जीवन का अधिकांश समय संभल, मुरादाबाद और बिजनौर जैसे मुस्लिम-बहुल स्थानों पर बीता है, जहाँ उन्होंने गाहे-बगाहे सांप्रदायिकता के ज्वार को बहुत नज़दीक से देखा और परखा है। अर्थात् डॉ० अग्रवाल इन दंगों के प्रत्यक्षदर्शी और भुक्तभोगी रहे हैं। स्वाभाविक है कि उनके जैसे अनेक संवेदनशील साहित्यकार, रचनाकार एवं अन्य सहृदय लोग अंदर तक इन दंगों से प्रभावित हुए। रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद के कारण हुए सांप्रदायिक दंगे के कारण बिजनौर शहर चार-पाँच दिनों तक सांप्रदायिक तत्त्वों के कब्जे में एवं पंद्रह दिन तक कफ़रूग्रस्त रहा। इस दंगे में अनेक लोगों को उनके घर में ही ज़िंदा आग के हवाले कर दिया गया था। लाखों रुपये की संपत्ति आग की भेंट चढ़ा दी गई थी। बाज़ार जला दिए गए थे। इनसे भी बड़ी बात यह थी कि जो बिजनौर

हमेशा से गंगा-जमुना संस्कृति और आपसी सद्भाव के लिए पहचाना जाता था, वह अब अतिसांप्रदायिक और संवेदनशील शहरों में गिना जाने लगा। यही कारण है कि डॉ॰ अग्रवाल की कुछ कहानियों में सांप्रदायिक विद्वेष के विरोध में अत्यंत सार्थक और जीवंत परिवेश के साथ-साथ मानवीयता का संदेश भी मिलता है।

‘जिज्ञासा’ कथा-संग्रह की कहानी ‘फ़रिश्ता’ सांप्रदायिक सद्भाव की दृष्टि से बेजोड़ और स्मरणीय कहानी कही जा सकती है। इस कहानी में सत्तर साल के बूढ़े कथानायक राजेंद्रपाल के बहाने कथाकार ने बेहद प्रभावशाली चरित्र निर्मित करके सांप्रदायिक के विरोध का सार्थक संदेश दिया है—‘अब सोचता हूँ विनोद, हड्डियों के ढाँचे की यह शारीरिक ताकत नहीं थी, नैतिक शक्ति थी, मानवीय बल था यह, जिसने मुझे बचाया। गुंडे बुजदिल होते हैं। नैतिक बल उनके पास नहीं होता। इंसानियत की एक ललकार उनके हौसले पस्त कर देती है। बात यह विनोद कि समाज में पाश्वकता कभी-कभी इसलिए बढ़ जाती है कि मानवता क्षीण होने लगती है। हमें ऐसा नहीं होने देना है।’¹ ऐसी सार्थक कहानियों में जो जीवनमूल्य कथाकार पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है, वही तो वास्तव में एक रचनाकार की सच्ची रचनाधर्मिता और सार्थक साहित्य का मूल आधार है। अतः डॉ॰ अग्रवाल ने अपनी कहानी ‘फ़रिश्ता’ में जहाँ तत्कालीन सांप्रदायिक घटनाओं का यथार्थपरक चित्रण किया है, बूढ़े राजेंद्रपालसिंह के चरित्र द्वारा सामाजिक सद्भाव को विस्तृत फलक पर उकेरा है, जो रचनाकार की सांप्रदायिकता-विरोधी भावना को पूर्ण सहृदयता के साथ उजागर करता है।

डॉ॰ अग्रवाल सांप्रदायिक समस्या को एक सामान्य समस्या न मानकर राष्ट्रीय समस्या मानते हैं। इस समस्या का समाधान राजनीतिक स्तर पर ढूँढ़ने को वे दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं। उनका मानना है—‘निश्चय ही इस वास्तविकता को नकारना भी असंभव है कि हमारे वर्तमान राजनीतिक वातावरण ने इस समस्या को और अधिक फैलने तथा जटिल होने के अवसर प्रदान किए हैं।’²

निःसंदेह हमारे देश में राजनीतिकों ने इस समस्या को घटाने की बजाय बढ़ाया ही है। इसका प्रमुख कारण है ‘हमारे देश में चल रही वोट की राजनीति ने एक समुदाय और दूसरे समुदाय, एक जाति और दूसरी जाति के बीच संख्या के आधार पर, अलग-अलग पहचान बनाने की भूमिका निभाई है। इस पहचान ने आगे चलकर विभिन्न समुदायों और जातियों के बीच एक ओर टकराव की स्थिति पैदा की तो दूसरी ओर अवसरवादी राजनीति को फलने-फूलने के अवसर भी प्रदान किए हैं।’³

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि हम सांप्रदायिकता को गहनता से देखते हैं तो हमारे राजनीतिज्ञ, चाहे वे सत्तापक्ष के हों अथवा विपक्ष के, इस समस्या को ब्रिटिश शासकों अथवा विदेशी शक्तियों द्वारा बोयी विष-बेल बताकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। सांप्रदायिकता की स्थिति ऐसी बन चुकी है कि विभिन्न धार्मिक संप्रदाय ही नहीं वरन एक ही संप्रदाय की विभिन्न जातियाँ भी एक-दूसरे के सामने टकराव की स्थिति में हैं। डॉ॰ अग्रवाल का मानना है कि इन सांप्रदायिक स्थितियों से निपटने तथा सांप्रदायिक एकता को बनाए रखने के लिए जो नीतियाँ अपनाई गईं, वे अतार्किक रही हैं। उनका कथन है—‘इस दुःखद परिस्थिति का विश्लेषण करने पर कई ऐसे तथ्य प्रकट होते हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि

सांप्रदायिक एकता बनाए रखने में हमने जिस नीति का सहारा लिया, वह निश्चय ही तार्किक नहीं थी।⁴

‘फ़रिश्ता’ कहानी में सांप्रदायिक सद्भाव के कुछ उदारण इस प्रकार हैं—‘शाहिदा चाय लेकर आई। मेज़ पर चाय रखकर उसने विनोद से प्रश्न किया, ‘तुम यहाँ कैसे पहुँचे? रास्ते में तो पठानों का मुहल्ला पड़ता है, डर नहीं लगा तुम्हें?’

विनोद ने गंभीर मुद्रा से शाहिदा को देखा और कहा, ‘डर तो बहुत लगा, पर भाभी प्रेम का भाव डर की भावना से अधिक प्रबल होता है। हम दोनों यहाँ पहुँच ही गए।’⁵

‘जब हम पठानों के मुहल्ले तक आए तो गली के नुक्कड़ पर कुछ लोगों को खड़ा हुआ देखकर सहम गए। वैसे तो सब जाने-पहचाने थे, लेकिन हमें लगा कि वे पलक झपकते ही हम पर हमला कर सकते हैं। जब मिर्दा पहलवान आगे बढ़ा तो मेरी तो जान ही निकल गई। मुझे लगा कि अभी एक तेज़ चमकदार छुरी मेरी छाती के पार हो जाएगी; लेकिन मिर्दा आगे बढ़कर बराबर वाली गली में मुड़ गया।’⁶

‘मैं तो अब भी कई बार अपने को छूकर देखता हूँ, क्या सचमुच जीवित हूँ? मेरी पत्नी और मेरे बच्चे क्या सचमुच जीवित हैं और क्या वाकई तुम दोनों के बीच बैठा बात कर रहा हूँ।’ हुसैन ने मौत के मुँह से अचानक बच जानेवाले आदमी की तरह उत्तर दिया।

‘लेकिन राकेश भाई! यह भी उतना ही सच है कि इस हाते के मालिक बूढ़े राजेंद्रपाल यहाँ न होते तो हम सब ज़रूर मार दिए गए होते।’ अपनी दुःख-गाथा सुनाने की पहल करते हुए शाहिदा बोली, ‘यही बूढ़ा व्यक्ति हमें अपमान और मौत से बचानेवाला फ़रिश्ता बन गया।’

‘उस रात हम लोगों के साथ यह बूढ़ा फ़रिश्ता भी जागता रहा, ताकि शैतानों को हम लोगों तक आने से रोक सके।’⁸

‘दरअसल, हमें शक ही नहीं था कि इस हवेली में भी कुछ गड़बड़ हो सकती है। शक होता भी तो कैसे! हम लोग कई वर्षों से एक परिवार की तरह रहते आए हैं। कभी कोई फर्क महसूस नहीं हुआ।’⁹

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानी ‘राबिन शॉ’ (जिज्ञासा) एक अत्यंत मार्मिक एवं भावनात्मक कहानी है। इसमें यशवंतराव नामक पात्र सिर्फ़ इसलिए राबिन शॉ बन जाता है, क्योंकि मीरा बटलर नाम की लड़की का भाई, जो इसी नाम का था, चल बसा है। वह नितांत अकेली है। यशवंतराव रोबिन शॉ बनकर उसे भाई का वही भरपूर प्यार देता है, जो मृत्यु के क्रूर हाथों ने उससे छीन लिया था। यशवंतराव विधिवत् धर्मपरिवर्तन नहीं करता, केवल नाम बदल लेता है, ताकि मीरा बटलर उसके हिंदू नाम के कारण दूरी महसूस न करे। बाद में यही राबिन शॉ शहर में सांप्रदायिक दंगा फूट पड़ने पर एक मुस्लिम युवती की जान बचाते हुए शहीद हो जाता है।

यह सांप्रदायिक एकता एवं धार्मिक सौहार्द्र पर लिखी एक सफल कहानी तो है ही, साथ ही उन इंसानी पहलुओं को भी उभारती है, जो धर्म, संप्रदाय अथवा जाति के दायरे से ऊपर होते हैं।

‘राबिन शॉ’ कहानी का एक अंश उदाहरण के लिए इस प्रकार है—‘और तुम यह जानकर भी आश्चर्य करोगे कि राव क्रिश्चियन बनने के लिए किसी गिरजाघर में नहीं गया।

उसने बपतिस्मा भी नहीं लिया। बस यह यशवंतराव से राबिन शा बन गया, मीरा बटलर का भाई अपने और उसके बीच में यह धर्मसूचक नाम का अंतर नहीं आने देना चाहता था। शायद वह मीरा बटलर को आश्वस्त करना चाहता था कि एक राबिन शा मर गया तो दूसरा है, पहले से अधिक चाहनेवाला, पहले से अधिक स्नेही।¹⁰

देश की स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्र ने धर्म-निरपेक्षता को सामाजिक जीवन का मुख्य आधार बनाया, किंतु हमारे लिए आज भी यह खेद का विषय बना हुआ है कि हमने इसे एक सिद्धांत अथवा जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार नहीं किया। राजनीतिक नेता मात्र सर्वधर्म सम्मान के नारे लगाने को अपना कर्तव्य समझने लगे। इससे सांप्रदायिक समस्या को सुलझाने में सहयोग कम मिला और निराशा अधिक हुई है। डॉ० अग्रवाल का कथन है—

‘सर्वधर्म सम्मान की नीति ने न केवल प्रशासनिक ढाँचे में प्रवेश करके धर्म-निरपेक्षता के सिद्धांत को आघात पहुँचाया बल्कि धर्मों का महत्त्व व्यक्तिगत जीवन की अपेक्षा सामूहिक जीवन में आवश्यक रूप से बढ़ गया। प्रायः प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने धर्म या मत को दूसरे धर्मों या मतों से अधिक श्रेष्ठ मानने की भूल करते आए हैं। जब प्रशासन में सभी धर्मों के सम्मान का सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाता है, तब प्रत्येक धर्म का अनुयायी, गलत या सही, यही आशा करता है कि सत्ता में उनका पक्ष दूसरों से अधिक महत्वपूर्ण व प्रबल बन जाए। व्यावहारिक रूप में जब ऐसा नहीं होता तो एक ओर शासन के प्रति शंकाओं का जन्म होता है। दूसरी ओर विभिन्न संप्रदायों के बीच संदेहों के अंकुर फूटने लगते हैं।’¹¹

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानी ‘प्रायश्चित’ देश के दंगों की कहानी है। इसमें अग्रवाल जी के कथन का अंदाज़ अत्यंत मार्मिक है। सांप्रदायिक दंगे के समय दूसरे संप्रदाय के एक व्यक्ति को गंभीर रूप से घायल कर देनेवाला अन्य धर्म का व्यक्ति स्वयं अपना रक्त देता है और उसकी जान बचाता है। क्षणिक पाशविकता के बाद आदमी में निहित ‘मानवता’ किस तरह उदित होती है, यही कहानी का मुख्य बिंदु है, जिसे कहानीकार ने प्रस्तुत किया है। ‘प्रायश्चित’ कहानी में मिर्जा अली बेग और सुरेंद्रसिंह ऐसे दो पात्र हैं, जिन्होंने एक बार किसी सांप्रदायिक जुनून में किसी एक की जान लेने का प्रयास किया, लेकिन जब मानवीयता का भाव जाग्रत हुआ तो उसी की जान बचाने के लिए अपना खून देने के लिए तैयार हो गया। इस कहानी में सुरेंद्रसिंह नामक पात्र के मुख से डॉ० अग्रवाल कहलाते हैं—

‘आदमी लम्हों में जीता है, मेरे भाई, लम्हों में। कोई एक लम्हा उसे इंसानियत के शिखर पर पहुँचा देता है तो कोई दूसरा पल उसे नीचता के दल-दल में छोड़कर भाग जाता है। वह ऐसा ही लम्हा था मिर्जा।’¹² ऐसे कथन निश्चय ही कथाकार के चिंतन को उजागर करते हैं।

इसी कहानी में जीवन का सबसे बड़ा सूत्र डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल इन शब्दों में देते हैं—‘हाँ मिर्जा, शायद इसीलिए जीवन में कोई-न-कोई घड़ी ऐसी जरूर आती है, जो आदमी के अंदर छिपे मानवीय भावों को जगा देती है।’¹³

यह बात सत्य एवं निर्विवाद है कि सर्वधर्म सम्मान के सिद्धांत को मान्यता देने के माध्यम से हमने धार्मिक भावनाओं को व्यक्ति के स्तर से निकालकर समाज के स्तर तक अनावश्यक रूप में फैलने की अनुमति दी और इस सिद्धांत से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुईं। डॉ०

अग्रवाल का यह मानना भी सटीक है कि धर्म-निरपेक्षता की मौलिकता को तो हमने स्वीकार किया, किंतु उस पर पूर्ण ईमानदारी से अमल नहीं किया। वह मात्र संविधान के पृष्ठों की शोभा बनकर ही रह गया। अतः धर्म-निरपेक्ष प्रजातंत्र में धर्म-संबंधी मान्यताएँ एवं सभी समस्याएँ व्यक्तिगत स्तर तक सीमित रहनी चाहिए।

सांप्रदायिक सद्भावना को सुदृढ़ एवं विशाल रूप देते हुए डॉ० अग्रवाल लिखते हैं—
‘हमारी कामना है कि हम धर्म-निरपेक्षता को अपने समाज में जीवन-दर्शन के रूप में स्थापित करने में सफल हों। आवश्यकता इस बात की है कि समुदायों का हृदय-परिवर्तन करने के पूर्व हम अपना हृदय-परिवर्तन करें। धर्म-सम्मान और धर्म-निरपेक्षता के बीच जब तक विभाजनरेखा नहीं खींची जाएगी, तब तक इस लक्ष्य तक पहुँचना संभव नहीं होगा।’¹⁴

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ० अग्रवाल राष्ट्र में सांप्रदायिक-विरोध को समाप्त कर सांप्रदायिक सद्भाव की स्थापना हेतु धर्म-निरपेक्षता को संविधान के पृष्ठों से बाहर निकालकर यथार्थ के धरातल पर तथा जीवन-दर्शन के रूप में स्थापित करना चाहते हैं। यह तथ्य जहाँ रचनाकार डॉ० अग्रवाल के मानवतावादी दृष्टिकोण को रेखांकित करता है, वहीं उनकी सांप्रदायिकता-विरोधी चेतना को भी दर्शाता है।

संदर्भ

1. जिज्ञासा, ‘फरिश्ता’ हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ०प्र०), पृ० 145
2. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 5
3. वही, पृ० 5
4. वही, पृ० 5
5. जिज्ञासा : ‘फरिश्ता’, पृ० 138
6. जिज्ञासा : ‘फरिश्ता’, पृ० 138
7. जिज्ञासा : ‘फरिश्ता’, पृ० 140
8. जिज्ञासा : ‘फरिश्ता’, पृ० 144
9. जिज्ञासा : ‘फरिश्ता’, पृ० 140
10. जिज्ञासा : ‘राबिन शा’, पृ० 168
11. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 6
12. जिज्ञासा : ‘प्रायश्चित’, पृ० 57-58
13. जिज्ञासा : ‘प्रायश्चित’, पृ० 64
14. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 8

असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग
मद्रास क्रिस्चियन कॉलेज
ताम्बरम, चेन्नई 600059
मो० 09445181971

ई मेल : mathurajaya@gmail.com

‘तुम लिखो कविता’ संग्रह में चित्रित सामाजिक बोध

श्री जसपालसिंग वलवी शोधछात्र
श्री. सातपुडा वैभव विद्यालय व कनिष्ठ महाविद्यालय
वाण्यविहीर ता. अक्कलकुवा
जिला नंदुरबार

डॉ० दामोदर खड़से जी एक अत्यंत संवेदनशील कवि हैं। खड़से जी मूलतः कथाकार के रूप में हिंदी साहित्य में परिचित हैं। उन्होंने कथा-कहानियों, उपन्यासों, अनुदित लेखन आदि के साथ-साथ कविताओं की भी रचना की है। दरअसल, खड़से जी की साहित्य-यात्रा कविता से ही आरंभ हुई। सन् 1966 में इन्हें अंबिकापुर छोड़कर अकोला आना पड़ा था, अंबिकापुर में खड़से जी की कृष्ण गुप्ता से गहरी मित्रता थी। अपने मित्र से दूर होने का बहुत दुख हुआ। अपने दोस्त से बिछड़ने के दुख में इन्होंने पहली कविता लिखी और धीरे-धीरे कविता उनके जीवन के साथ चलने लगी। डॉ० दामोदर खड़से जी के निम्न कविता-संग्रह प्रसिद्ध रहे हैं—अब वहाँ घोंसले हैं, जीना चाहता है मेरा समय, सन्नाटे में रोशनी, नदी कभी नहीं सूखती, पेड़ कभी अकेले नहीं होते, मैं लौट आया हूँ (कविता का ओडियो कैसेट), तुम लिखो कविता आदि।

‘तुम लिखो कविता’ शीर्षक कविता-संग्रह सन् 2008 में शिल्पायन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में बानवे कविताएँ हैं। हर कविता ‘तुम लिखो कविता’ शब्दबंध से शुरू होती है। इन कविताओं में मानवीय रशियों की मधुरता, विश्वास, आकांक्षाएँ, सुखद भविष्य, प्रकृति की खूबसूरती आदि की रक्षा और परिस्थितियों की जटिलताएँ, विडंबनाएँ, विरोधाभास, राजनीतिक स्वार्थ, सत्ता की होड़ आदि से पैदा होने वाली समस्याओं के समाधान में कविता जैसी रचनात्मक विधा को माध्यम बनाने का दायित्व यह संग्रह केवल कवियों पर ही नहीं छोड़ता, बल्कि पूरे समाज को सौंपता है। ‘तुम लिखो कविता’ का ‘तुम’ यही समाज है, जहाँ आज के इस आधुनिक और विज्ञानयुग कहे जाने वाले युग में जल बचाओ, पर्यावरण बचाओ, वन्यजीव बचाओ, बिजली बचाओ जैसी आवाज़ सुनाई दे रही। अनेकानेक घोषणाओं के बीच कवि का दर्द कहता है—कविता बचाओ।

इस अभियान में कवि की संवेदना घटनातीत स्मृतियों, अतीत के मुखौटों को संजीदगी और सकारात्मक ढंग से अनावृत करती है। कवि कहता है—

तुम लिखो कविता
और मैं देखूँ जी भरकर
कलम, स्याही और कागज़ पर गुनगुनाता
ज़िंदगी का अनगाया गीत।

इस अनावरण-प्रक्रिया में दर्द पीछे छूट जाता है, अतीत भी रस-गंध, ऊष्मा-उल्लास का स्पर्श पाकर चिर-प्रासंगिक बन जाता है और इसके साथ-साथ शुरू हो जाता है 'मैं' का संवाद-मनुहार 'तुम' से। अनेकानेक आवेगों-प्रवेगों से ग्रस्त समाज भी कविता की लोकहितकारी भूमिका के निर्वहन का दायित्व सक्षमता किंतु सहजता के साथ पूर्ण करने की मानसिकता और अवसर पा सके। बड़ी निश्चितता के साथ कवि ने कहा है—

तुम लिखो कविता
मैं निहारूँ तुम्हें
कि किस तरह कविता
उतरती है तुम्हारे दिल से अँगुलियों तक!²

बेहतरी के अपने नितांत आंतरिक तकाजों पर कवि स्वयं जितना बेचैन रहा करता है, खड़से जी समाज को भी उस बेचैनी के सकारात्मक अहसास से समृद्ध करना चाहते हैं। खड़से जी कविता को समाज के लिए अपरिहार्य वरदान की तरह मानते हुए कहते हैं—

तुम लिखो कविता
कविता कवच होती है
हर अशुभ के लिए
डरो मत तुम
घनघोर जंगलों, घुप्प अँधेरों से।
आसपास कितनी ही हो हिंस्र चिंघाड़
या पैरों के नीचे जहरीली फुँफकार मत डरो तुम!³

कवि कविता को समाज के लिए कवच बनाना चाहता है। कविता में जहाँ कोमलतम भावनाएँ हैं, वहीं ऐसे रूप भी हैं कि वह दुनिया को बचाने में भूमिका का निर्वाह कर सके। कविता को 'कवच' और 'पुल' बनाने की प्रतिबद्धता ही खड़से जी को अभिप्रेत है। इस हिंसक और बर्बर समय में कवि प्रेम की स्थापना को एक ऐसी कोशिश के रूप में देखता है कि इस दुनिया को पुनः सुंदर और बेहतर बनाया जा सके। कवि लिखते हैं—

इन आँखों में
लहलहाती हुई बस्तियों के अवशेष हैं
झुलसे हुए सपनों के निःश्वास
और टुटे इंद्रधनुष के खंडित विश्वास हैं!⁴

व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति और आर्थिक दबावों के बीच की दरारों को तोड़ने में अक्षम समाज जब न सिर्फ सामाजिक स्तर पर बल्कि समाज के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक परिवार के स्तर पर भी बिखर गया है, तब समाज को कविता की छाँव में बुलाना, उसे कविता की छतरी बनाने को कहना कविता के प्रति अनंत विश्वास रखनेवाले किसी असाधारण सृजनशील चिंतक का ही काम हो सकता है और इसीलिए डॉ० खड़से कहते हैं—

कविता तुम्हारे भीतर हर समय होती है।
तुम द्रष्टा बन भीतर झाँको अपने, मैं दृश्य कविता हो जाऊँ।⁵

कविता पर जीवन का प्रभाव पूरी शिद्दत के साथ मौजूद है। 'मैं' 'इस' 'तुम' से

केवल कविता लिखने को ही नहीं कहता बल्कि कविता कैसे लिखी जाए, यह भी सूचित करता है। इस 'तुम' को द्रष्टा कविता लिखने को कहता है।

जीवन के तमाम अंतरालों को पाटने का काम कविता करती है। वह सेतु है, पुल है, इसीलिए कवि का कथन है—

तुम लिखो कविता
सन्नाटे और कलरव के बीच
मौन और खिलखिलाहट के बीच
कविता पुल होती है।⁶

कवि का दृढ़ विश्वास है कि कविता समाज को नई दिशा देगी ताकि जीवन सुगम हो सके। आज भौतिक सुख-साधनों के अंबार लगे हैं, परंतु जीवन में इसका अभाव ही बना रहता है। चारों ओर चिंता, निराशा, बेचैनी, खलिश, कुंठा, हताशा, हिंसा, छीना-झपटी, ईर्ष्या, द्वेष आदि की स्पर्धा के जटिल जाल में फँसकर मानव-जीवन यम-यातना भोग रहा है। इस बीच कविता मौन और खिलखिलाहट के बीच सेतु का काम कर रही है। खड़से जी उचित ही यह दायित्व भी कविता के माध्यम से समाज पर सौंपते हैं, ताकि न कवि अकेला पड़ जाए, न कविता। वे लिखते हैं—

किस तरह तुम
शब्दों की गठरी खोलते हो
और किस तरह शब्द अनुशासित होकर
उकेरने लगते हैं
अतीत की परत-दर-परत।

यह अतीत बीता हुआ जरूर है, किंतु मरा हुआ नहीं। यह हमारी जीवन परंपरा है, जिससे जुड़े रहना ही हमारी पहचान है, विकास की अगली यात्रा के लिए आवश्यक आंतरिक शक्ति कविता है और कविता को सान्निध्य का शब्दकोश कहते हुए खड़से जी कहते हैं—

कविता निर्झरणी-सी बहती है भीतर तुम्हारे
कविता देती तिरिप हर अँधेरे कमरे को
कविता स्मृतियों को
जीवंत कर देती है।⁸

कवि परिवेश को विस्मृत नहीं कर पाता है। स्मृतिलोप के साथ मनुष्य अपनी निजी पहचान भूल जाता है। इस विनाश का सामना राजनीतिक तौर पर भले ही संभव हो, लेकिन प्रस्तुति सांस्कृतिक स्तर पर ही हो सकती है। कवि के शब्दों में—

मुझे डर लगता है कि
सागर जब सूख जाएगा भीतर से
स्मृतियाँ जब हो जाएँगी अनावृत
सागर की सतह में पड़े
असंख्य मुखौटे पानी-पानी हो जाएँगे
तुम लिखो कविता।⁹

जीवन में आज कविता के लिए अवसर बहुत ही कम रह गए हैं, लगभग नहीं के बराबर। जबकि कविता के समान उदार और स्नेहिल शक्ति के ही अभाव में जीवन तमाम प्रकार की विसंगतियों का शिकार है या यूँ कहें कि होता जा रहा है। जीवन में कविता होती तो अविश्वास, घृणा, दगा, स्वार्थ, हिंसा जैसी नकारात्मक बुरी प्रवृत्तियों को जगह नहीं मिलती। इस बात का कवि ने कविता द्वारा निरूपण किया है। खड़से जी के शब्दों में—

कविता करती स्पर्श
जहाँ से मिलती है ऊर्जा
कविता शक्ति की विकरालता को भी
पी जाती है बेहिचक।¹⁰

आज अपना दुख सुनाना, हास्यास्पद होना है। दूसरों के दुख बाँटना अव्यावहारिक होना है। निष्ठा और सत्य आज मूर्खता है। सहयोग पागलपन है, त्याग आत्मघात है। संयम दुर्बलता है। सरलता अपाहिज है। एक तरफ़ यह है, दूसरी तरफ़ है सत्ता, शक्ति, क्षमता, जिनका साफ़ मतलब है चरम स्वार्थ, बेईमानी, भ्रष्टाचार और दंभ, लूट, हिंसा। खड़से जी इन सबको इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

मेरा समय
बहुत बच निकलने की
कला जानने के बावजूद
झोंक दिया जाता है
किसी अग्निकुंड में
और मुझे ख़बर देने वाले
सारे कबूतर पता नहीं किस बाज़ के शिकंजे में
खो जाते हैं तुम लिखो कविता।¹¹

लगभग कातर रुदन के साथ अपने समय और अपनी स्थिति का बयान करते हुए खड़से जी फिर समाज से आग्रह करते हैं कि वह कविता लिखे। कालचक्र की कठोरता कवि को व्यावहारिकता के अग्निकुंड में धकेलती है। कविता के लिए समय का अभाव उसे खलता और व्यथित करता है। कवि कहता है—

घटनाएँ अपनी वापसी यात्रा के लिए
मुझे पुकार रही हैं
मैं तुम्हारी पुकार बन जाऊँ
तुम लिखो कविता।¹²

यहाँ कवि की बेचैनी, परेशानी तुरंत समझ में आती है। ऐसे में अपनी अतृप्ति, अधूरी इच्छाओं की पूर्ति में, राहत ढूँढने की चाह में कवि स्वयं ही कविता की यात्रा बन जाता है। कभी कलश बनकर, कविता की ज्योति-रूप देखता है तो कभी सोमनाथ बनकर कवच धारण करने की तैयारी दर्शाता है। कस्तूरी बनने का सपना देखते-देखते कविता का अस्तित्व बनने में अपना भाग्य देखते हुए कवि अपनी बेचैनी कविता को सौंपता है और 'तुम' या 'समाज' को कविता लिखने का आग्रह करता है। आज हमारे आसपास की दुनिया तेज़ी से बदल रही है,

जीवन का कोई क्षेत्र और विश्व का कोई कोना ऐसा नहीं है, जो इस बदलाव से बचा रह सके। लेखन, चिंतन और सृजन पर भी इसका असर पड़ा है। हर कविता अपने विचारों में व्यापक उत्तेजना लिए हुए है। आवेग-संवेग की इस रफ्तार को कवि दामोदर खड़से जी की सहज वाग्मिता ने त्रिकाल सत्य के सार्थक बयान का जामा पहनाया है।

हर कविता 'मैं' की है, जो 'तुम' से मनावन करती है। 'मैं' जो एक आदमी है, उसके भीतरी नए त्रिकाल सत्य का उद्घाटन करो, इस आदमी की जिंदगी का दर्द अपनी आँखों के रास्ते हृदय में उतारो और फिर उन्हें कलम से उतरती स्याही में सराबोर शब्द बनाओ। कविता एक ओर समग्र दृष्टि के कण-कण से गहरी प्रीति का अहसास कराती है। फूलों, पत्तियों, कलियों और अदृश्य जड़ों के भीतर के जीवन-संचरण से हृदय की धड़कन को जोड़ती है। वहीं दूसरी ओर मानवीय अंतःसंबंधों की कोमल भावनाओं के संतरंगी ताने-बाने बुनती है। मनुहार भरा संबोधन-आग्रह 'तुम लिखो कविता' हर कविता में विचारों की उत्तेजन वृत्ति के बल पर उसे एक संपूर्ण व स्वतंत्र इकाई के रूप में परिवर्तित कर देता है। परिणामतः कविता का सौंदर्यस्वाद हर अगली कविता के साथ स्निग्ध, रसभीना बनकर तीव्रतर होता चलता है।

भावपक्ष की ही तरह इस संग्रह की कविताओं का शिल्पपक्ष भी बहुत सांकेतिक है। 119 पृष्ठों में फैली यह बानवे कविताएँ प्रचलित अर्थ में एक किताब नहीं, बल्कि एक लंबी व भव्य प्रेम कविता है। कविता के इस कठिन दौर में यह आह्वान है, जिसमें कविता को बचाने का आमंत्रण है।

इस शिल्प-विधान के पीछे कवि की मानसिकता समझी जा सकती है, कम शब्दों में, सरल भाषा में अपनी बात को आग्रह की विनम्रता में भिगोकर बार-बार दुहराया गया है। इस प्रकार खड़से जी का यह कविता-संग्रह जीवन में कविता के व्यावहारिक अमल की असीम उपयोगिता को उकेरकर कविताहीन जिंदगी के द्रविड़, प्रणायाम में उलझे कविता-विरोधी शक्तियों के सम्मुख जो एक अपूर्व शक्तिशाली चुनौती उछालता है, वह तो अनन्य ही है।

संदर्भ

1. तुम लिखो कविता, डॉ० दामोदर खड़से, पृ० 9
2. वही, पृ० 11
3. वही, पृ० 24
4. वही, पृ० 27
5. वही, पृ० 28
6. वही, पृ० 51
7. वही, पृ० 53
8. वही, पृ० 62
9. वही, पृ० 86
10. वही, पृ० 96
11. वही, पृ० 119
12. वही, पृ० 119

कवि दिनकर के साहित्य में पीड़ित, शोषितों का चित्रण

सुधा महला

असिसटेंट प्रोफ़ेसर

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

दिनकर का हिंदी-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके साहित्य का मूल केंद्र शोषण की चक्की में पिसने वाला किसान, मजदूर, नारी है। इन्होंने अपने साहित्य में शोषित और शोषक का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है।

कवि दिनकर अपने निबंध 'वेणुवन' में नारी की हेय अवस्था के बारे में लिखते हैं कि 'नारी की पराधीनता तब आरंभ हुई जब मानवजाति ने कृषि का आविष्कार किया। जिसके चलते नारी घर में और पुरुष बाहर रहने लगा। यहाँ से ज़िंदगी दो टुकड़ों में बँट गई। घर का जीवन सीमित और बाहर का जीवन असीमित होता गया एवं छोटी ज़िंदगी बड़ी ज़िंदगी के अधीन होती चली गई। नारी की पराधीनता का यह संक्षिप्त इतिहास है।

यदि आदिमानव और आदिमानवी आज मौजूद होते तो ऐसी कल्पना से सबसे अधिक आश्चर्य उन्हें ही होता और वे कदाचित्, कहते भी कि आपस में धूप और चाँदनी का बँटवारा हमने नहीं किया था। हम तो साथ-साथ जन्मे थे तथा धूप और चाँदनी में, वर्षा और आतप में साथ-साथ घूमते भी थे और अगर कोई जानवर हम पर टूट पड़ता तो हम एक साथ उसका सामना भी करते थे।' उन दिनों नर और नारी इतने दुर्बल नहीं थे। न आहार के लिए ही एक-दूसरे को दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता था।¹

इससे स्पष्ट होता है कि नारी और नर के बीच की स्थिति समाज के लोगों ने ही बनाई और धीरे-धीरे शोषण भी किया।

'कृषि का विकास सभ्यता का पहला सोपान था, किंतु इस पहली ही सीढ़ी पर सभ्यता ने मनुष्य से भारी कीमत वसूल कर ली। आज प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को फूलों का आनंदमय भार समझता है और प्रत्येक पत्नी अपने पति को बहुत कुछ उसी दृष्टि से देखती है, जिस दृष्टि से लता अपने वृक्ष को देखती होगी।'²

इस पराधीनता के कारण नारी अपने अस्तित्व की अधिकारिणी नहीं रही। उसके सुख और दुःख, प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा, यहाँ तक कि उसका जीवन पुरुष की मर्जी पर टिकने लगा।

'प्राचीन विश्व में जब व्यक्ति-मुक्ति की खोज मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी साधना मानी जाने लगी, तब झुंड के झुंड विवाहित लोग संन्यास लेने लगे और उनकी अभागिनी पत्नियों के सिर पर जीवित वैधव्य का पहाड़ टूटने लगा।'³

ज़रा उन आँसुओं की कल्पना कीजिए, जो उन अभागिनियों की आँखों से बहते होंगे, जिनके पति परमात्मा की प्राप्ति के लिए उनका त्याग कर देते थे। ज़रा उस बेबसी को भी ध्यान में लाइए, जो इस अनुभूति से उठती होगी कि आखिर जो संन्यास लेता है, वह निष्ठुर, कायर और कठोर नहीं बल्कि पुण्यात्मा, साहसी और शायद सबसे बड़ा वीर है और नारी इन परिस्थितियों से हारकर स्वेच्छा से अपने-आपको सचमुच ही पुण्य की बाधा और पाप की खान मानकर पछाड़ खाकर रह जाती थी।

बुद्ध और महावीर ने कृपा करके नारियों को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया था, किंतु यह अधिकार भी नारी के हाथ सुरक्षित न रह सका। जैनों के बीच जब दिगंबर संप्रदाय निकला, तब धर्माचार्य नारियों की भिक्षुणी होने की बात से घबरा उठे और धर्मपुस्तक में उन्होंने एक नए नियम का विधान किया कि नारियों का भिक्षुणी होना व्यर्थ है, क्योंकि मोक्ष नारी-जीवन में नहीं मिल सकता। नारियाँ घर में ही रहकर दान-पुण्य करें और उस दिन की प्रतीक्षा करें, तब उनका जन्म पुरुष योनि में होगा। जब वे पुरुष होकर जन्म लेंगी, संन्यास वे तभी ले सकेंगी और तभी उन्हें मुक्ति भी मिलेगी और बुद्ध ने भी एक दिन आयुष्मान् आनंद से, ईषत् पश्चात्ताप के साथ कहा कि 'आनंद! मैंने जो धर्म चलाया था, वह पाँच सहस्र वर्ष तक चलने वाला था, किंतु अब वह केवल पाँच सौ वर्ष चलेगा, क्योंकि नारियों को मैंने भिक्षुणी होने का अधिकार दे दिया है।'⁴

धर्मसाधक महात्मा और साधु नारियों से भय खाते थे। विचित्र बात यह है कि इनमें से कई महात्माओं ने ब्याह भी किया और फिर नारियों की निंदा भी की।

'नारी और नर एक ही द्रव्य की ढली दो प्रतिमाएँ हैं।'⁵ आरंभ में दोनों बहुत कुछ समान थे। आज का सारा ज़माना ही मरदाना मर्द और औरतानी औरत का ज़माना हो उठा है। पुरुष इतना कर्कश और कठोर हो उठा है कि युद्धों में अपना रक्त बहाते समय उसे यह ध्यान नहीं रहता कि रक्त के पीछे जिनका सिंदूर बहने वाला है, उनका क्या हाल होगा और न सिंदूर वालियों को ही इसकी फिक्र है कि और नहीं तो, उन जगहों पर तो उनकी राय खुले। यहाँ सिंदूर पर आफ़त आने की आशंका है।

मुझे इस बात को कहे बिना नहीं रहा जाता कि पुरुषवर्ग ने कभी भी नहीं सोचा कि जो कदम हम उठाए जा रहे हैं, उन पर औरत के बारे में कुछ सोचें। दिनकर जी ने महाभारत का यह प्रसंग बतलाकर हमें स्पष्ट समझाया है। जो इस प्रकार है—'कौरवों की सभा में यदि संधि की वार्ता कृष्ण और दुर्योधन के बीच न होकर कुंती और गांधारी के बीच हुई होती तो बहुत संभव था कि महाभारत नहीं मचता। किंतु, कुंतियाँ और गांधारियाँ तब भी निश्चेष्ट थीं और आज भी निश्चेष्ट हैं।'⁶

'दिनकर ने कबीर से पूछा कि महाराज। आप तो भक्त भी थे और समाज-सुधारक भी। किंतु, आज संसार में भक्ति का स्वर मद्धिम पड़ गया है और सर्वत्र समाज-सुधार की भावना प्रबल दिखाई देती है। लोग परलोक को छोड़कर लोक की समाराधना में लीन हैं। यह संसार के लिए अच्छा हुआ या बुरा। इस विषय में आप-अपने विचार हमें जानने दें।

कबीरदास बोले—'भक्ति-साधना और समाज-सुधार परस्पर विरोधी काम नहीं है। देखने की बात तो यह हो सकती है कि तुम समाजसेवा या भक्ति किस भाव से करते हो। यदि

तुम्हारी सेवा-भावना निष्काम है तो तुम समाजसेवी होते हुए भी भक्त हो। सभी उद्देश्य सकाम नहीं होते। सकामता तो वहीं देखी जा सकती है, जहाँ मनुष्य अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर काम करता है। जिसका उद्देश्य स्वार्थ नहीं, परमार्थ अथवा परोपकार है, उस पर सकाम होने का दोष नहीं दे सकते और विषमताएँ क्या मात्र आर्थिक हैं? उनसे कहीं विकराल विषमताएँ तो वे हैं, जो नए जन्म के आधार पर एक मनुष्य को उत्तम और दूसरे को अधम बताती हैं, एक को पूज्य और दूसरे को अस्पृश्य बताती हैं। विषमताओं का असली दुर्ग तो मनुष्य के मन में अवस्थित है। जब तक यह दुर्ग नहीं टूटता, जब तक मनुष्य यह नहीं समझ पाता कि जन्मते सभी मनुष्य समान हैं और सबको श्रेष्ठ एवं सुखी बनने का समान अधिकार है, तब तक समाज में फैली हुई विषमताओं का अंत नहीं होगा।¹⁷

सामाजिक विषमताओं के मूल में मनुष्य का अहंकार निवास करता है। जाति का अहंकार, वंश का अहंकार, धन और शक्ति का अहंकार, सिद्धि और सफलता का अहंकार। ये सभी अहंकार-विभाजक रेखाएँ हैं, जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करती हैं।

धनी और निर्धन ये दो वर्ग तुम्हें दिखाई देते हैं, किंतु कितने आश्चर्य की बात है कि निर्धन होने पर भी ब्राह्मण और हरिजन परस्पर एकात्मकता का अनुभव नहीं कर पाते। ब्राह्मण आज भी यह सोचकर अपने को अंत्यजों से पृथक् रखता है कि वह जन्मना उससे श्रेष्ठ है।

गांधी जी ने इसी अहंकार को शमित करने के लिए यह परिपाटी चलाई थी कि सेवा का अधिकार उसी को मिल सकता है, जो भंगी का भी काम उत्साह और प्रसन्नता के साथ कर सके और इसी अहंकार को मानने के लिए मार्क्स ने कहा कि—‘सेवा के पथ पर अग्रसर होने के पूर्व अपने मन को समझा दो कि तुम किसी भी व्यक्ति से किंचित भी श्रेष्ठ नहीं हो। जो काम मजदूर करता है, वह पंडितों के भी करने योग्य है।’¹⁸

धर्म, ज्ञान और विश्वास में नहीं, कर्म और आचरण में बसता है। यदि हम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं तो इस विश्वास का सबूत हमारे आचरणों में मिलना ही चाहिए। पूजा और अनुष्ठान की विधियाँ धर्म के बाहरी रूप हैं। ‘मंदिर, मस्जिद, तीर्थ, व्रत और पंडे तथा पुरोहित की प्रथा, ये धर्म के ढकोसले हैं। सच पूछो तो सभी धर्म एक हैं। केवल पूजा-विधियों को छोड़ दो और सभी धर्मों को एक हो जाने दो। सभी धर्म एक हैं, एक से अधिक वे हो ही नहीं सकते।’¹⁹

रवींद्रनाथ ने ठीक ही कथा था—‘धर्म को पकड़े रहो। धर्म को छोड़ दो और धर्म केवल जुम्मे या मंगलवार को ही नहीं जगता, वह सातों दिन जगा रहता है। उसकी साधना का स्थान मंदिर और मस्जिद ही नहीं, बल्कि वे सारी जगहें हैं, जहाँ मनुष्य कोई काम करता है।’²⁰

नवयुवक पाठकों के सामने दिनकरजी के विचार ‘रेती के फूल’ निबंध में प्रस्तुत हुए और ये विचार पाठकों के हृदय और मस्तिष्क के पास पहुँच सके। सच है कि दिनकरजी ने महाभारत के प्रसंग पर विचार करके जगत् के सामने अमूल्य विचार पेश किया है, जो इस प्रकार हैं—

‘नारी मूक बनकर सहती रही और अब भी युद्ध की नौबत पर मूक बनी रही। यानी औरत का कोई ‘दल’ नहीं बना। जो ‘माँ’ का प्रतिनिधित्व कर सामने आई है। चाहे नेता, प्रमुख ने राजा के अविचारी निर्णय के सामने ललकार किया हो।’

दिनकर जी के विचार—‘कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो गया। लड़काई के वीरों की श्रेणी में जो भी गिने जाने के योग्य थे, वे प्रायः सबके सब युद्धभूमि में सो गए। जिस भूखंड पर कौरवों और पांडवों की मुठभेड़ हुई थी, वह आज लहू से लथपथ और रूंद-मुंडों से भयानक हो उठा है। भयानकता के बीच केवल भीष्म हैं जो शरशैया पर जाग रहे हैं और सोच रहे हैं।’

‘अठारह अक्षौहिणी सेना की लाशों पर से रथ दौड़ाता हुआ मैं हस्तिनापुर की राजधानी में आ गया हूँ। किंतु वह राजधानी वही नहीं है जिसमें दुर्योधन अपने भाइयों और मित्रों के साथ निवास करता था अथवा जहाँ हमने भी आनंद के कुछ वर्ष बिताए थे। फूल सूख गए, हरियाली जलकर खाक हो गई, शाखाएँ और टहनियाँ खंड-खंड होकर नीचे पड़ी हैं और पत्तों का कहीं पता भी नहीं है। जो शेष है वह वाटिका नहीं, वाटिका का कंकाल है और यही कंकाल उपवन की यही ठठरी मेरे भाग्य में बदी थी जो विजय के हाथों मुझे पुरस्कार में मिली है।’

जब भीम की गदा की चोट खाकर नरव्याघ्र दुर्योधन धराशायी हुआ, उसने मूर्च्छित होते-होते ललकारकर मुझे कहा था—‘युधिष्ठिर! वीरों को लेकर तो मैं स्वर्ग चला, अब विधवाओं को लेकर तुम राज्य करो।’

दुर्योधन की इस उक्ति की वेधकता उस समय दिनकरजी पर नहीं पड़ी थी। दिनकर के शब्दों में—हम सबने सोचा था कि निराशा के अतिरेक से व्याकुल होकर दुर्योधन व्यंग्य-बाण का सहारा ले रहा है, किंतु आज मुझे स्पष्ट दिख रहा है कि उसने तनिक भी अत्युक्ति नहीं की थी। सचमुच ही भारत के सभी शूरमा बिदा हो गए, जो बिदा होने से बचकर पीछे हट गया है वह विधवाओं और निपूती माताओं का देश है और यही वह देश है, जिस पर विजेताओं को राज्य करना है।

आज हस्तिनापुर की छत पर चढ़कर जब मैंने चारों ओर दृष्टि डाली, तब ऐसा लगा मानो मैं किसी महाश्मशान में खड़ा हूँ, जिसकी कुरूप शांति मन में काँटे चुभोती है और जिसका भीषण सुनसान दूर से भी भयानक लगता है और इस सुनसान में मरघट की शांति के भीतर से एक आवाज़ उठती है, जो मुझसे पूछना चाहती है कि युधिष्ठिर क्या तुम इसी शांति के लिए लड़ाई लड़ने नहीं गए थे? मेरे अपने ही कर्म व्यंग्य बनकर मुझ पर लौट रहे हैं। मेरी अपनी ही इच्छा और आकांक्षा, तीर बनकर मुझे विदीर्ण कर रही है। ऐसा लगता है कि मैंने जो कुछ सोचा, सब गलत था, जो कुछ किया सब दुष्कर्म था। शकुनि के साथ जुए की बाज़ी हारकर भी मैं मन से हारा नहीं था, किंतु आज तो इतनी बड़ी लड़ाई जीतकर भी अनुभव होता है कि मैं सब-कुछ हार चुका हूँ और पराजय की इस व्यथा का कोई निराकरण भी है, इसकी थोड़ी भी आशा नहीं दिखती।

हस्तिनापुर में आज ऐसा कोई घर नहीं, जिसमें बच्चों की किलकारियों की गूँज हो और युवक आनंद के अट्टहास उठा रहे हों। जीवन के महल को अपनी उमंग से गुंजित रखने वाले नौजवान कुरुक्षेत्र के मैदान में कटकर ढेर हो गए। राजधानी में अगर कोई आवाज़ सुनाई दी है तो वह चूड़ियों के टूटने की आवाज़ है। वह विलख-विलखकर रोने वाली निपूती, माताओं की आवाज़ है, वह सिर और छाती पीटकर चीखती हुई बहनों और विधवा पत्नियों की आवाज़ है। हर एक घर से शोक का धुँआ उठ रहा है। हर एक परिवार किसी-न-किसी वीर की याद में सिसकियाँ ले रहा है। भारत ‘वसुंधरा व मति’ अपनी स्वाभाविक हरियाली को छोड़कर लाल हो

गई है और इस लाली के पीछे युवकों का शोषित ही नहीं, युवतियों का लूटा हुआ सिंदूर भी है।

जहाँ भी जाता हूँ, नारियों को कुरी के समान बिलखते देखता हूँ। दुधमुँहे बच्चे हँसना भी भूल गए हैं, क्योंकि यद्यपि वे यह नहीं जानते कि देश में क्या घटना घटी है।

भारतवर्ष को अपने महारथियों का बड़ा अभिमान था और आज से बीस-बाईस दिन पूर्व तक इस देश में जितने महारथी एक साथ विद्यमान थे, उतने तो इतिहास में और कभी कदाचित् ही, वर्तमान में रहे होंगे। भीष्म, द्रोण और अश्वत्थामा, कर्ण, दुर्योधन और जयद्रथ तथा कृपाचार्य, कृतवर्मा, शल्य और भूरिश्रवा, सात्यकि, उत्तमौजा, अभिमन्यु, द्रुपद, विराट्, घटोत्कच और कुंतिभोज सब युद्ध में उतरे और सब-के-सब उसी में विलीन हो गए।

जब तक युद्ध चल रहा था, हम संग्राम की मादकता में विभोर थे और हमें यह सोचने का अवकाश ही नहीं था कि हम क्या कर रहे हैं।¹⁰

किंतु युद्ध के समाप्त होते ही यह स्पष्ट हो गया कि हम जिस कर्म में इतने उत्साह से लगे हुए थे, वह असल में, अत्यंत घृणित कर्म था और उसे धर्म का विशेषण देना धर्म का नितांत अपमान करना है। युद्ध कभी भी धर्म के पथ पर कहकर लड़ा नहीं जा सकता। हिंसा का आदि भी अधर्म है, मध्य भी अधर्म है और अंत भी अधर्म है।

हर एक हमदर्दी ने दिल की बात ठानी है, हर एक इंसान इस लड़ाई को गौरव के साथ देखता है, लेकिन जहाँ औरतों की आहें, बच्चों का क्रंदन किसी को नज़र में नहीं आया, सच पूछो तो नारी को कोई अधिकार नहीं देना उसका ही कारण है। अगर औरत पर धर्म के नाम लड़ाई जारी करने को कहें तब भी औरत लड़ाई नहीं लड़ेगी। ये लड़ाई अहंकार की, व्यक्ति की खुद की है। जो भी विद्वान् थे, वे गुलाम थे, शोषक थे अगर वे ये कहें कि परंपरा से चले आए धर्म-नियम को बिना सोचे-समझे पकड़ रहे थे।

लेकिन जब कार्ल मार्क्स आए, उन्होंने सारी स्थिति का विधिवत् अध्ययन करके कहा था कि 'गरीबी कोई देवी सत्ताकृत अटल वस्तु नहीं है और न दान इसका उपचार है। दरअसल, समाज में गरीबी इसलिए फैली हुई है कि समाज की पद्धति, शोषण स्वीकार करती है और शोषण से चोर पैदा होते हैं। ये चोर धन जमा करने वाले चोर हैं और ये चोर जब तक मौजूद रहेंगे, तब तक समाज में गरीबी भी कायम रहेगी।'¹¹

अतएव, समाज से गरीबी को दूर करने का तरीका दान नहीं बल्कि क्रांति और उच्छेद है। 'मार्क्स, शायद मानवता के पहले पैगंबर हैं, जिन्होंने गरीबी की सत्ता को स्वीकार नहीं किया।'¹²

गांधी जी और मार्क्स के बीच जो एक प्रकार की खाई खोदी जा रही है, वह उचित नहीं है, क्योंकि जो आदमी मार्क्स के यहाँ से भोगेगा वह गांधीजी के यहाँ भी त्रास नहीं पा सकता। जिसे यह भय है कि मार्क्स उसकी दौलत को छीनकर सर्वहारा में बाँट देगा, वह जब गांधीजी के पास जाएगा तब गांधीजी भी उससे यही कहेंगे कि जो चीजें तुम्हारी हो ही नहीं सकतीं, तुम्हारा धर्म है कि तुम स्वेच्छा से इन फ़ाजिल चीजों को समाज के स्वामित्व में दे दो।

'हिंदुओं का जो दल वर्णाश्रम धर्म का रक्षक और प्रहरी है, वह सदा से यह मानता आया है कि मानवता के उद्धारक और धर्म के त्राता बराबर उच्च कुलों में जन्म लेते हैं।'¹⁴ वह

यह भी मानता है कि ये महात्मा वैदिक धर्म की निंदा नहीं करते, न शास्त्रों की आज्ञा के विपरीत जाते हैं, किंतु वास्तविक जीवन में ये सीमाएँ बहुधा टूटती रही हैं। 'हमने शूद्रों और अंत्यजों को अपने जूतों के पास बिठाए रखने के अनेक प्रयत्न किए, किंतु फिर भी शूद्रों और अंत्यजों के बीच ऐसे-ऐसे महापुरुष उत्पन्न हुए, जिनके सामने ब्राह्मण निस्तेज हो गए।' किंतु ब्राह्मण जब-जब इस प्रकार निस्तेज होने लगे, तब-तब उन्होंने पुराणों में नई-नई कथाएँ डालकर अपनी पद-रक्षा की कोशिश की। बुद्धदेव जन्मे तो उच्च कुल में थे, किंतु शास्त्रों की सीमाएँ, उन्होंने नहीं मानीं और उनकी तेजस्विता इतनी बढ़ी कि ब्राह्मणों ने कालक्रम में उन्हें ईश्वर का अवतार मान लिया।'

और महात्मा दादूदयाल के विषय में भी ठीक यही हुआ। 'वे पेशे से धुनिया मुसलमान थे, किंतु यह बात उनके अनुयायियों को पंसद नहीं आई। वे मानते हैं कि लोदीराम नायक नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी के तट पर एक नवजात बालक बहता हुआ मिला और उसे उठाकर लोदीराम अपने घर ले आए। यही बालक पीछे दादू के नाम से प्रसिद्ध हुआ।'¹⁵

ऐसी ही किंवदंती महात्मा रविदास के पीछे भी उठी। वे जाति के चमार थे, यह उन्हीं की वाणी से सिद्ध है। किंतु चमार कहीं पूजित भी होता है और उसकी शिष्या कहीं रानियाँ भी हो सकती हैं? निदान, उनके बारे में भी यह कहानी गढ़कर जनसमुद्र में तैरा दी गई कि स्वामी रामानंदजी का कारोबार एक चमार के साथ था। स्वामीजी के ठाकुरजी ने उस दिन थाल स्वीकार नहीं किया। पूछने पर जब पता चला कि उनका ब्रह्मचारी शिष्य उस बनिये के यहाँ से सीधा लाया था। तब स्वामीजी ने शाप दिया कि 'जा चमार के यहाँ जन्म ले।' बेचारे ब्रह्माजी ने चमारिन के गर्भ से जन्म तो लिया, पर उसने अछूतों के स्तनों का दूध नहीं पिया, जब स्वामी रामानंदजी ने पूर्व जन्म के ब्राह्मण ब्रह्मचारी को राममंत्र का उपदेश किया, तब कहीं उसने माता के स्तनों का दूध पिया। वह कहानी कितनी कुटिल और विषाक्त है। फिर भी रविदासजी के अनुयायी इस कहानी को कलेजे से लिपटाए हुए हैं—

एक बूँद, एक मल मूत्र, एक चाम, एक गूदा।

एक योनि में सब उत्पन्ना को ब्राह्मण को शूदा।¹⁶

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं दिनकर जी ने अपने साहित्य में पीड़ितों, शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है तथा शोषकों के प्रति घृणा व्यक्त की है। उनके साहित्य को पढ़ने से लगता है कि वह शोषितों-पीड़ितों के सच्चे हिमायती है। उनके संपूर्ण साहित्य में पीड़ित लोगों की करुण पुकार सुनाई देती है।

संदर्भ

1. वेणुवन, दिनकर, पृ० 1
2. वही, पृ० 2
3. वही, पृ० 3
4. वही, पृ० 4
5. वही, पृ० 5
6. वही, पृ० 7
7. वही, पृ० 19

8. वही, पृ० 39
9. वही, पृ० 45
10. रेती के फूल, दिनकर, पृ० 49
11. वेणुवन, दिनकर, पृ० 105
12. वही, पृ० 107
13. वही, पृ० 77
14. वही, पृ० 78
15. वही, पृ० 79
16. वही, पृ० 80

अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से नई कविता

सविता देवी, शोधार्थी
एम०फिल० (हिंदी), नैट
यमुनानगर

अस्तित्ववाद ने नई कविता को सर्वाधिक प्रभावित किया। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् सर्वप्रथम जर्मनी में, तत्पश्चात् अमरीका में भी इसका प्रचार हुआ। युद्ध के पश्चात् समाज में मनुष्य भय, निराशा व असहाय अवस्था के कारण संतुष्ट हो उठा। इसी भावना का प्रतिबिंब अस्तित्ववाद में है। पूँजीवादी युग की यांत्रिकता ने मनुष्य की स्वतंत्रता का अपहरण कर उसकी बुद्धि को कुंठित कर दिया, जिससे उसका जीवन निष्क्रिय बन गया। अतः मनुष्य को सृष्टि का केंद्रबिंदु मानकर उसके अस्तित्व का प्रश्न उठाया गया। यही अस्तित्ववाद की उपलब्धि है। यह दर्शन किसी एक दार्शनिक या चिंतक द्वारा निर्मित दर्शन नहीं, इसके अनेक तत्व अनेक दार्शनिकों के लेखों व कृतियों में उपलब्ध होते हैं, परंतु उनमें से कीर्कगार्ड, नीत्शे, हैडेगर, मार्सल, सार्त्र और कामू प्रमुख हैं।

अंग्रेजी कविता की नवीन प्रवृत्तियों का भी नई कविता पर प्रभाव द्रष्टव्य है। वैज्ञानिक विकास के कारण दुनिया सिमट गई है। समय व दूरी पर मनुष्य ने विजय पा ली है। यह कारण है कि आज जीवन की किसी भी घटना का प्रभाव विश्वव्यापी होता है। साहित्यकार समाज का संवेदनशील व जागरूक प्राणी है। अतः विभिन्न आंदोलनों का उस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। विदेशी साहित्य में नए कवियों की रुचि होने के कारण उस साहित्य का उन पर पर्याप्त प्रभाव है। हैडेगर ने मनुष्य को असहाय व करुण प्राणी कहा है। नियति के कठोर प्रहारों को उसे झेलना पड़ता है। अस्तित्ववान मनुष्य हो सकता है, क्योंकि अस्तित्व के प्रकाशन में सक्षम है। मृत्युबोध वैयक्तिकता के निर्माण में सहायक है। उसे लगता है मृत्यु का सामना उसे अकेले करना है। मार्सल ने नैतिकता पर बल दिया है। उसे कर्म की स्वतंत्रता है। 'सार्त्र' ने मनुष्य को विश्व के केंद्र में स्थापित कर सृष्टि का चरम लक्ष्य स्वीकार किया। स्वतंत्रता उसकी प्रमुख सत्ता है। परिस्थितियाँ उसे शासित करती हैं, परंतु उसकी स्वतंत्रता अविभाज्य है। परिवेशगत असुरक्षा का भाव उसके सामने है, इससे वह अपनी स्थिति के प्रति आर्शकित है। इस आशंका-असुरक्षा ने उसके जीवन को खंड-खंड कर दिया है। अतः परिवेश के साथ वह निरंतर टकराता जा रहा है। इससे उसकी मानवीयता नष्ट हो गई है। विसंगतियों के संसार में अभिशप्त अकेले मनुष्य की गाथा कहना ही कामू के चिंतन का विषय है। विसंगति की परिभाषा कामू के अनुसार— विसंगति हमारे सम्मुख उस वस्तु के रूप में उपस्थित है, जो आनुसंगिक जीवन की मानवीय इच्छा और उसके विरोध में प्रस्तुत विश्व की विरोधी अवधारणा एवं अतार्किकता के मुकाबले से उत्पन्न होती है।'

मनुष्य भीड़ में अकेला है। वह अपने अस्तित्व का बोध करता है, परंतु दूसरे को अपने

अस्तित्व का बोध नहीं करा सकता। अपने अस्तित्व का ज्ञान सुख-दुःखादि विचार प्रतीकों द्वारा ही दूसरों को कराया जाता है, परंतु ये प्रतीक जड़ व स्थिर हैं। मनुष्य का अस्तित्व जड़ व स्थिर नहीं है। अतः अस्तित्व का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है।² अस्तित्ववादी दर्शन की कुछ विशेषताएँ स्पष्टतः उभरकर आती हैं। अस्तित्व, वरण की स्वतंत्रता, संत्रास, अलगाव, व्यर्थता-बोध, तनाव, मृत्युबोध आदि प्रमुख हैं। 'वह वस्तु अस्तित्ववान है, जिसकी उपस्थिति का भान होता है और जो दूसरी वस्तुओं के साथ संबद्ध है।

अस्तित्ववादी भावबोध गिरिजाकुमार माथुर, श्री नरेश मेहता, कुँवरनारायण, मुक्तिबोध, अज्ञेय, श्रीकांत वर्मा, धर्मवीर भारती, विजयनारायणदेव साही व सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में उपलब्ध है।

अस्तित्ववादी दृष्टि से नई कविता

अज्ञेय के काव्य में जिस जिजीविषा का वर्णन है, वह अस्तित्व का ही एक रूप है। अस्तित्व के लिए ही संघर्ष है। अज्ञेय ने यथार्थ जीवन की विकृतियों, विसंगतियों, मूल्यों की टकराहट भयावहता व भटकाव सभी का अनुभव किया। ये यहीं आकर रुके नहीं, उससे भी आगे बढ़ते हैं। उनकी खोज निरंतर जारी है। तड़पती हुई मछली लोगों की सौंदर्य-पिपासा का परिहार करती है—

हम निहारते रूप
काँच के पीछे
हाँफ रही है मछली
रूपतृषा भी
(और काँच के पीछे)
है जिजीविषा।³

अज्ञेय प्रणय से वेदना के धरातल तक पहुँच जाते हैं। वेदना से उन्हें शक्ति मिलती है, उनके व्यक्तित्व का परिष्कार होता है। यह दर्द अज्ञेय के काव्य में दर्शन के रूप में उभरकर आता है। यह मनुष्य को कमजोर नहीं बनाता। दर्द में दीप्ति है और यही जीवन का सत्य है—

लारेंस कहता है कि हाँ: मुझे दिन का टूटना ही पसंद है
कि उसकी फाँक में भोर के विविध रंग फाँक सकें
मैं नहीं जानता
रंग फाँकोगे/ तो क्या
किसके लिए
कि जब तक गिरकर/ फूटकर
बिखरेगा नहीं
तब तक भौर रंगों का खरा सौंदर्य
निखरेगा नहीं।⁴

कवि टूटकर बिखर जाना चाहता है, क्योंकि टूटने में सौंदर्य की अभिवृद्धि होती है। अस्तित्ववाद क्षणबोध को भी स्वीकारता है। सत्य को मापने के लिए क्षण को जानना होगा। क्षण

समय की अखंड इकाई है। व्यक्ति क्षण-क्षण में जीवन जी रहा है, उसका उपभोग ही उसे संपूर्णता प्रदान करता है, 'सर्जना के क्षण' कविता में अज्ञेय कहते हैं कि यदि क्षण-क्षण का उपभोग करता हुआ व्यक्ति अभिभूत हो जाता है, तभी सर्जन होता है—

एक क्षण भर और

लंबे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते।

बूँद स्वाति की भले हो, बेधती है मर्म सीपी का उसी निर्मल त्वरा से

वज्र जिसमें फोड़ता चट्टान को

भले ही फिर व्यथा के तम में बरस पर बरस बीतें

एक मुक्ता-रूप को पकते।⁵

'मैंने देखा एक बूँद' में क्षण-क्षण में अंकित होने वाले भावों को अभिव्यक्ति मिली है। बूँद पर पड़ती रक्तिम किरणों को देख कवि क्षण को रूपायित करता है। पानी की नन्ही बूँद पर पड़ती सूर्य की किरण से वह बूँद को जगमगाता हुआ निहारकर कवि उस अनुभूति को अंकित करना चाहता है। जो क्षण-विशेष में हुई हैं—

मैंने देखा

एक बूँद सहसा/ उछली सागर के झाग से

रंग गई क्षणभर/ ढलते सूरज की आग से।⁶

उपन्यासकारों से अपनी भिन्नता बताते हुए सार्त्र कहते हैं कि इनके उपन्यासों में यदि पात्र दुराचरण करते हैं तो इसके लिए सामाजिक परिवेश जिम्मेदार है अथवा उन्होंने कुसंस्कार विरासत में पाए हैं, किंतु जब अस्तित्ववादी लेखक किसी कायर का चित्रण करता है तो वह दिखलाता है कि अपनी कायरता के लिए वह कायर ही जिम्मेदार है। 'अँधेरे में' कविता का नायक अपनी कायरता के लिए न केवल स्वयं को धिक्कारता है, बल्कि शहर में मार्शल लॉ लगने के लिए स्वयं को उत्तरदायी भी ठहराता है—

मानो मेरे कारण ही लग गया/ मार्शल लॉ वह

मानो मेरी निष्क्रिय संज्ञा ने संकट बुलाया,

मानो मेरे कारण ही दुर्घट/ हुई यह घटना।⁷

कीर्केगार्ड ने मनुष्य की भूलों, अपराधभावना, पाप-संबंधी चेतना आत्मसंघर्ष द्वारा मुक्ति व ईश्वर की प्राप्ति पर बल दिया। मनुष्य भौतिकता में फँसा हुआ है। अतः सुख-सुविधा के लिए अपना ईमान बेचकर पाप-भावना से ग्रस्त हो जाता है। आदमी ने ईश्वर की आज्ञा न मानकर ज्ञान का फल चखा था। तबसे दुनिया में मृत्यु और दुःख का साम्राज्य स्थापित हुआ। मनुष्य को ईश्वर और शैतान दोनों में से एक को चुनना है। सच्चे मन से अपने पाप के लिए साक्षात्कार करता है। 'भूलगलती' कविता में भूल दिल के तख़्त पर सुल्तान की तरह बैठी है। सामने कैदी ईमान है, जिसकी निगाह के सामने बख़्तरबंद समझौते सहम जाते हैं। कोई फौज इकट्ठी कर रहा है, वह हमारी हार का बदला चुकाने आएगा और—

संकल्पधर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर

हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर

प्रकट होकर विकट हो जाएगा।

‘शून्य’ कविता में भी भूल है। ये भूलें हथियारबंद हैं, मनुष्य इन्हें देखकर डर रहा है, क्योंकि ये इस संसार की भूले नहीं हैं। शैतान के चंगुल में फँसकर ही मनुष्य ऐसी भूलें करता है—

जगह-जगह दाँतदार भूल,
हथियारबंद गलती है,
जिन्हें देख, दुनिया हाथ मलती हुई चलती है।⁹

निराशा द्वंद्व उत्पन्न करती है और निराशा का चरम शिखर ले जाता है मृत्यु की ओर। यही मृत्यु उसके जीवन को प्रामाणिकता देती है। यहाँ से वह पुनः लौटता है—जीवन की ओर। यह प्रक्रिया जीवन में कई बार होती है। कभी वह आमघात करना चाहता है तो कभी एक दर्शनिक की भाँति चिंतक बन जाता है। मृत्यु से केवल निराशा नहीं, दृष्टिकोण जन्म ले सकता है। कुँवरनारायण का नचिकेता एक ऐसा ही प्राणी है—

और तुम हमारी ओर-हम जो अभी आने वाले हैं
संदेह से देखते हो अपना संचय
छोड़ जाने से पहले क्योंकि हम उसे
तुम्हारे अनुकरण से बृहत्तर कोई
विशिष्टता देना चाहते हैं।¹⁰

कुँवरनारायण के काव्य में ‘आत्मजयी’ का नचिकेता ऐसा ही प्राणी है, जो अस्तित्ववादी आत्मबोध की यंत्रणाओं से गुजरता है। वह एक ऐसा जिज्ञासु है, जो भीड़ के प्रपंच में पूर्णतः जकड़ा हुआ है। इतना ही नहीं, स्वयं को आत्महंता भी घोषित कर देता है। नचिकेता अपनी चेतना को कायासापेक्ष समय से मुक्त कर लेता है और विशुद्ध ‘अस्तित्वबोध’ रह जाता है। जीवन में चिंतन के समस्त क्रम में वह एक इकाई रह जाता है। आत्महत्या के बिंदु तक पहुँचकर पुनः जीवन की ओर लौटता हुआ दिखलाई पड़ता है, क्योंकि वह निरंतर अस्तित्व की खोज में है। वह अकेलेपन में ही प्रसन्न है, क्योंकि पिता के झूठे आश्वासन उसे नहीं चाहिए—

मैं युग निर्वासित हूँ
आजीवन वनवासी।
राजपाट परित्यागी।
भटक रहा किसी ध्येय विविधपंथ संन्यासी।
घर में बहिष्कृत हूँ।¹¹

इस अकेलेपन के कारण उसे लगता है कि वह अपनों से बहिष्कृत होकर अजनबी-सा है। उसके जीवन में व्यथा ही व्यथा है। वह अनबुना सूत है। जीवन में असाध्य दूरियाँ हैं, जिन्हें पार करने के लिए भटकता है। जब उसे चारों ओर शून्यता नज़र आती है और स्वयं को भीड़ में अकेला पाता है—

तुम्हारी मान्यताएँ वह परिधि है
जिससे केवल शून्य बनते हैं
तुम्हारा व्यक्तित्व वह इकाई है
जिससे केवल संख्याएँ बनती हैं

मैं समूह से विच्छिन्न हूँ।¹²

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में भी व्यर्थता-बोध दिखलाई पड़ता है। इसी बोध ने मृत्यु के समक्ष उसे अकेला खड़ा कर दिया है, अकेले ही जीवन-यात्रा करनी है। इस अकेलेपन से उसे लगता है कि वह स्वयं से ही निर्वासित है। उसे लगता है भीतर कुछ है, जिससे उसे भय लगता है—

कभी-कभी ऐसा लगता है
कि मुझे मेरे शरीर से अलग कहीं
प्रतिष्ठित कर दिया गया है
मैं अपने ही तन से निर्वासित हूँ।¹³

इस प्रकार वह निर्वासन की व्यथा को निश्चित रूप से भोगता है। यह निर्वासन का दर्द गहरा हो उठता है, जहाँ उसे लगता है कि उसकी अपनी परछाइयाँ ही उससे विद्रोह करने लगती हैं। वह स्वयं से निर्वासित है अतः आत्मपीड़ा को भोगता है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में मृत्यु का गहरा अहसास है। उनके अनुसार एक अनंत मौन है, एक बिंदु है, जहाँ से हर अभिव्यक्ति, हर कथन टकराकर शून्य में लौट आता है। 'अंत में' कविता इस भावबोध को स्पष्ट करती है—

अब मैं कुछ कहना नहीं चाहता
सुनना चाहता हूँ
एक समर्थ सच्ची आवाज़/ यदि कहीं हो।
अन्यथा
इससे पूर्व कि/ मेरा हर कथन
हर मंथन/ हर अभिव्यक्ति
शून्य से टकराकर फिर वापिस लौट आए
उस अनंत मौन में समा जाना चाहता हूँ
जो मृत्यु है।¹⁴

भय व संत्रास का भी चित्रण यहाँ मिलता है। ये केवल बाह्य परिस्थितियों की ही उपज नहीं, कभी-कभी व्यक्ति के मन में भी जन्म लेते हैं। भय का ठोस कारण नहीं। मानव परिवेश से ही डरने लगता है—

कभी-कभी
पैरो की आवाज़ पूछती है
किधर जा रहे हैं हम?
अपने-आपसे डर लगने लगता है।¹⁵

कभी-कभी नागफणी के टीले उसे अपने भीतर नजर आते हैं। संध्या साँप की भाँति प्रतीत होती है। पेड़ का तना अजगर बनता जाता है। इससे व्यर्थता-बोध व शून्यता-बोध से वह भर जाता है। सिसिफस की भाँति जीवन का भार पीठ पर लादे है। उसे भीतर के भय ने इतना पंगु बना दिया है कि वह आत्मनिर्वासन की व्यथा को भोगता हुआ कहता है—

कभी-कभी ऐसा लगता है

कि मुझे मेरे शरीर से अलग कहीं
प्रतिष्ठित कर दिया गया है
मैं अपने ही तन से निर्वासित हूँ¹⁶

धर्मवीर भारती की कविताओं में अस्तित्ववाद की नैराश्य भावना, कुंठा, पीड़ा आदि को अभिव्यक्ति मिली है। ठंडा लोहा काव्य-संग्रह में पहली कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

मेरी दुखती हुई रंगों पर ठंडा लोहा/
मेरी स्वप्न-भरी पलकों पर
मेरे गीत-भरे होठों पर
मेरी दर्द-भरी आत्मा का
स्वप्न नहीं अब/ दर्द नहीं अब
एक पर्त ठंडे लोहे की।¹⁷

‘अंधायुग’ में अंतर्द्वंद्व, त्रास, घुटन आदि की विद्रूपता का चित्रण है। चौथे अंक में अश्वत्थामा पांडव पुत्रों का वध करता है। संजय की दृष्टि समाप्त हो चुकी है और युयुत्सु घोर अंतर्द्वंद्व में दिखाई पड़ता है। पाँचवें अंक में ‘विजय एक क्रमिक आत्महत्या’ के प्रसंग में कवि स्थूल घटनाओं से आगे बढ़कर युद्ध के ध्वंस के परिणामस्वरूप अहंकारग्रस्त मानसिकता की विद्रूपता का चित्रण करता है। युयुत्सु जिसने धर्म का पक्ष लिया था, आत्महत्या कर लेता है। धृतराष्ट्र कहता है—

संजय/ अब सब प्रयत्न व्यर्थ हैं
छोड़ दो तुम मुझे यहीं
जीवन-भर मैं
अंधेपन के अँधियारे में भटका हूँ।¹⁸

श्री नरेश मेहता की कविताओं में भी अस्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं। आज परंपरागत मूल्यों का विघटन हो रहा है और नवीन मूल्यों का अनुसंधान। अतएव मानव-जीवन को अर्थवत्ता देने का प्रयास हर क्षण करता जा रहा है। व्यक्ति का अस्तित्व शरीर के रूप में ही जाना जाता है। अतः अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष अनिवार्य है। इस संघर्ष में कभी वह डूबता है, कभी उबरता है। वह द्वंद्वग्रस्त व तनावग्रस्त रहता है। कारण कि उसका व्यक्तित्व खंडित व्यक्तित्व है। श्री नरेश मेहता के बहुत-से पात्र इस समस्या से जूझ रहे हैं। आज स्वार्थ व परमार्थ का, मर्यादा व दायित्व का, युद्ध और शांति का, संकल्प व विकल्प का संघर्ष व मूल्यों में टकराव है। इस वैचारिक चक्रव्यूह में फँसा हुआ व्यक्ति शक्ति, संकल्प व पुरुषार्थ सब-कुछ के होते हुए भी नगण्य-सा हो गया है, क्योंकि वह भीतर से टूटा हुआ है—

यह कैसी विवशता है/ व्यक्ति की
समस्त शक्ति संकल्प और पुरुषार्थ के होते हुए भी
वह नगण्य हो जाता है।¹⁹

मृत्यु जीवन का अनिवार्य सत्य है, उसकी भयावह वेदना हम सबको सहन करनी पड़ेगी। मृत्यु हिम के व्याघ्र के समान है। यह कहीं भी कोई पदचिह्न नहीं छोड़ती, परंतु क्षण-क्षण की सहयात्री है, परंतु मृत्यु के समय वह अकेला ही है—

मृत्यु अपना कोई पदचिह्न
न हिम
न आकाश
न समय किसी पर नहीं छोड़ती
पर प्रत्येक के साथ प्रत्येक क्षण सहयात्री है।²⁰

मृत्यु का वर्णन श्री नरेश मेहता ने किया है कि मृत्यु प्रत्येक क्षण व्यक्ति के साथ है। इसका कोई चिह्न नहीं, परंतु इसका अहसास क्षण-क्षण में व्यक्ति को होता चलता है। इस समय उसका कोई साथी नहीं, उसे यह सब अकेले ही भोगना है। व्यक्ति मात्र शरीर से नहीं मरता, दार्शनिक रूप में जीवन में कई बार मरता है। व्यक्ति की मृत्यु स्वीकार करनी ही है, यही जीवन की सत्यता है

गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में भी अस्तित्ववादी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं—
यह मैं/ मेरा व्यक्तित्व-बोध
क्षण जीवन का उपयोग परम
पंखों-सी गिरी शिलाएँ
जिसकी चमकदार
पंखों की नियति छूट जाना
दुःख की अनुभूति नियति क्षण की
आगम की नियति विलय होना।²¹

आज का व्यक्ति बाहरी व भातरी संघर्षों को झेल रहा है। वह 'टेंशन' व 'हॉरर' का शिकार है। न बाहरी शक्ति शेष है, न भीतर का विश्वास। उसकी स्थिति है—

अपने में लीन
किंतु आत्मविश्वासहीन
तबियत है काँटे पर
दोष सभी रखता है
किस्मत के माथे पर।²²

क्षणबोध भी माथुर की कविताओं में दिखाई पड़ता है। क्षणों का पूरा उपभोग कर कवि जीवन में सार्थकता पाना चाहता है। ऐसी क्षणानुभूति का बिंब 'रात का हेयर पिन' कविता में स्पष्ट किया गया है—

किशमिसी ऊन की/ बाहदार याद में
लोकचित्र के गहरे रंग-सा
एक काँटेदार ऊष्म क्षण
लंबा हो अटका है।²³

प्रेमभाव की ऊष्मा का अनुभव जिस क्षण-विशेष में किया है, वह चिरकाल तक रहने वाला है। व्यक्ति की टूटन और अर्थहीनता की भूमि अस्तित्ववादी चेतना का स्पर्श करती है, जीवन और संस्कृति की टूटन व्यक्तित्व में समाकर उसे अर्थ देती जान पड़ती है। ऐसे ही क्षणों में कवि उन स्थितियों को स्पर्श करता हुआ नज़र आता है कि जिनके निर्माण के लिए वह स्वयं

उत्तरदायी नहीं है। ऐसी स्थिति में वेदना का जन्म स्वाभाविक है—

मैंने देखा—

मैं एक भूकंप दबे नगर के नीचे फिरता हूँ

घबराया हुआ

जहाँ हर तरफ़ टूटे-मुँदे दरवाजे हैं

मलवे भरी गैलरियाँ

भयराये बरामदे हैं।

बाहर निकलने का उपाय/ अब कोई नहीं है

धूप अँधेरे वाली

एक अंधी बंद दुनिया है

जो मैंने न रची थी/ न माँगी थी

वह दुनिया मेरी है।²⁴

ऐसा परिवेश जिससे कवि बाहर निकलने के लिए निरंतर आत्मपीड़ा से गुज़रता है, अस्तित्ववाद का सकारात्मक पक्ष है। 'कामू' ने जिस निजी विद्रोह की बात की, वह दायित्व की चेतना का परिणाम है। जीवन की अवांछित स्थितियों में दो मार्ग रह जाते हैं—एक है समर्पित होकर टूट जाना और दूसरा ऐसी अवांछित स्थिति को समाप्त करते हुए टूटना। दूसरी स्थिति में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के प्रति सतर्क रहते हुए सार्थकता तक पहुँचता है।

अज्ञेय की कविता में भी अस्तित्व की खोज दिखलाई पड़ती है, परंतु विभिन्न स्तरों पर। सत्यान्वेषण इसी प्रक्रिया के रूप में है। सत्यान्वेषण जीवनसत्य को पाने का ही उपक्रम है। अर्थवता पाने का प्रयास है। यही प्रयास आत्मान्वेषण की भूमिका पर स्थित है। इस अन्वेषण में कवि को कई सत्य दिखलाई पड़ते हैं। कोई भी सत्य अंतिम सत्य मालूम नहीं होता। यह अन्वेषण अवांतर गति से चलता है। आत्मान्वेषण करता हुआ कवि मौन हो जाता है। जब सारे माध्यम मौन हो जाते हैं तो वह इस भूमिका पर स्थित हो जाता है। यही उसका जीवनसत्य है, जिजीविषा का रूप लिए है। सत्ता की निजता का भूलना ही आत्मान्वेषण है। इसमें व्यक्ति लुप्त हो जाता है, परंतु यह अन्वेषण तो अंतहीन संग्राम है—

कितनी बार में

धीर, आश्वस्त, अक्लांत

ओ मेरे अनबुझे सत्य/ कितनी बार—

और कितनी बार कितने जगमग जहाज़

मुझे खींचकर ले गए हैं कितनी दूर

किन् पराए देशों की बेदर्द हवाओं में

जहाँ नंगे अँधेरे को

और भी उघाड़ता रहता है।²⁵

सत्य की तालाश में कवि आगे बढ़ता है और हर कदम उसको नवीन सत्य की उपलब्धि होती है। इसके लिए ही तो जीवन में द्वंद्व, संघर्ष, तनाव सब-कुछ बना रहता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बहुत से अस्तित्ववादी तत्त्व नई कविता में उपलब्ध होते हैं। अस्तित्व के दर्शन भारतीय चिंतन में भी उपलब्ध हैं, परंतु पाश्चात्य दर्शन में 'वाद' के रूप में यह आया। अतः इसे पाश्चात्य दर्शन माना जाता है, परंतु इसके कुछ तत्त्व भारतीय दर्शनों में भी उपलब्ध हैं। मूल्यहीनता या मूल्यों के विघटन को रोकने के लिए कविता मनुष्य की आंतरिकता को स्थापित करना चाहती है। नई कविता जीवनमूल्यों की कविता है। यह मानव की पुनः प्रतिष्ठा का प्रयत्न ही उसे अस्तित्ववाद से जोड़ देता है।

संदर्भ

1. श्यामसुंदर मिश्र, अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिंदी साहित्य, पृ० 48
2. लालचंद गुप्त मंगल, अस्तित्ववाद और नई कहानी, शोधप्रबंध प्रकाशन, दिल्ली पृ० 32
3. अज्ञेय, सदानीरा भाग-2, पृ० 23
4. वही, भाग-2, पृ० 188
5. वही, भाग-1, पृ० 305
6. वही, भाग-1, पृ० 43-44
7. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 244
8. वही, पृ० 3
9. वही, पृ० 144
10. कुँवर नारायण, आत्मजयी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली पृ० 5
11. वही, पृ० 17
12. वही, परिवेश हम तुम, पृ० 34
13. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कविताएँ 1, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ० 255
14. वही, पृ० 256
15. वही पृ० 177
16. वही, पृ० 242
17. धर्मवीर भारती, ठंठा लोहा, पृ० 1
18. धर्मवीर भारती, ठंडा लोहा, अंधायुग, पृ० 115
19. श्री नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृ० 90
20. वही, पृ० 111-112
21. गिरिजाकुमार माथुर, शिलापंख चमकीले, पृ० 41-42
22. वही पृ० 22-23
23. गिरिजाकुमार माथुर, भीतरी नदी की यात्रा, पृ० 23
24. गिरिजाकुमार माथुर, जो बँध नहीं सकता, पृ० 7
25. अज्ञेय, सदानीरा भाग-2, पृ० 172

पत्नी श्री रजनीश आर्य
ग्राम व पोस्ट अलाहर, राडौर
तहसील जगाधरी (यमुनानगर) 135001
मो० 09992318557

ऐतिहासिक रोमांस की परंपरा में बाणभट्ट की आत्मकथा का योगदान

डॉ० रूपिका भानोट

हिंदी प्रवक्ता

कन्या महाविद्यालय, जालंधर

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी के शीर्षस्थानीय साहित्यकारों में अग्रणी माने जाते हैं। निबंध, उपन्यास, आलोचना, चिंतन, शोध के क्षेत्र में अपनी अद्वितीय प्रतिभा की अनुपम छाप छोड़ने वाले द्विवेदी जी का व्यक्तित्व गरिमामय, चितवृत्ति उदार और दृष्टिकोण व्यापक है। 'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' मूलमंत्र पर अगाध आस्था रखने वाले द्विवेदी जी ने भारतीय संस्कृति के समर्थ चिंतक एवं व्याख्याता रहे हैं। अपने प्रकांड पांडित्य, मौलिक सूझबूझ और सत्यान्वेषी सूक्ष्मदृष्टि के बल पर अपने सांस्कृतिक अन्वेषण को अपनी कलादृष्टि में चरितार्थ करने वाले आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने साहित्य की जिस भी विधा को छुआ, उसे एक नवीन आभा से आलोकित किया। द्विवेदी जी के अनेकविध साहित्यिक व्यक्तित्व में उनका उपन्यासकार का रूप अत्यंत महत्वपूर्ण एवं चर्चित रहा है। अनामदास का पोथा, पुनर्नवा, बाणभट्ट की आत्मकथा एवं चारुचंद्र लेख द्विवेदी जी के चारों उपन्यास उनके ऐतिहासिक चिंतन एवं स्वस्थ इतिहास दृष्टि के परिचायक हैं और हिंदी उपन्यास परंपरा में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

कथावस्तु के आधार पर 'अनामदास का पोथा' औपनिषदिक युग से संबंधित है। 'पुनर्नवा' की कथा समुद्रगुप्त के राज्यारोहण से तथा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का कथानक हर्षवर्द्धन के शासनकाल और तत्कालीन समाज से जुड़ा है। 'चारुचंद्र लेख' में गहड़वाल राजा जयतिचंद्र की पराजय के बाद के समाज का चित्रण है।

द्विवेदी जी के उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास न होकर सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपन्यासों का मिश्रित रूप हैं। अतः शुद्ध ऐतिहासिकता निभाने का यहाँ न तो प्रण है और न ही कोई प्रतिबद्धता। इसी क्रम में इतिहास, संस्कृति और कल्पना के समन्वय से प्रणीत बाणभट्ट की आत्मकथा को उपन्यास-रचना के क्षेत्र में द्विवेदी जी के अभिनव एवं चर्चित प्रयोग के रूप में देखा जाता रहा है।

बाणभट्ट की आत्मकथा 'हर्षचरित' एवं 'कादंबरी' के प्रणेता संस्कृत के यशस्वी कवि बाण के प्रारंभिक जीवन की घटनाओं पर आधारित है। उपन्यास की कथा को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है—

बाणभट्ट, अपनी नाट्यमंडली की एक समय की नर्तकी निपुणिका के निवेदन पर

स्थाण्वीश्वर के छोटे राजकुल से देवपुत्र तुवुरमिलिंद की कन्या चंद्रदीधिति को निकाल सुगतभद्र और कृष्णवर्दन की सहायता से उसे मगध की ओर ले जाने का प्रयत्न करता है, किंतु मार्ग में आभीर सामंत ईश्वर सेन के सैनिकों से भयभीत होकर भट्टिनी के नदी में कूद पड़ने पर उसकी रक्षार्थ प्रयत्न करते हुए भी वह भट्टेश्वर लोरिक देव के यहाँ पहुँच जाता है। कृष्णवर्द्धन के मैत्री संदेश पर वह पुनः निपुणिका और भट्टिनी के साथ स्थाण्वीश्वर आ जाता है। उपन्यास की इस मूल अधिकारिक कथा के साथ अघोरभैरव-महामाया तथा सचुरिता-विरतिवज्र की दो प्रासंगिक कथाएँ भी विद्यमान हैं, जिनका लक्ष्य तत्कालीन धर्मोपासनाओं की अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत उपन्यास में निपुणिका और भट्टिनी तथा उपर्युक्त प्रासंगिक कथाएँ कल्पनाप्रसूत हैं, शेष घटनाएँ बाण के 'हर्षचरित्र' एवं हर्ष प्रणीत 'रत्नावली' के आधार पर ऐतिहासिक कही जा सकती हैं।

वस्तुतः बाणभट्ट की आत्मकथा हर्षकालीन भारतीय परिवेश को आधार बनाकर लिखी गई एक ऐतिहासिक रोमांस सृष्टि है, जिसमें रोमांसपरक उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियों तो परिलक्षित होती रही है। साथ-ही-साथ उपन्यास में आद्योपांत वह रोमांसिक दृष्टि क्रियाशील नजर आती है, जिसने काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर उपन्यास की विषय-वस्तु एवं मंतव्य को मूल मानवीय सरोकारों से जोड़ दिया है।

ऐतिहासिक रोमांस की दृष्टि से बाणभट्ट की आत्मकथा का विवेचन करने से पूर्व हमें उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस की अवधारणा को संक्षेप में समझ लेना जरूरी है।

उपन्यास कथा की नवीनतम विधा है। 18वीं सदी में रोमांस से नॉवेल के रूप में परिणत हुआ उपन्यास आधुनिक युग के जटिल एवं बहुस्तरीय यथार्थ की विशद, व्यापक तथ्याधारित एवं सश्लिष्ट अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। कविता, कहानी, नाटक, निबंध को पीछे छोड़कर आज उपन्यास साहित्य जगत में वही स्थान रखता है, जो कभी महाकाव्यों को प्राप्त था। आज उपन्यास राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेकानेक विषयों को आधार बनाकर लिखे जा रहे हैं। उपन्यास के इन विविध रूपों में इतिहास को आधार बनाकर लिखे जाने वाले उपन्यासों का साहित्य में अपना महत्त्व है। अतीत के साहित्यिक पुनर्निर्माण में इतिहास के उपयोग को दो भिन्न कोणों से देखा जा सकता है— ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रोमांस। ऐतिहासिक उपन्यास पर्यायपरक होता है। लेखक अधिक-से-अधिक तथ्यों पर आश्रित रहकर ही उपन्यास रचना में प्रवृत्त होता है। कल्पनात्मक पात्रों एवं घटनाओं का भी सृजन भी किया जा सकता है, परंतु वे इतिहास की मूल प्रवृत्ति के विपरीत नहीं होने चाहिए।

जब ऐतिहासिक उपन्यास में रोमांस के तत्त्व मिल जाते हैं तो वह ऐतिहासिक रोमांस बन जाता है। ऐतिहासिक रोमांस की मुख्य प्रवृत्तियों में अतीत प्रेम, साहसिकता, शौर्य, प्रेम की प्रधानता, कल्पना, भावनाएँ, आवेग एवं संवेग, सौंदर्य तथा प्रकृति आदि का चित्रण एवं विवरण मुख्य है। इसके पात्र सामान्यतः 'टाइप' होते हैं। हिंदी में ऐतिहासिक रोमांस-लेखन की कोई अलग परिपाटी नहीं रही है। अपितु ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा में लेखकीय कल्पना एवं रोमांटिक दृष्टि के अनुपात से रोमांस के तत्त्व न्यूनाधिक रूप से उभरे हैं। इस दृष्टि से हिंदी में ऐतिहासिक रोमांस के विकास को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है। प्रथम चरण में किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री द्वारा विरचित वे तिलस्मी एवं ऐय्यारी उपन्यास आते हैं,

जिसमें जीवन के यथार्थ की उपेक्षा कर अतिशय कल्पना से रहस्य, रोमांच कौतुहल, उन्मुक्त श्रृंगार-वर्णन एवं अतिमानवीय तत्त्वों के संयोजन से पाठकों को चमत्कृत कर उनका मनोरंजन करना ही लेखक का मूल उद्देश्य है। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों एवं यथार्थ के अन्वेषण के प्रति लेखकों में कोई विशेष आग्रह नहीं है। किंतु एक साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास मूलतः यथार्थ पर आश्रित रहता है। इसलिए ऐतिहासिक रोमांस में भी नितांत काल्पनिक अतीत को कथानक का आधार बनाकर ऐतिहासिक तथ्यों पर यथार्थ की अवहेलना करना उपन्यास की उपयोगिता को सीमित कर उसकी विश्वसनीयता को संदिग्ध बना देता है। यही कारण है कि ऐतिहासिक रोमांस के द्वितीय चरण के उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा ने गढ़ कुंढार, 'विराटा की पड़िनी' 'मृगनयनी' में चतुरसेन शास्त्री के 'वैशाली की नगरवधू' में यशपाल के 'दिव्या और अमिता' उपन्यासों में इतिहास, कल्पना एवं औपन्यासिक तत्त्वों के अद्भुत सम्मिलन से ऐसा वातावरण तैयार किया है, जिससे ऐतिहासिक रोमांस के रूप में उनकी शक्ति द्विगुणित हो उठी है। रोमांस के तत्त्व ऐतिहासिक तथ्यों एवं औपन्यासिक कला का संस्पर्श पाकर अधिक कलात्मक एवं विश्वसनीय हो उठे। लेकिन वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों की अपनी सीमाएँ हैं। उनमें दृष्टि की वह गहराई प्राप्त नहीं होती जो अपेक्षित थी। इनमें कोई काल उस यथार्थ ढंग से हमारे सामने सजीव नहीं होता जैसे वाल्टर स्काट के उपन्यासों में। वर्मा जी मूलतः किस्सागो शैली के उपन्यासकार थे और सरस मनोरंजक ढंग से कथा प्रस्तुत कर आदर्श निरूपण करना ही उनका उद्देश्य था। कहीं-कहीं यह आदर्शवाद इतना जड़ हो गया है कि सारी स्थितियाँ बड़ी अस्वाभाविक प्रतीत होने लगती हैं। इसी प्रकार यशपाल के उपन्यासों में उनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण के लिए विशेष आग्रह मूल मंतव्य के रूप में मुखर होकर उपन्यास के ऐतिहासिक रस में बाधा पहुँचाता है।

ऐतिहासिक रोमांस के प्रवृत्त्यात्मक विकास की दृष्टि से यदि हम बाणभट्ट की आत्मकथा का विवेचन करें तो स्पष्ट ही लक्षित किया जा सकता है कि इस उपन्यास में ऐतिहासिक रोमांस की प्रचलित प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार—रोमांस शब्द 'रोमन' से निकला है जिसका अर्थ है 'असाधारण'। अर्थात् रोमांस के पात्र लाखों में एक होंगे और उनका दर्शन विरल होगा। रोमांस (उपन्यास) में कथा-काव्य के उपकरणों के सहारे अपने स्वरूप को प्रकट करती है। इसमें कथा थोड़ी-बहुत जटिल होती है अनेक कथाएँ आकर जुड़ने लगती हैं। रोमांस उपन्यासों की वर्णवस्तु सीमित होती है। इसका नायक उच्च वंशोत्पन्न राजा अथवा धर्मात्मा होता है। पात्र व्यक्ति नहीं 'टाइप' होते हैं। नायिका सुंदरता की देवी तथा देखने वालों में हृदय में शौर्य भाव जाग्रत करने वाली होती है। पात्र किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु की खोज में रहते हैं और वीरव्रती होते हैं। विपन्नों, विशेषतः नारियों का उद्धार करना उनका व्रत होता है। क्रीड़ा, समारोह, रणप्रयाण, प्रकृति-चित्रण, धार्मिक युद्ध इत्यादि का वर्णन होता है। इन सबके बीच एक सुंदरी कन्या की प्रतिष्ठा होती है। यही रोमांस के उपकरण हैं। विवेचित उपन्यास को पढ़ने वाले यह भली-भाँति जानते हैं कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में रोमांस की इन प्रवृत्तियों का अधिकांशतः निर्वाह हुआ है।

प्रमाण के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण दृष्टव्य हैं—

उपन्यास का नायक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न है। वेदाध्यासियों में कुल में उत्पन्न बाण

यद्यपि उपन्यासकालीन समय में किसी विशिष्ट सामाजिक पद-प्रतिष्ठा का अधिकारी नहीं, किंतु वह मानवीय सद्गुणों से युक्त सधी एवं विवेकशील प्रवृत्ति का स्वामी है। अपनी सीमाओं से परिचित होते हुए भी वह भट्टिनी के छोटे राजकुल से मुक्ति के जोखिमपूर्ण कार्य को पूरे साहस और सामर्थ्य से संपन्न करता है। भयभीत भट्टिनी को आश्वासन देते हुए वह कहता है—‘भद्रे आप बाणभट्ट पर भरोसा रखें। समग्र काव्यकुंज की सैन्य शक्ति भी आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको कहीं नहीं ले जा सकती। मैं देवपुत्र तुवरमिलिंद की प्राणाधिका कन्या की मर्यादा का पालन करना और कराना जानता हूँ। देवि आप निश्चित मानें कि आपके एक इशारे पर बाणभट्ट सम्राटों का मुंडपात कर सकता है।’

उपन्यास की नायिका भट्टिनी देवीय सौंदर्य की स्वामिनी है...। ‘भट्टिनी का मुख लज्जा से आरक्त हो उठा था...उसके सारे शरीर से स्वच्छ कांति प्रवाहित हो रही थी। मानो मंदाकिनी की धवल धारा समस्त कलुष-कालिमा का क्षालन कर रही हो।’

प्रकृति के तत्त्वों एवं वातावरण से संवेगात्मक रूप से जुड़कर लेखक भावोद्रेक की दशा में उषाकाल, सायंकाल, चंद्रवर्णन, नदी तट इत्यादि के वर्णन में रसमग्न हो जाता है। सूर्यास्त के मनोरम दृश्य का अंकन अत्यंत सुंदर बन पड़ा है। ‘सूर्यमंडल परिणत प्रियगुमंजरी के केसर के समान पिंजरिमा से रंगा हुआ पश्चिम समुद्र की ओर लटक चुका था। अस्तकालीन धूप दिग्बधुओं के मुख पर पड़ी हुई एक ऐसी महीन चादर के समान दिख रही थी जो कुसुंभ रंग की अविचल वर्षा से लाल और कोमल हो गई है।’

कुमार कृष्णवर्द्धन के पुत्र का नामकरण संस्कार उत्सव, छोटे राजकुल में मदनोत्सव, कान्यकुब्ज में होलिका उत्सव, स्थाण्वीश्वर में तथागत के निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में बौद्ध विहार में उत्सव का आयोजन एवं वैष्णव सत्संग का दृश्यांकन रोमांसपरक उपन्यास की प्रवृत्ति के सर्वथा अनुकूल है—‘उसी दिन वैशाखी पूर्णिमा थी। इसी दिन तथागत ने जन्म ग्रहण किया था और इसी दिन निर्वाण प्राप्त किया था। बौद्ध नरपति की राजधानी में आज जैसा उत्सव होना चाहिए वैसे ही हुआ था। वीथियाँ सुगंध से सिक्त थीं, पौरभवनों में मंगल पताकाएँ सुशोभित थीं। राजमार्ग की ओर के सभी वातायन मालतीदास से अलंकृत थे और पौरजन वस्त्र-भूषा से सुसज्जित थे।’

मौखरिवंश के छोटे राजकुल के अंतःपुर का वर्णन, महाराजा हर्षवर्धन की राजसभा का चित्रण ऐतिहासिक रोमांस की प्रवृत्ति के सर्वथा अनुकूल होने के साथ-साथ तत्पुगीन वातावरण की प्रभावपूर्ण सृष्टि के लिए अत्यंत सार्थक बन पड़ा है—‘ज्यों ही महाराजाधिराज, प्रधान अधिकारीगण और कुमार कृष्णवर्द्धन के साथ सभामंडल में पधारे, त्यों ही सभा संयत और नियमानुसार शृंखलायुक्त हो गई। घनटपटह निनाद और तुमुल शंखनाद के बीच बार-बार उदघृष्ट वंदियों के जय निनाद से वायुमंडल कंपित हो उठा, चामर धारणियों की हलकी साड़ियाँ फरफरा उठीं। सामंतों के केयूर और अंगद शीघ्रता से उठने के कारण एक-दूसरे से टकराकर कटकटा उठे।’

अधोरभैरव और महामाया की तंत्र-साधना का रहस्य रोमांच और कौतुहलवर्द्धक दृश्य भी रोमांस की एक अन्य प्रवृत्ति का सार्थक नियोजन बन पड़ा है—‘वज्रतीर्थ एक विशाल श्मशान था। चारों ओर नीम के तेल में भूने जाते हुए लहशुन के समान जलते हुए शवों की दुर्गंध व्याप्त

हो रही थी। मेरा मस्तक दुर्गंध से छिन्न हो रहा था, नसें फूल गई थीं और कटु धूम से आँखे फटने को थीं, परंतु यह विचित्र साधना अव्याहत गति से चल रही थी।नभोमंडल से विकटाकृति कपूतनाएँ और भैरवियाँ उतरतीं मुझे विचित्र ढंग से प्रणिपात करतीं और आरती उतारती रहीं।’

महावाराह के पौराणिक मिथक को राष्ट्रमुक्ति एवं मातृशक्ति के उद्धार की महान एवं पवित्र भावना से अनुकूस्यूत कर उपन्यास के कलेवर में बखूबी जोड़ दिया गया है।

इनके अतिरिक्त ज्योतिष, लोक-संस्कृति, नृत्य-संगीत-काव्यकला एवं तत्कालीन धार्मिक वातावरण के चित्रण में हमें रोमांस की प्रवृत्ति उपन्यास के अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है। किंतु इतना सुनिश्चित है कि बाणभट्ट की आत्मकथा में ऐतिहासिक रोमांस की प्रमुख प्रवृत्तियाँ विषय-वस्तु की अपेक्षानुसार सर्जक साहित्यकार की रचना-प्रक्रिया का सहज अंग बन कर आई हैं, जिससे कथानक को एक स्वाभाविक खूबसूरती, गति एवं गहनता प्राप्त हुई है। हालाँकि कतिपय प्रसंगों में लेखक की संस्कृतनिष्ठ शब्दावली एवं काव्यमय शैली को उपन्यास की दुरूहता का कारण कुछ आलोचकों ने बताया है, किंतु यह आलोचना उचित नहीं क्योंकि तत्सम भाषा के बल पर ही द्विवेदी जी वर्तमान और अतीत की बीच एक सेतु का निर्माण कर सके हैं। ऐतिहासिक रोमांस की प्रवृत्तियों के सार्थक उपयोग के अलावा बाणभट्ट की आत्मकथा में कुछ ऐसी विशेषताएँ भी सन्निहित हैं, जो द्विवेदी जी की इतिहास दृष्टि, सांस्कृतिक चेतना एवं उनके मानवतावादी आशयों की परिचायक हैं। इन विशेषताओं को हम इस प्रकार देख सकते हैं—ऐतिहासिक दृष्टि से इस उपन्यास में घटनाओं एवं तिथियों का आकलन भर नहीं है, अपितु इसमें व्यापक युग सत्य को उसके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के संदर्भ में पकड़ने का प्रयास है।

इने-गिने पात्रों को लेकर उनकी चरित्रगत विशेषताओं को समग्रता से स्थापित किया गया है।

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ विषयक सत्य को इतने कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि उपन्यास को एक नया शिल्प तो मिला ही साथ-ही-साथ इतिहास-पुरुष सम्राट हर्षवर्धन एवं उनके भाई कुमार कृष्णवर्धन का व्यक्तित्व भी मुखरित हो उठा। इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों से प्रभावित होकर बच्चनसिंह ने लिखा है कि पूर्व कालीन उत्तर भारत का इससे ज्यादा प्रमाणिक इतिहास दूसरा नहीं।

एक अन्य धरातल पर बाणभट्ट की आत्मकथा भारत की सांस्कृतिक परंपराओं एवं जीवनमूल्यों का प्रत्यावलोकन है, किंतु लेखक संस्कृति एवं मूल्य की प्रतिष्ठा आदर्शवाद के धरातल पर नहीं, अपितु सहजता एवं स्वभाविकता की पृष्ठभूमि में करता है। यथा ऐतिहासिक रोमांस एवं सामान्य उपन्यास साहित्य में नायक-नायिका के पिछले एवं सतही प्रेम के निरूपण की प्रवृत्ति के सर्वथा विपरीत इस उपन्यास में बाण-निपुणिका एवं भट्टिनी के त्रिकोणीय प्रेम के निःस्वार्थ, निष्कलुष, उच्च एवं उदात्त रूप का अत्यंत हृदयस्पर्शी अंकन में हुआ। आद्योपांत उपन्यास में साथ-साथ रहने वाले ये पात्र प्रेम को शब्दों से नहीं, समर्पण से रचते हैं और उसी समर्पण की भाषा में व्यक्त करते हैं। अघोर भैरव का कथन कि ‘निःशेष भाव से स्वयं को दे देना वशीकरण है’ अत्यंत मर्मस्पर्शी है।

निपुणिका, भट्टिनी, सुचरिता, महामाया मदन श्री नारी के इन विभिन्न रूपों के माध्यम से भारतीय समाज में नारी की स्थिति एवं समस्याओं को उजागर किया है तो वहीं दूसरी

ओर बाण के नारी-विषयक दृष्टिकोण में उन्होंने समाज में नारी उद्धार के मार्ग को भी प्रशस्त किया है—बाण के लिए नारी इस सृष्टि की सबसे अमूल्य एवं पवित्र निधि हैं।

उपन्यास के अंत में लेखक भट्टिनी के मुख से नर लोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय प्राप्त होने की बात कहलवाकर भारतीय एवं विश्व-समाज को एवाथों एवं संकीर्णताओं से ऊपर उठाने का मानवतावादी संदेश देता है।

महामाया एवं उसकी साधिकाओं के द्वारा दस्यु आकांक्षाओं के खिलाफ़ भारत के अमृतपत्रों का आह्वार कर सामंती व्यवस्था की जनविरोधी नीतियों के विरुद्ध भारतीय जनमानस को आंदोलित करके एकजुट करने का प्रयास है।

निष्कर्षतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि रोमांसिक ऐज को आधार बनाकर लिखा गया यह उपन्यास जहाँ एक ओर जड़ प्रतिमानों पर चोट कर उपन्यास कला का एक ढंग हमें देता है तो वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के मूल मानवीय सरोकारों का उद्बोधन कर ऐसी उदात्त भाव भूमि का सृजन करता है, जिससे जुड़कर पाठक एवं सहृदय एक रागात्मक हृदय की व्यापकता के लक्ष्य के लिए अपनी सीमाओं के अतिक्रमण के लिए एक आंतरिक प्रेरणा को अपने भीतर अनुभव करता है। सत्य ही आज एक ऐसे बाण की कारुरत है, जो एक अखंड रागात्मक हृदय के सत्य का प्रसार कर मानवता को एक सूत्र में बाँध सके।

संदर्भ

1. डॉ॰ हरमोहन लाल सूद, हजारीप्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य, निर्मल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ॰ 51
2. ऐतिहासिक उपन्यास : तुलनात्मक अध्ययन, डॉ॰ श्री नारायण भारद्वाज, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, 198 संस्कार 1983, पृ॰ 198
3. ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रोमांस, डॉ॰ गुरदीप सिंह खुल्लर, रिसर्च पब्लिकेशंस इन सोशल साइंसेज, दिल्ली, पृ॰ 68
4. वही, पृ॰ 67, 68
5. हिंदी मराठी में ऐतिहासिक उपन्यास, डॉ॰ चंद्रकांत गर्जे, पुस्तक प्रकाशन, कानपुर, 1973
6. हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा में बाणभट्ट का योगदान, संतोषकुमार पांडेय, हिंदुस्तानी पत्रिका, इलाहाबाद, जनवरी 2008
7. डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य एक अनुशीलन, डॉ॰ यदुनाथ चौबे, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, पृ॰ 268
8. बाणभट्ट की आत्मकथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 57
9. बाणभट्ट की आत्मकथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 133
10. बाणभट्ट की आत्मकथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 150
11. बाणभट्ट की आत्मकथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 113

हिंदी प्रवक्ता

कन्या महाविद्यालय, जालंधर

मो॰ 09041910325

ईमेल—rupikabhanot16@gmail.com

उत्तर आधुनिकता और महिला-सशक्तीकरण

डॉ० अंजली शर्मा

हिंदी विभाग

जे०के०पी०पी०जी० कॉलेज,

मुजफ्फरनगर

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में नारी-मुक्ति-आंदोलन खुद को एक नए मोड़ पर खड़ा पा रहा है। बाजारवाद और खुली अर्थव्यवस्था ने स्त्री-पुरुष संबंधों के समीकरण को प्रभावित करना शुरू कर दिया है। इसके ठोस प्रमाण अब खुलकर सामने आने लगे हैं। महिलाएँ समाज में अपनी स्थिति, अधिकारों और समस्याओं को लेकर अधिक मुखरित हुई हैं। 35 साल पहले यानि 80 के दशक में नारीवादी आंदोलन को कुछ अवरोधों का सामना करना पड़ा था। महिलाएँ स्वयं को 'नारीवादी' या नारी-मुक्ति का पक्षधर कहलाने में सकुचाने लगी थी, लेकिन पिछले 25 सालों में यह तस्वीर कुछ बदली है। केवल सामाजिक क्षेत्र में ही नहीं, राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्र में भी स्त्रियों के 'वोट' और 'पोस्ट' के महत्त्व को लगातार मान्यता मिल रही है। हमारे अपने देश में भी महिलाएँ न केवल अपने काम में सत्ता व अधिकार हासिल कर रही हैं, बल्कि इससे भी अहम बात यह है कि वे अपने अधिकारों और शक्ति के प्रति जागरूक हो रही हैं।

आज भी नारीवादी सोच में पहले की अपेक्षा काफ़ी बदलाव आया है। वास्तव में 70 के दशक में किए गए स्त्री-संघर्ष का ही परिणाम है कि स्त्री आज सबलीकृत होने का दावा कर सकी है। आज यौनवाद, जाति और वर्गवाद की समस्याओं पर स्त्री ज़्यादा सशक्त रूप से बोल पा रही है। मानव अधिकार के लिए किए गए अन्य संघर्षों में पुरुषों के साथ स्त्री कंधे से कंधा मिलाकर बहुतेरे मुकामों पर लड़ रही है।

लेकिन इसके बावजूद संसार के बहुत से क्षेत्रों में महिलाओं को समान कार्यों के लिए समान वेतन नहीं दिया जाता है। मुस्लिम क्षेत्रों में महिलावादी उन्नति आज भी वास्तविक महिला-अधिकारों को खोज रही है। आज भी वह पति द्वारा तलाक दिए जाने के हक़ से बाहर नहीं आ पायी है। इक्कीसवीं सदी की औरत भी श्रम-शोषण व देह-शोषण के दाँव की गिरफ्त से बाहर नहीं निकल पायी है। भूमंडलीकरण के इस दौर में विदेशी मुद्रा के कर्ज में दबे एशिया, अफ्रीका और यूरोप के देश अपराधी गिरोह की मदद से डालर्स और पाउंड्स के भंडार की पूर्ति के लिए आमदनी के जिन अनौपचारिक स्रोतों का संस्थागत इस्तेमाल कर रहे हैं, उनमें सबसे बड़ा है-औरत का निर्यात। इन परिस्थितियों के खिलाफ़ आज भी नारी अस्तित्व समर्थकों की

लड़ाई जारी है।

आज हम ऐसी संस्कृति में जी रहे हैं, जो लोगों से किसी प्रकार की सक्रियता की माँग नहीं करती बल्कि एक सजावटी उपभोक्ता के रूप में उन्हें बनाए रखने का प्रयत्न करती है। नारीवादी आंदोलन अन्य सभी आंदोलनों के समकक्ष है, पुरुष भी आज इन्हीं उपभोक्तावादी भूमंडलीय ताकतों के खिलाफ लड़ रहा है। अतः सूसन फालूदी के अनुसार पुरुष की सहायता के बिना स्त्री ने 70 के दशक में जो कुछ भी सोचा था, उसे आज वह अकेले हासिल नहीं कर पाएगी। उसे भी मानवाधिकार के लिए किए गए अन्य नए-नए आंदोलनों से जुड़ना होगा।

भूमंडलीकरण के इस दौर में नारीवाद का भविष्य कैसा होगा, क्या स्त्रियाँ कार्पोरेट पूँजी के खिलाफ व्यापक सामाजिक सुधार के लिए सक्रिय होंगी या फिर वे पैसा कमाने वाली सेलिब्रेटी हो जाएँगी और मौजूदा सांस्कृतिक ताकतों के सामने घुटने टेक देंगी। समकालीन नारीवाद की बहस का केंद्रीय मुद्दा है—परिवार और कार्यक्षेत्र।

दशकों से समान काम व समान वेतन की माँग करने वाली स्त्रियाँ, मातृत्व और पत्नीत्व की आरोपित भूमिकाओं से मुक्ति चाहने वाली स्त्रियाँ आज बिल्कुल भिन्न मुद्दे का सामना कर रही हैं, उन पर सांस्कृतिक दबाव है कि वे अमीर बनें और उत्पादक बनें। भूमंडलीकरण ने दो व्यक्तियों की आय पर आधारित परिवार को आदर्श के रूप में रख दिया है और स्त्री के मन में यह अहसास कि उसके पास परिवार और कार्य दोनों हैं। एक ऐसी परिस्थिति बनती है, जो गृहस्थी और सामुदायिक जीवन दोनों का अवमूल्यन करती हुई नजर आ रही है, जबकि आर्थिक सफलता के बदले नागरिक समाज को बचाना ज्यादा आवश्यक है। आज समकालीन दौर में क्या संस्कृति ने मौजूदा हालात से समझौता कर लिया? जैसे अन्य और सब आंदोलन बुझ गए, वैसे ही बाजार में आकर नारीवाद भी खामोश होता लग रहा है।

उपभोक्तावाद ने औरत के लिए एक खूबसूरत जेल का आविष्कार किया है, जिससे 70 के दशक की नारीवादी स्त्रियाँ मुक्ति चाहती हैं। बेट्टी फ्रीडन को 70 के दशक में अभूतपूर्व सफलता मिली, स्त्रियों ने धरने दिए, नारे लगाए और विश्व सुंदरी प्रतियोगिता में भाग लेने से इंकार कर दिया। अपनी प्रमुख पुस्तक (बैकलेश) में 1992 में सूसन फालूदी कहती है कि बाजार-संस्कृति को अपनाने का अर्थ हुआ आधुनिक स्त्री-आंदोलन को कफ़न ओढ़ाना। 70 के दशक में नारीवादी स्त्रियों ने हालाँकि मेकअप, फ़ैशन व रोमांस का विरोध नहीं किया था, मगर ये सौंदर्य-प्रसाधन और भोगवादी संस्कृति स्त्री को कैसे जीन्स में परिवर्तित करते हैं, इस पर प्रकाश जरूर डाला था। मगर 90 के दशक तक आते-आते इनमें से अधिकतर के विचार बदल जाते हैं। स्त्री की भूमिका में नए-नए आयाम जुड़ने लगे, भोगवाद, सैक्सवाद सभी का प्रचलन बढ़ा। 1993 में नाओमी उल्फ की पुस्तक 'फायर विद फायर' प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने स्त्रियों से अपील की कि अपने उत्पीड़न की चर्चा के बदले अच्छा होगा, यदि स्त्री-पुरुष, सैक्स एवं सौंदर्य को अपनाकर चलें।

उपभोक्तावादी संस्कृति स्त्री को सिखाती है कि तुम ज्यादा से ज्यादा उपभोग करो। यह तो 70 के दशक की नारीवादी चिंतक थी, जिन्होंने भोग की संस्कृति को ग़लत बताया, लड़कियाँ यदि सजती-सँवरती थीं तो उनमें अपराध-बोध उत्पन्न होता था, लेकिन नव-नारीवाद का कहना है कि समकालीन समाज में पाँच सौ पाउंड की सालाना आय से वर्जिनिया उल्फ का

खर्च भले ही चल जाए, हमारा नहीं चलेगा। नव-नारीवाद का कहना है कि अपने-आपको प्यार करो, शान से जीओ। उपभोक्ता संस्कृति सुखदायी है, स्त्री का सम्मान करना जानती है, स्त्री की जरूरत का बाज़ार में ध्यान रखा जाता है। औरत होना या औरतपने का ओढ़ना-बिछाना ग़लत नहीं, ग़लत तो है औरत-मन की वह संकीर्णता जिससे उसका व्यक्तित्व खंडित होने लगे, उसमें दरार पड़ने लगे। एक भूमंडलीय नागरिक होने के नाते औरत को फैशन पर भी लिखना होगा तथा कठिन से कठिन, अमूर्त विषयों का विश्लेषण करने की भी सामर्थ्य हासिल करनी होगी।

नारीवाद के वास्तविक उद्देश्य पूर्ति के लिए अलग-अलग ख्रेमों में न बँटकर स्त्री को नारीवाद व उपभोक्तावाद के बीच सामंजस्य बैठाने की चेष्टा करनी होगी, क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति और जीवनमूल्यों को पूरी तरह नकारा तो नहीं जा सकता। पाश्चात्य संस्कृति का पर्याय है पूँजीवाद, जिसे नकारना संभव नहीं। वह हमारी जीवनधारा में घुल गया है। नारीवादी होने का अर्थ यह कदापि नहीं कि हम उपभोक्तावाद का विरोध करें, लेकिन हम इस बाज़ार संस्कृति की कुछ बातों जैसे-फैशन को वहीं तक अपनाएँ, जहाँ तक हमारी आत्मछवि में सलीके व सुंदरता का प्रवेश हो सकें। नकारने के बदले कार्पोरेट पूँजीवाद को स्वीकारें, यह जानने की चेष्टा करें कि अपनी निजी हैसियत में औरत का स्थान कहाँ है?

संदर्भ

1. डॉ॰ एस॰सी॰ सिंघल, समकालीन राजनीतिक मुद्दे, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा 2014
2. डॉ॰ ज्ञानप्रकाश गौतम, महिला सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण, कला प्रकाशन 2009

पुत्री श्री सेवाराम शर्मा
रामपुर तिराहा, रुड़की रोड़
मुज़फ़्फ़रनगर 251001

मिथिलेश्वर के कथासाहित्य का सांस्कृतिक परिदृश्य

डॉ० नेहा शर्मा

शोध छात्रा, हिंदी विभाग

जे०वी० जैन कॉलेज

सहारनपुर (उ०प्र०)

संकीर्ण अर्थ में संस्कृति प्रायः उन गुणों का समूह है, जोकि मानव-जीवन को परिष्कृत और उन्नत बनाते हैं। व्यापक अर्थ में संस्कृति समस्त सीखे हुए उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परंपरा से प्राप्त होता है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के विश्वासों, विचारों, नियमों, प्रथाओं, परंपराओं और शिष्टाचार के तरीकों को सम्मिलित किया जाता है।

मिथिलेश्वर ने अपने कथासाहित्य में अपने समाज की संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों, विगलित मान्यताओं तथा लड़के-लड़के के प्रति भेद-दृष्टि को विशेषतः उकेरने का प्रयास किया है। उन्होंने इन सबका विरोध करते हुए पात्रों के माध्यम से इन सबके परिवर्तन अर्थात् उदित चेतना का स्वर भी मुखर किया है। संक्षेप में, मिथिलेश्वर के कथासाहित्य के सांस्कृतिक परिदृश्य को निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है।

1. धार्मिक मान्यताएँ

मिथिलेश्वर ने समाज की धार्मिक मान्यताओं को ठाकुरबारी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। ठाकुरबारी का काम लोगों के अंदर ठाकुर जी के प्रति भक्ति पैदा करना तथा धर्म से विमुख हो रहे लोगों को रास्ते पर लाना है। गाँव में किसी भी पर्व-त्यौहार की शुरुआत ठाकुरबारी से ही होती है। 'लोगों के खलिहान में जब फ़सल की दवनी होकर अनाज की 'ढेरी' तैयार हो जाती है, तब ठाकुर जी के नाम 'अंगउम' निकालकर ही लोग अनाज अपने घर ले जाते हैं।' 'अभी भी' कहानी का हरखू अपने पुरोहित पं० ईश्वरदयाल मिश्र से ही सलाह-मशविरा करके कोई नया काम करता है। अपने खेत के अनाज का पहला हिस्सा अपने पुरोहित के चरणों में सौंपते हुए उसे आंतरिक संतोष मिलता है। वह जानता है कि 'ब्राह्मण सेवा से बढ़कर हिंदू धर्म में और कोई माहात्म्य नहीं।'² 'बिग्रह बाबू' कहानी के विग्रह बाबू आँधी-पानी वाली रात को सोते नहीं थे। हाथ जोड़कर ईश्वर की आराधना करते रहते थे, क्योंकि गाँव के पुराने हो चले मिट्टी के जर्जर मकान का अब कोई भरोसा नहीं। उनके परिवार की रक्षा सिर्फ ईश्वर ही कर सकते हैं। 'अजगर करै ना चाकरी' कहानी में तिवारीडीह के देवधाम का स्थल गाँव के बाहर सड़क के किनारे एक बहुत पुराने पीपल वृक्ष के नीचे है। ग्रामवासियों के अनुसार उस पीपल वृक्ष के नीचे किसी अज्ञात ब्रह्म की पूजा वर्षा से होती रही है। इस देवधाम को एक

राहगीर महिला की मनौती ने ही गुलजार कर दिया था।

‘युद्धस्थल’ उपन्यास के प्रारंभ में भरतपुर गाँव में श्रीमन् नारायण जी श्रीराम की कथा प्रति शाम बरगद के पेड़ के नीचे चौपाइयों के अर्थ के साथ कहीं गहरे में उतरकर अत्यंत सहज और सरस शब्दों में बताते हैं कि लोग राम-कथा के प्रवाह में डूब जाते हैं। हटने का नाम नहीं लेते।³ ‘सुरंग में सुबह’ के नेता राव मानवेंद्र बाबू अपने राजनीतिक दौरों पर जब भी निकलते थे, महावीर जी के मंदिर में पहुँचकर दंडवत् अवश्य करते थे। मानवेंद्र बाबू की पत्नी अपने पति के कार्यों की सिद्धि और सफलता के लिए अक्सर महावीर जी की मनौतियाँ मनाती थी। ‘माटी कहे कुम्हार से’ में शीतला मईया की पूजा की जाती है। बाढ़ के कारण फैली महामारी से बचने के लिए ‘झोपड़पट्टी के बुजुर्गों ने यहाँ की रीत के अनुसार नीम गाछ की’ सैंतला मईया’ के पास दाक की बोतल ढरकाकर एक मुर्गे की बलि दे दी। ऐसे अवसरों पर वे यही करते थे। उनका मानना था कि शीतला मईया के प्रकोप से ही बस्ती में महामारी आती है।⁴ इस प्रकार धार्मिक विश्वासों और अनुष्ठानों को अभिव्यक्त करके कथाकार ने ग्रामीण संस्कृति का उद्घाटन किया है।

2. अंधविश्वास, रूढ़ियाँ तथा परंपराएँ

ग्रामीण संस्कृति में जमे बैठे अंधविश्वास, रूढ़ियों और परंपराओं को कथाकार ने पूर्ण भयावह में उपस्थित किया है। अशिक्षा और अज्ञान के कारण भूत-प्रेत और डायन-संबंधी अंधविश्वास इतनी गहरी जड़ जमाए हुए हैं कि इस भ्रान्त धारणा के चलते विधवा और गरीब नारियों की हत्या तक कर दी जाती है। ‘युद्धस्थल’ उपन्यास की रामशरण बहू इसका पुष्ट प्रमाण है। श्रीमन् नारायण जी द्वारा सुनाई जाने वाली रामकथा में पहुँची विधवा बाँझ रामशरण बहू को देखते ही औरतें एक ओर हट गईं। ‘डायन आ गई। उसको रामायण से क्या मतलब? जरूर किसी पर टोना-टोटका चलाने आई है। इसी प्रकार ‘बीजोरोपण’ कहानी का धरीहन जब अपनी गर्भवती पत्नी की मृत्यु पर उसके हाथ-पैर में कील नहीं ठोकता तो उसे ‘चुड़ैल’ की संज्ञा दे दी जाती है। बिहारी यादव के घर की औरतें इस बात का बवंडर उठाती हैं कि ‘धरीहन की मरी हुई पत्नी ने ही चुड़ैल बनकर उसकी भैंस को खत्म कर दिया है।’⁵

डायन और चुड़ैल के संदर्भ में कथाकार ने ओझाओं का भी विस्तृत वर्णन किया है। ‘युद्धस्थल’ उपन्यास में दूधनाथ चौधरी के बेटे को पीलिया है, परंतु वह रात-दिन ओझाओं के चक्कर में पड़ा रहता है। मुसन ओझा के साथ और दो ओझा उसके बीमार बेटे के पास मौजूद हैं, जो रामशरण बहू को ही दोषी मानते हैं। ‘विरासत में’ कहानी का फुलन ओझाई करता है। ‘समूचे गाँव में फुलन की जय-जयकार है। फुलन ने सुमेराय की बाँझ पत्नी की कोख भर दी है। लखीसिंह के मरते हुए लड़के को फुलन ने बचा लिया है। अपने दरवाजे के पास एक चबूतरा बनाकर फुलन चौबीसों घंटे वहीं रहता है। गाँव-भर की रोगी, दुःखी औरतें उस चबूतरे पर मन्तें माँगने आती हैं और फुलन बड़े कायदे से उनकी झाड़-फूँक करता है।’⁶ ‘जमुनी’ कहानी में भैंस जमुनी के बीमार हो जाने पर जिठत का बड़ा बेटा सरभू, गुणी-ओझा अलिआर को बुलाने भागता है। अलिआर भैंस को सब ओर से देख-परखकर कहता है—‘घबराने की जरूरत नहीं है भौजी। इसे पड़ोस की ही एक डायन ने नज़र है।’⁸ ओझाई के लिए अलिआर

कुछ सामग्री मँगाता है और फिर अपनी ओझाई शुरू करता है, जिससे सारा वातावरण डरावना हो उठता है।

गाँव की अनेक रूढ़ियाँ और परंपराएँ कष्ट देने वाली हैं। 'अभी भी' कहानी में झगरू को कोढ़ी हो जाने के कारण जीवित ही गंगा में फेंक देना एक ऐसी ही रूढ़ि है। 'जमुनी' कहानी में जिडत अपने मवेशियों के बीमार होते ही खूँटे से उनका पगड़ा खोलना तथा गले में बँधी गरौटी हटाना कभी नहीं भूलता। कौन जाने, कब क्या हो जाए? 'वह जानता था रस्सी में बँधे मवेशी के मरने पर 'लक्षण लगने' का दोष लगता है।' 'शेष जिंदगी' की कहानी की विधवा स्त्री को चावल धोते समय याद आता है कि आज शनिवार है। 'शनिवार को खिचड़ी बनाने से ग्रह कटते हैं। इसलिए वह हर शनिवार को खिचड़ी बनाती हैं।'¹⁰ परंतु अब उसे लग रहा था कि उसके ग्रह घटे नहीं, बढ़े ही हैं, फिर भी वह परंपरा का निर्वाह करती आ रही है। स्पष्ट ही ग्रामीण समाज अपनी संस्कृति के नाम पर अनेक अंधविश्वासों, रूढ़ियों और परंपराओं को बोझ ढोता रहता है।

3. स्त्रियों के प्रति भेद-दृष्टि

मिथिलेश्वर ने अपने बचपन से ही समाज में लड़के-लड़कियों के प्रति पर्याप्त अंतर का अनुभव किया। उन्होंने देखा कि उनके टोले-पड़ोस में जब भी किसी के पुत्र होता तो खुशी की लहर छा जाती और लड़की होती तो मायूसी। 'सावित्री दीदी' कहानी में कथाकार स्पष्ट लिखते हैं कि 'उधर दीप्ति का जन्म हुआ था और इधर पूरे घर में मौत की सी उदासी घिर गई थी। भैया और बाबू जी आँगन में मुँह लटकाए गहरे सोच में डूब गए थे। चाचा 'हाय' करके बैठ गए। उनके मुँह से निकले कुछ शब्द साफ़ सुनाई पड़े—दस हजार का घाटा।'¹¹ पिता जब घर में मिठाई लाते और बड़ी बहन सावित्री अपने भाई से लेने के लिए तुनक पड़ती तो माँ झल्लाते हुए गालियाँ बकते बहिन-भाई का अंतर स्पष्ट कर देती—'यह लड़का है, तू लड़की है। यह भीख माँगकर भी इसी घर में ले आएगा, पर तुझे पराये घर जाना है। तेरी बाँहू-पहुँचा कोई पकड़ेगा। तू दस हजार लेगी और इसे दस हजार मिलेगा।'¹² सावित्री दीदी की मृत्यु पर तीसरे दिन ही सब सहन हो गया था।

शिक्षा को लेकर लड़के-लड़कियों में भेद किया जाता है। 'तिरिया जनम' कहानी सुनयना यद्यपि भाइयों से पढ़ने में अधिक तेज है, परंतु उसे अपर प्राइमरी स्कूल के बाद मिडिल स्कूल में नहीं भेजा जाता, क्योंकि मिडिल स्कूल और हाईस्कूल के लिए गाँव से दो मील दूर हसन बाज़ार कस्बे में जाना पड़ता है। गाँव के लड़के जाते हैं, लेकिन लड़कियों को नहीं जाने दिया जाता। जब सुनयना ने बाबा से बहुत ज़िद की तो बाबा ने समझाया, 'लड़कियों का अधिक पढ़ना-लिखना ठीक नहीं होता। नौकरी तो उन्हें करनी है नहीं। घर-बार सँभालना है। चिट्ठी-पत्री लिखना-बाँचना जान गई हो, बस यही काफ़ी है।'¹³ अपवादस्वरूप गाँव की एक ही लड़की कस्बे में पढ़ने जाती तो उसके प्रति गाँव के लोगों की अच्छी धारणा नहीं। सुनयना देख रही थी कि लड़कियों के बीमार होने पर उतनी तत्परता नहीं बरती जाती थी, जबकि लड़कों के बीमार होने पर पूरी भाग-दौड़ शुरू हो जाती थी। लोगों की यह धारणा है कि लड़कियाँ कठजीवी होती हैं। जल्दी मरती नहीं। एक कहावत है—'अनब्याही बेटा मरे, सारे दुख छुटि

जाया।¹⁴ लड़कों की शादी में तिलक-दहेज ज़्यादा से ज़्यादा लेने के कारण उन्हें सजा-सँवारकर रखा जाता था, लेकिन लड़कियों पर पूरी पाबंदी होती थी।

4. विवाह

भारतीय समाज में माता-पिता लड़कियाँ का जल्दी-से-जल्दी विवाह करके अपने कर्तव्य से मुक्त होना चाहते हैं। मिथिलेश्वर ने ग्रामीण और शहरी दोनों विवाहों का उल्लेख किया है तथा उनके अच्छे-बुरे परिणाम भी दर्शाए हैं। 'यह अंत नहीं' उपन्यास में चुनिया के भाई बाबू ने कुरेदना शुरू कर दिया था—'कइसा बाप हो कि जुआन बेटी घर में बड़ण के लंबी तान सुतत हो। खाए और सुते से तोहरा फुर्सतें नहीं मिलेंगी कि लड़का खोजे निकलोगे। अब का बिआह जोग चुनिया के दोसरे उमिरि होगी?'¹⁵ पत्नी की बात ने जैसे नरोत्तम को किसी छूटी बात की याद दिला दी। वह इस दिशा में तेज़ी से लग पड़ा और उसने जल्दी ही चुनिया की शादी जोखन से कर दी। शादी के बाद दोनों ही आनंदपूर्वक अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। 'यह अंत नहीं' में जमींदार श्रवणसिंह का बड़ा बेटा पढ़ने में एकदम भोंदू था। उसे स्कूल भेजना तो श्रवणसिंह के लिए उसकी शादी का बहाना था। उसे पढ़निहार लड़का साबित कर श्रवणसिंह ने एक अच्छे जोतदार की बेटी से उसकी शादी कर दी थी। अब वह खा-पीकर अपनी पत्नी के साथ पड़ा रहता था।

'तिरियम जनम' कहानी की माँ अपनी बेटी सुनयना को शादी के लिए तैयार करते हुए उसे घर के हर काम में कुशल बनाने का पूरा-पूरा प्रयास करती है। रसोई बनाते हुए अगर कोई चीज़ सुनयना से जल जाती या किसी का स्वाद अच्छा नहीं आता है तो माँ कहती 'जहाँ जाओगी वहाँ के लोग क्या कहेंगे? कहेंगे कि इसकी माँ ने खाना बनाना भी नहीं सिखाया। कपड़े सीते समय सुई चुभ जाने पर यदि सुनयना तुनक जाती तो माँ यही समझाती—यदि सास का लहंगा फट जाएगा तो फिर कैसे सियोगी? धान कूटते हुए यदि वह ऊब जाती तो माँ फिर उसे समझाती। सुनयना समझ नहीं पाती कि 'जहाँ उसे जाना है, वहाँ एक कुशल नौकर के रूप में ही वह क्यों जाएगी?' सारी शिक्षाओं और कुशलताओं के बाद भी सुनयना का वैवाहिक जीवन दुःखभरा रहा, क्योंकि पति के बीड़ी पीने और बेहिसाब खैनी खाने पर जब सुनयना ने विरोध किया तो सास-ननद ने धिक्कारा और पति ने लात, घूँसों व जूतों से बेहिसाब पीटा। उसके पति की व्याख्या है कि 'औरतें लतियाने वाली जाति होती है, बतियाने वाली नहीं।'¹⁶

'रास्ते' की कहानी सुचित्रा की जिससे शादी होती है, न देखने में सुंदर, न काम करने में अच्छा, सिर्फ खाना और सोना वह जानता है। चेहरा भद्दा, हँसने में तो एकदम वीभत्स। गंदे कपड़े, और गँधाती देह। प्रारंभ से सुचित्रा उसके पास उबकाई का अनुभव करती। बाद में उस गंध की आदी हो गई। सुचित्रा ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उसे ऐसा घर और वर मिलेगा। सुचित्रा एक क्षण के लिए भी आराम और चैन का अनुभव नहीं करती।

'पत्थर की लकीरें' कहानी के बाबा हरदयाल की शादी हुई ही नहीं थी, लेकिन उन्होंने गाँव की एक अछूत कन्या को रख लिया था। इस कसूर के कारण उनका हिस्सा देकर घर के लोगों ने उन्हें घर और बिरादरी से निकाल दिया था, क्योंकि गाँव में इस तरह का कसूर अक्षम्य समझा जाता था।

‘चल खुसरो घर अपने’ कहानी के रविरंजन और श्यामरंजन दोनों ने नौकरी में आने के बाद माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध शहरी लड़कियों से शादी की थी। शादी के बाद वे दोनों गाँव से बिल्कुल कट गए थे, परंतु अपना जीवन अच्छी तरह जी रहे थे।

‘नए दंपती’ कहानी में मनोज और सुनीता दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे से आ उलझते हैं। ‘वे नए दंपती हैं। शादी की पहली वर्षगाँठ भी नहीं मना पाए हैं। यह उनके भाग्य की विडंबना है कि शादी के कुछ ही दिनों बाद अपने अधिकारों को लेकर एक-दूसरे से उलझने लगे हैं।’¹⁸

‘संगीता बनर्जी’ कहानी में मल्होत्रा अखबारों में विज्ञापन देकर एक स्वतंत्र और उन्मुक्त विचारों की पत्नी की खोज करके नए सिरे से ज़िंदगी की शुरुआत करना चाहते हैं। उन्हें संगीता बनर्जी इसी प्रकार की पत्नी मिल जाती हैं। उन्हें इस बात का दुःख था कि ‘संगीता बनर्जी जैसी महिला उसे उसकी ज़िंदगी के आखिरी मुकाम पर मिली। काश! अगर वह शुरू में ही मिल गई होती।’¹⁹ इस प्रकार कथाकार ने भारतीय संस्कृति में विवाह की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए ग्रामीण और शहरी दोनों के वैवाहिक जीवन के विविध दृश्य अंकित किए हैं।

5. प्रेम एवं विवाह

विवाह के साथ प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है। कभी विवाह के बाद प्रेम का प्रादुर्भाव होता है तो कभी विवाह से पूर्व ही। सान्निध्य से उत्पन्न प्रेम पहले सहज आकर्षण का कारण बनता है, फिर रूप, गुण व स्वभाव के जाल में आबद्ध कभी विवाह में परिणत हो जाता है तो कभी नहीं भी। मिथिलेश्वर ने प्रेम के सहज आकर्षक रूप को चित्रित करते हुए अधिकांशतः प्रेमी युगल को विवाह में आबद्ध दिखाया है। ‘यह अंत नहीं कि चुनिया प्रारंभ में जोखन की उपस्थिति से एकदम प्रसन्न हो उठती। धीरे-धीरे उसकी ओर खिंचती अंत में अपनी सहेली के माध्यम से अपने मन की बात माँ-बाप तक पहुँचा देती है, जिससे बाद में दोनों का विवाह हो जाता है।

‘प्रेम न बाड़ी ऊपजे’ उपन्यास का नायक रूपेश धन संपन्न डॉक्टर पिता का पुत्र है, जो पूरे भोग-विलास में जिया पला है। नायिका शकुंतला उर्फ मोनालिसा एक साधारण कॉलेज अध्यापक की बेटी है, जो रूप-यौवन से भरपूर है। परस्पर आकर्षण में बँधे दोनों यद्यपि घर से भागकर विवाह कर लेते हैं, परंतु जीवन की कठिनाइयों से रूबरू होते ही रूपेश का प्रेम रफूचक्कर हो जाता है। अतः प्रेम का छलावा रूप ही यहाँ दिखाई पड़ता है।

प्रेम तो विश्वास, आस्था, निश्चलता और अनन्य अनुराग का नाम है। ‘पहली घटना’ कहानी की मीना इसी का प्रमाण है। मीना विपिन से सच्चा प्रेम करती है और विपिन भी मीना से। विपिन एक दिन सारे गाँव के सामने दिन-दहाड़े मीना को अपने साथ ले जाता है और विवाह कर लेता है। ‘माटी कहे कुम्हार से’ में गूँगी कलावती और बिसुनदेव के प्रेम और विवाह की कथा अकथ है। बिसुनदेव एक रात घोर सन्नाटे में माँ के पास सोई कलावती को अपनी पीठ पर लाद छत के जिस रास्ते आया था, उसी रास्ते चंपत हो गया था। ‘बिसुनदेव ने कलावती से सिर्फ देह का ही नहीं, मन और प्राणों का भी नाता जोड़ लिया था।’²⁰ विवाह के बाद दोनों ‘नर ही’ नामक एक उपेक्षित झोपड़पट्टी में रहते हुए मजदूरी करके आनंदपूर्वक जीवन-निर्वाह करने

लगे। वहीं उन्होंने एक कन्या को जन्म दिया। एक दिन अचानक हमलावरों का शिकार बनी कलावती मौत के मुँह में चली जाती है। बिसुनदेव हमलावरों से बदला लेने के लिए निकल पड़ता है और वह छोटी कन्या वहीं झोपड़पट्टी में बड़ी होकर मुनीलाल के प्रेम में आबद्ध हो जाती है। मुनीलाल भी सच्चा प्रेमी सिद्ध होता है, जो मुन्नी से विवाह करके उसकी दुनिया ही बदल देता है।

इस प्रकार प्रेम के बाद होने वाले वैवाहिक जीवन के सुखद और दुखद दोनों ही पहलुओं पर विचार करते हुए कथाकार ने अपना मत इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है—‘मैं प्रेम को यथार्थ से काटकर देख ही नहीं सकता।’²¹

6. नैतिक पतन

मिथिलेश्वर ने सामंती व्यवस्था के अवशेष रूप में रहे जमींदारों और उनके बिगड़े छोकरोँ द्वारा समाज में फैलायी गई गंदगी, दुराचार और स्वेच्छाचारिता को पगे-पगे उद्घाटित किया है। गाँव के जमींदार और बनहारों और चरवाहों की पत्नी-बेटी का तो इच्छानुसार प्रयोग करते ही थे, उनके मनचले छोकरे भी यत्र-तत्र अपनी उच्छृंखलता का परिचय देते। ‘यह अंत नहीं’ उपन्यास की चुनिया पहले जमींदार श्रवणसिंह के छोटे बेटे अगम की वासनाजन्य वृत्ति का शिकार बनती है, बाद में गाँव के मनचले युवकों द्वारा प्रताड़ित की जाती है। एक रात सारे छोकरे उसके घर आ घुसे, परंतु चुनिया और उसके माँ-बाप भाई ने उन्हें मुँह-तोड़ उत्तर दिया।

‘पहली घटना’ कहानी की मीना जब पढ़ाने स्कूल जाती है, तब नरेश के दालान में इकट्ठे मनचले कभी सीटियाँ बजाते तो कभी व्यंग्यात्मक हँसी हँसते। वे उसे सुना-सुनाकर भद्दे मजाक करने लगते। ‘भोर होने से पहले’ कहानी की बुधनी को देखकर गाँव के मनचले छोकरे रविकांत जी के घर के इर्द-गिर्द मँडराने लगे थे और तो और रविकांत जी के घर में ही उनके भाइयों के नए लड़के रजिंदर और विरेंद्र उसे आँख फाड़कर देखने लगे थे। एक दिन इन सबकी वासना का शिकार बनी गर्भवती बुधनी इनकी अनैतिकता प्रकट कर ही देती है। इसी प्रकार ‘मोल ली हुई मुसीबत’ कहानी की दातुन बेचने वाली लड़की पीली कोठी वाले की वासना के चुंगल में फँसकर गर्भवती हो जाती है। यह तो होना ही था। कहानी के चाचा का सरेआम गरीब लड़कियों को छोड़ना और मुंगिया के साथ रातें काटना लज्जास्पद ही था। ‘रात’ कहानी की झुनिया जोगिंदर द्वारा प्रताड़ित मन-ही-मन उबल रही थी—‘यह कसाई का बच्चा पापी! अत्याचारी! तनिक भी दया नहीं है इसके मन में। रोज तो मनमानी करता ही है। आज जबकि तबीयत खराब है, तब भी छोड़ने को तैयार नहीं।’²²

इस प्रकार कथाकार ने एक नहीं, अनेक चित्र उपस्थित करके ग्रामीण समाज में फैले अनैतिक कृत्यों को वाणी दी है।

7. विचार-परिवर्तन द्वारा चेतना का उदय

समाज में शनैः शनैः आने वाले विचारों के परिवर्तन द्वारा मिथिलेश्वर ने पात्रों में चेतना का प्रस्फुरण प्रदर्शित किया है। उन्होंने समाज में फैले अंधविश्वासों, रूढ़ियों, मान्यताओं, शोषण और अनैतिक कृत्यों का विशेष पात्रों द्वारा विरोध कराकर प्रगतिशील और जागरूक समाज का परिचय दिया है।

आर्थिक शोषण के विरुद्ध तेज़ आवाज़ उठाने वाला है मेघना। गाँव और शहर दोनों जगह मजदूरी करके उसने जान लिया है कि सभी लोग बेईमान और अत्याचारी हैं। अतः वह अपने हक के लिए लड़ाई करता है और दूसरे मजदूरों को भी न्याय दिलाता है। उसका निर्णय था—‘जब एक छोटी-सी चींटी पाँव पड़ने पर अपनी शक्ति-भर काटने से नहीं बाज़ आती, तब हम फिर मनुष्य होकर क्यों चुपचाप सहेंगे।’²³, ‘देर तक’ कहानी का रमुआ भी शोषण का विरोध करते हुए नौकरी छोड़ देता है। यह अंत नहीं उपन्यास का नरोत्तम अपनी बेटी के साथ बदसलूकी होते देख श्रवणसिंह का काम एकदम छोड़ देने को तैयार हो जाता है। श्रवणसिंह के पंचायत बैठाने पर भी वह डरता नहीं। स्पष्ट कह देता है—‘तो क्या हमें बय खरीद लिया है?’²⁴ इसी उपन्यास में जोखन के हाथ-पैर टूट जाने पर मजदूर संगठन’ के एकत्र होने और उसे जीवन-भर की नौकरी मालिक से दिला देने की सफलता का उल्लेख किया गया है।

रूढ़ियों और आडंबरों के विरोध में

कथाकार ने ‘गृहप्रवेश’ कहानी में एक ऐसे प्रोफेसर के बेटे का वर्णन किया है, जिसने ‘बिना किसी कुशल पंडित को दिखाए पूजा-पाठ कराए, बिना मुहल्ले वालों को भोज भात दिए अपने दो-तीन लेखक मित्रों को हल्के चाय-नाश्ते पर आमंत्रित कर गृहप्रवेश कर लिया।’²⁵ उनकी मान्यता है कि ‘रूढ़ियों से सीधे मत टकराओ। कतराकार आगे निकल जाओ। परिवार से जवाब-तलब करने से कोई फ़ायदा नहीं। काम करते जाओ, धीरे-धीरे परिवार अपने-आप उस काम को स्वीकार कर लेगा।’²⁶ ‘पहली घटना’ कहानी की विधवा मीना जब विपिन से दूसरा विवाह करना चाहती है, तब पिता, चाचा, माँ, भाभी, भाई सभी विरोध करते हैं, परंतु मीना स्पष्ट कह देती है—‘क्या जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को टुकराकर ढोंग की पक्षधरता करना ही इज्जत है।’²⁶

भूत-प्रेत और डायन जैसे अंधविश्वासों के विरोध में कथाकार ने ‘युद्धस्थल’ के बोध को खड़ा किया है जो रामशरण बहू का पक्ष लेते हुए गरजता है—‘इस गाँव में अनेक डायन हैं, लेकिन उनमें से कोई रामशरण बहू की तरह बेसहारा नहीं है। उनके यहाँ अनेक लाठियाँ हैं। उनमें से किसी को खींच लाने की हिम्मत तो आपको नहीं होगी। रामशरण बहू को असहाय समझकर आप शेर बन रहे हैं।’²⁸ ‘अभी भी’ कहानी के झगरू को, जब कोढ़ के कारण गंगा में फेंकने का निश्चय किया जाता है, तब सरजू पूछता है—‘बाबू लोग, मैं यह जानना चाहता हूँ, क्या झगरू को गंगा जी में फेंक देने से हरखू (झगरू के बेटे) की देह का खून बदल जाएगा।’²⁸

दहेज व नारी-उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज़ उठाने में कथाकार ने ‘नरेश बहू’ कहानी के माध्यम से बीरू जैसे साहसी पात्र की सृष्टि की है। गाँव के सभी लोग जब नरेश बहू को गाँव से खदेड़ रहे थे, तब बीरू एकदम कड़े शब्दों में बोल उठा, ‘बाबू साहब, गाँव न आपका है और न मेरा। इसे गाँव से भगाने का आपका कोई अधिकार नहीं!...देखता हूँ, कौन रोकता है। xxx यह औरत इसी गाँव में रहेगी।’³⁰ ‘तिरिया जनम’ कहानी की सुनयना को सहारा देने वाले हैं—‘उसके मामा/ पत्थर की लकीर’ कहानी के बाबा निर्भीक पुरुष जोन गाँव के मुखिया से डरते, न किसी और से। गाँव के मुखिया सखीचंद पांडेय द्वारा बेइज्जत की गई फुलिया के बिलखने को सुनकर बाबा हरदयाल अपना गंडासा लेकर सखीचंद के दरवाजे पहुँच गरजे

थे—‘साले सखीचंद, जिस तरह तुमने फुलिया को बेइज्जत किया है, उसी तरह तुम्हें अपने घर इसे रखना होगा, इसे नहीं रखोगे तो इसी गंडासे से तुम्हारा वध करूँगा।’³¹ इससे भयभीत सखीचंद ने अपने घर से अलग कहीं फुलिया के रहने की व्यवस्था कर दी।

शिक्षा के प्रति विभिन्न पात्रों की रुचि प्रदर्शित करके कथाकार ने आज के युग में शिक्षा का महत्त्व भी समझाया है। ‘तिरिया जनम’ कहानी की सुनयना पढ़-लिखकर नौकरी की इच्छा रखती है। वह अपने मामा से सदा प्रेरित होती है। ‘रास्ते’ कहानी की सुचित्रा ससुरालवालों से तंग आकर पढ़ने लगी है। वह आई.ए. की तैयारी में जुट जाती है। ‘माटी कहे कुम्हार से’ उपन्यास में मुनीलाल सभी को अक्षरज्ञान कराने और ज़्यादा से ज़्यादा पढ़ाने में रूचि लेता है। ‘सुरंग में सुबह’ उपन्यास के राव मानवेंद्र बाबू मैट्रिक पास जर्नादन को बी.ए. तक पढ़ जाने के बाद नौकरी करने की सलाह देते हैं, जिसे जर्नादन के पिता सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। ‘प्रेम न बाड़ी ऊपजे’ की नायिका शकुंतला प्रेम-विवाह के असफल हो जाने पर शिक्षा के बल पर ही नौकरी प्राप्त करती है। इस प्रकार कथाकार ने शिक्षा का महत्त्व दर्शाया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मिथिलेश्वर ने भारतीय संस्कृति के अच्छे-बुरे दोनों पक्षों को उपस्थित करने का सफल प्रयास किया है। उनकी मूल चिंता अंधविश्वासों आदि के उन्मुलन की है, जिनके विरोध में उन्होंने कोई-न-कोई विशिष्ट पात्र जन्मा है, जो न केवल अन्याय का प्रतिकार करता है वरन् अबलाओं की रक्षा में भी सन्निद्ध रहता है। कथाकार ने उन कारणों की भी खोज की है, जिनके परिणामस्वरूप किसी को भी डायन या भूत-प्रेत की संज्ञा दे दी जाती थी। विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह पर भी उन्होंने बल दिया है। जीविकोपार्जन के लिए स्त्री हो या पुरुष सभी के लिए उन्होंने शिक्षा की अनिवार्यता स्वीकार की है। संक्षेप में मिथिलेश्वर का उद्देश्य उपदेशात्मक नहीं, यथार्थ की प्रस्तुति है।

संदर्भ

1. प्रतिनिधि कहानियाँ, कहानी-हरिहर काका, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पृ० 84
2. दूसरा महाभारत, पृ० 50, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. युद्धस्थल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1981; पृ० 16
4. माटी कहे कुम्हार से, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2006; पृ० 35
5. युद्धस्थल, पृ० 18
6. दूसरा महाभारत पृ० 28
7. बाबू जी, मयूर पेपर बैक्स, 2-75, सेक्टर-5, नोयडा, संस्करण 1976; पृ० 39
8. मिथिलेश्वर : संकलित कहानियाँ, पृ० 236
9. वही, पृ० 232
10. बाबू जी, पृ० 51
11. प्रतिनिधि कहानियाँ मिथिलेश्वर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ० 130-31
12. वही, पृ० 132
13. वही, पृ० 65

14. वही, पृ० 67
15. यह अंत नहीं, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000; पृ० 99
16. वही, पृ० 16
17. वही, पृ० 74
18. भोर होने से पहले, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण-1994, पृ० 199
19. बाबू जी, पृ० 75
20. माटी कहे कुम्हार से, पृ० 9
21. प्रेम न बाड़ी ऊपजै, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, संस्करण 1995, पृ० 9
22. मेघना का निर्णय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1980, पृ० 66
23. वही, पृ० 19
24. यह अंत नहीं, पृ० 55
25. बाबू जी, पृ० 129
26. वही, पृ० 51
27. युद्धस्थल, पृ० 169
28. दूसरा महाभारत, पृ० 11
29. दूसरा महाभारत, पृ० 11
30. मिथिलेश्वर : संकलित कहानियाँ, पृ० 52-53
31. वही पृ० 64

पत्नी श्री अनुराग शर्मा
प्रज्ञा चौक, विष्णु धाम
न्यू माधो नगर, सहारनपुर (उ०प्र०) 247001
मोबाइल : 0941158368

रमेशचंद्र शाह कृत उपन्यास 'गोबरगणेश' की दूसरी कड़ी 'विनायक' (तुलनात्मक अध्ययन के विशेष संदर्भ में)

डॉ० सुनीता शर्मा शोध-निदेशक
सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय
अमृतसर (पंजाब)

सुनीता
शोध-छात्रा, हिंदी-विभाग
गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय
अमृतसर (पंजाब)

देश की विविधता तथा विचित्रता में मूलभूत एकता का अंतर दर्शन कराने में तुलनात्मक अध्ययन का विशेष महत्त्व है। तुलना शब्द 'तुल' धातु से बना है, जिसका अर्थ है— 'बराबरी, होड़, मुकाबला'।¹ अंग्रेजी में इसके लिए Compare शब्द प्रयोग होता है। तुलना शब्द का अन्य कोशागत अर्थ—'सादृश्य, समता, बराबरी'² है जबकि अध्ययन का अर्थ है—पढ़ना, पढ़ाई।³ अतः कहा जा सकता है कि दो या दो से अधिक वस्तुओं के मध्य समता, वैषम्य अथवा एक-दूसरे से कम-ज्यादा होने का विचार तुलनात्मक अध्ययन है। साहित्य के अंतर्गत किन्हीं दो लेखकों, दो रचनाओं, दो युगों या दो भाषाओं में रचित साहित्य का तुलनीय संदर्भों के आधार पर अध्ययन करना तुलनात्मक अध्ययन कहलाता है। 'विनायक' उपन्यास के अध्ययन उपरांत ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'गोबरगणेश' उपन्यास का ही अगला भाग है। जिनका वर्णन अनिवार्य है।

रमेशचंद्र शाह बहुआयामी प्रतिभा के धनी हैं। उन्होंने कहानी, निबंध, कविता, नाटक, उपन्यास, डायरी-लेखन इत्यादि प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने अपने समृद्ध साहित्य द्वारा समाज की रूढ़िवादी परंपराओं, लोगों की कुंठित मानसिकता, बौद्धिक युग की त्रासदी, स्त्री के प्रति समाज की संकुचित दृष्टि इत्यादि पर कुठाराघात किया है तथा पाठकों के सम्मुख एक नया दृष्टिकोण रखा है। 'गोबरगणेश', 'विनायक', 'पूर्वापर', 'पुनर्वास', 'कथा-सनातन', 'आखिरी-दिन', 'किस्सा-गुलाम', 'आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू' इत्यादि इनकी विशिष्ट रचनाएँ हैं। जीवन की समग्रता को लेकर लिखे जाने के कारण उनके उपन्यास साहित्य ने अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है। आलोच्य कृतियों का परिचय निम्नलिखित है—

‘गोबरगणेश’ रमेशचंद्र शाह का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जो कि सन् 1977 ई० में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है। यह उपन्यास कुमाऊँ क्षेत्र के पहाड़ी प्रदेश में एक साधारण दुकानदार-परिवार के संवेदनशील बालक विनायक के बचपन से आरंभ होता है। इसमें नायक के बाल से यौवनावस्था तक विभिन्न क्रिया-कलापों एवं उसकी आकांक्षाओं का वर्णन मिलता है। विनायक के परिवार में माँ, बाबू, माथुर काका, जगन काका और बड़ी बहन सरोज है। माँ कुशल गृहिणी हैं। बाबूजी बेरोज़गारी के कारण पारिवारिक कर्तव्यों से विमुख हैं। परिवार आर्थिक रूप से माथुर काका की दुकान पर निर्भर है। माथुर काका अपने जीवन की अभावग्रस्त स्थिति को कभी विस्मृत नहीं कर पाते। अपने सामाजिक स्तर को ऊँचा करने के लिए वह विनायक की शिक्षा में सहायता करते हैं।

जगन काका देशभक्त और क्रांतिकारी हैं। वह आज़ादी की लड़ाई में जेल चले गए थे इसलिए वह अल्मोड़ा शहर के हीरो हैं तथा विनायक के आदर्श पुरुष भी हैं। सरोज, विनायक की बहन, स्त्रीवर्ग की त्रासदी को दर्शाती महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ग़रीबी के कारण उसका अनमेल विवाह हो जाता है। उपन्यास में ससुराल द्वारा उसके संस्कारों की अवहेलना कर प्रतिदिन उसे प्रताड़ित करना अथवा उसकी दुर्दशा करना प्रमुख है। इसमें विनायक के मित्र-लच्छू, अहमद, त्रिभुवन, चंदू इत्यादि भी अपना अलग स्थान रखते हैं। इलाहाबाद में उच्च शिक्षा की पढ़ाई के मध्य विनायक का शांतम् नामक लड़की से प्रेम-प्रसंग आरंभ हो जाता है, परंतु ग़रीबी व आर्थिक तंगी के कारण शांतम् से विवाह नहीं कर पाता तथा उसे छोड़ अपने गाँव लौट आता है। जीवन की विपरीत परिस्थितियों के मध्य विनायक का संघर्ष तथा अपनी सामाजिक परिस्थिति को बदलने का अनवरत प्रयास, मेहनत एवं लगन प्रशंसनीय है।

रमेशचंद्र शाह का चर्चित उपन्यास ‘विनायक’ राजकमल प्रकाशन द्वारा सन् 2011 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का नायक ‘विनायक’ सत्तावन वर्षीय एक प्रौढ़ आत्मकेंद्रित बुद्धिजीवी व्यक्ति है। इसकी नायिका ‘मालती’ विनायक की पत्नी है तथा इनके दो पुत्र हैं। नायक बंबई में विश्वविद्यालय के अँग्रेज़ी-विभाग के प्रोफेसर हैं तथा पत्नी समाज-सेविका का कार्य करती है। दोनों नौकरीपेशा होने के कारण एक-दूसरे को पर्याप्त समय नहीं दे पाते, जिससे उनके दांपत्य जीवन में हमेशा द्वंद्व चलता रहता है। ये गृहकलह केवल परिवार का वातावरण ही खराब नहीं करती, बल्कि दोनों बच्चों की मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करती है। इसी कारण माता-पिता के प्रति बच्चों के मन में द्वेष की भावना का वर्णन है। विनायक अपने अहं के कारण कभी मालती के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाता है। वह अपने अहं को मार्गरेट, शकुंतला तथा समाज द्वारा पोषित करने का प्रयास करता है। उसका मार्गरेट तथा शकुंतला नामक स्त्रियों से विवाहेतर संबंध स्थापित होता है, परंतु जब विभागाध्यक्ष बनने का अवसर आता है तो विनायक मार्गरेट को छोड़ देता है।

अपनी महत्त्वाकांक्षा और बौद्धिक अहं की पूर्ति हेतु वह मालती, मार्गरेट और शकुंतला से कट जाता है। इसके लिए मार्गरेट विनायक को टुकराती है तो शकुंतला भी उसे फटकारती है और मालती भी उसे कोई प्रतिक्रिया देना बंद कर देती है। समाजसेवा के मध्य अपने भाषणों से प्रभावित लोगों की प्रतिक्रिया देख विनायक को मालती, मार्गरेट और शकुंतला के द्वारा आहत अहं को राहत मिलती है। नायक उसी समाजसेवा को अपनाता है, जिसे मालती ने कबका अपना

रखा था और विनायक उसे नापसंद करता था। उसके द्वारा पत्नी की इस समाजसेवा पर किया व्यंग्य इस प्रकार है—‘जैसे इन्हीं के किए दुनिया बदल जाने वाली हो, इन्हीं को एकमुश्त ठेका मिल गया हो दुनिया-भर को सुधारने का।’⁴

वह अब इसी समाज-सेवा के कार्यों में स्वयं को व्यस्त कर लेता है। मालती, मार्गरेट और शंकुतला तीनों उसे अपने स्वतंत्र अस्तित्व का अहसास करवाती हैं। फलतः विनायक और मालती के दांपत्य जीवन में अलगाव की स्थिति आ जाती है। दोनों ही अपने-अपने कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं और एक-दूसरे की ओर से निरासक्त हो जाते हैं। अतः उक्त कृति आधुनिक युग में अकेलेपन, कुंठा, संत्रास, दांपत्य जीवन में टकराव, अहं का वर्चस्व, बौद्धिक वर्ग की त्रासदी इत्यादि को दर्शाती एक उत्कृष्ट रचना है।

इन दोनों उपन्यासों का अध्ययन करने के उपरांत ‘विनायक’ उपन्यास ‘गोबरगणेश’ उपन्यास की अगली कड़ी लगती है, जो लेखक की रचनात्मकता की विशिष्टता एवं गहरी तथा सूक्ष्म अंतर्दृष्टि से परिचित करवाती है। इन दोनों कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन समानता एवं असमानता के अंतर्गत किया जा रहा है—

साम्य की दृष्टि से दोनों उपन्यासों के विशिष्ट प्रसंग इनकी सादृश्यता की ओर संकेत करते हैं। नायक की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो ‘गोबरगणेश’ का नायक विनायक है। इसमें लच्छू, चंदू, त्रिभुवन, अहमद, नारायण इत्यादि उसके बाल-सखा के रूप में चित्रित हैं। ‘विनायक’ उपन्यास का नायक भी विनायक ही है, जिसकी अवस्था सत्तावन वर्ष की है तथा इसमें चंदू, लच्छू, त्रिभुवन, अहमद, नारायण इत्यादि नायक के प्रौढ़ सखा के रूप में चित्रित हैं। इनसे भावुक रूप से जुड़े होने के कारण दोनों उपन्यासों में इनका वर्णन है। ‘विनायक’ उपन्यास में नायक शहर से अपने गृहनगर अल्मोड़ा आने पर इन मित्रों में मुलाकात करता है। शहरीकरण के कारण विनायक की वैचारिक दृष्टि में काफी परिवर्तन आ जाता है, परंतु मित्रों की वैचारिक दृष्टि ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। अतः नायक एवं उसके सहायक पात्रों की दृष्टि से भी गोबरगणेश उपन्यास का विकास ही विनायक में हुआ है।

दोनों उपन्यासों में नायक द्वारा अपनी शिष्या के प्रति आकर्षित होने का वर्णन मिलता है। ‘गोबरगणेश’ में विनायक अपनी आर्थिक तंगी के कारण शांतम् नामक लड़की को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर देता है। धीरे-धीरे विनायक और शांतम् एक-दूसरे की तरफ आकर्षित हो जाते हैं और उनमें प्रेम-प्रसंग शुरू हो जाता है। उदाहरणतः ‘शांतम् ने ‘फिर उसकी दोनों हथेलियों पर काफ़ी देर तक अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बिछाते हुए सहसा उन्हें उठाकर अपने गालों से चिपटा लिया और काँपते होंठों और मुँदी आँखों से आधी अँग्रेज़ी, आधी अटपटी हिंदी में फुसफुसाते हुए कहा, ‘डू यू ... डू यू रियली।’⁵ विनायक उपन्यास में भी विनायक अपनी शिष्या शंकुतला को शोधकार्य करवाते हुए उससे प्रेम करने लगता है। दोनों एक-दूसरे की तरफ आकर्षित होते हैं। जैसे कि इन पंक्तियों से पता चलता है—‘उसने शंकुतला को दोनों बाँहों में घेरकर अपने से सटा लिया और उसके बालों में अपना मुँह गड़ा दिया।’⁶

अतः अपनी शिष्या के प्रति आकर्षित होने का वर्णन दोनों कृतियों में मिलता है। यौवनावस्था का यह मोह वृद्धावस्था में भी निरंतर बना रहता है।

‘गोबरगणेश’ उपन्यास में विनायक और शांतम् का प्रेम कहीं-न-कहीं जगन काका

और भक्ति के आपसी प्रेम का प्रभाव लिए हुए है। भारतीय परिवेश में पल्लवित-पुष्पित विनायक परंपरागत मूल्यों का पालन करता है। वह शांतम् के प्रति समर्पित रहता है, परंतु आर्थिक विषमता एवं पारिवारिक कर्तव्य के बोझ के कारण उसे अपना नहीं पाता।

‘विनायक’ का नायक प्रौढ़ है। परिवेशगत परिवर्तन उसके दृष्टिकोण को भी परिवर्तित करता है। विवाहित पुरुष होने के उपरांत भी वह कर्तव्य क्षेत्र में मागरेट (सहकर्मी) तत्पश्चात् शिष्या शकुंतला की तरफ आकर्षित हो जाता है। वैचारिक परिवर्तन के कारण विनायक के लिए यह सहज परिचलन है। विनायक का स्त्रियों के प्रति आकर्षण उसका अपरिपक्व भावनात्मक स्तर, कामुक प्रवृत्ति, कामवासना की अतृप्ति, आधुनिकता का प्रभाव इत्यादि हो सकता है। अतः प्रमुख नायक के रूप में यदि विचार किया जाए तो ‘गोबरगणेश’ उपन्यास का नायक विनायक का चरित्र ‘विनायक’ उपन्यास में विकसित एवं परिवर्तित रूप में दिखाई देता है, जिसे लेखक की दृष्टि में नायक का पूर्णावतार भी कहा जा सकता है।

पारिवारिक गृह-कलह दोनों ही कृतियों में मुखर रूप से चित्रित हुई है। इन उपन्यासों में गृह-कलह से बालकों पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन मिलता है। ‘गोबरगणेश’ में परिवार में संबंधों का आपसी द्वंद्व (चाचा-चाची, माता-पिता इत्यादि) विनायक को मानसिक रूप से प्रभावित करता है, जिससे उसके अबोध मन को आघात पहुँचता है। जबकि ‘विनायक’ उपन्यास में यह द्वंद्व विनायक-मालती के पुत्र के जीवन में विद्रोह लेकर आता है।

‘गोबरगणेश’ में माथुर काका और विनायक का आपसी वार्तालाप इसका परिचय देता है। माथुर काका के शब्दों में ‘तो साले, मैं ही राक्षस हूँ? माथुर काका इतनी जोर से चिल्लाए कि विनायक बुरी तरह डर गया।’ उसी प्रकार ‘विनायक’ उपन्यास में अपने माता-पिता के आपसी द्वंद्व को देखकर उनके बेटे बड़कू के शब्दों में—‘यह क्या, आए-दिन तमाशा होता रहता है आपके और मम्मी के बीच? फॉर गॉड्ज सेक, प्लीस स्पेयर अस दिस नॉनसेंस। हम तंग आ गए हैं आप लोगों की इन बचकानी हरकतों से।’⁸

इस प्रकार इन कृतियों में जीवन-संघर्ष, पारिवारिक-कलह के मध्य बच्चों की कोमल संवेदनाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है। स्वयं को इस स्थिति से निकालने का प्रयास दृष्टव्य है। गोबर-गणेश का विनायक बचपन में ऐसी परिस्थितियों को भोग चुका है। बच्चा अपने परिवार एवं समाज से जैसा प्रभाव लेता है, उसी को ही दोबारा लौटाता है। ‘गोबरगणेश’ कृति में गृह-कलह से ग्रसित बालक का मन अब प्रौढ़ावस्था में स्वयं के परिवार व दांपत्य जीवन को प्रभावित करता है, जिससे उसके बच्चों पर नाकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अर्थात् अब उसके बच्चे इस चीज को भोगते प्रतीत होते हैं।

नारी का जीवन अनेक समस्याओं से ग्रस्त रहा है। प्राचीनकाल में नारी के समक्ष दूसरी प्रकार की समस्याएँ थीं। जैसे-गृहस्थ जीवनयापन करते हुए पति, सास-ससुर इत्यादि की दरिद्रता का शिकार होना। आज समयानुसार आधुनिककाल में नारी की समस्याएँ इससे भिन्न हैं। आज उसे घर से बाहर नौकरी भी करनी पड़ती है, जिससे उस पर दोहरी मार पड़ती है। आज वह दोनों तरफ से शोषित हो रही है। नारी को केंद्र में रखकर यदि अध्ययन किया जाए तो ‘गोबरगणेश’ में प्राचीन नारी की समस्याओं तथा विनायक में आधुनिककाल की नारी की त्रासदी को दर्शाया गया है।

अनमेल विवाह के कई प्रकार हैं। जैसे—आयु में असमानता, विचारों की भिन्नता, शिक्षा में विषमता, आर्थिक स्तर पर समान न होना इत्यादि। विवाह स्त्री-पुरुष के लिए पवित्र बंधन होता है। यदि यह बंधन इच्छा के अनुरूप न हो तो यह पीड़ादायक बन जाता है। अनमेल विवाह से पीड़ित नारी को जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'गोबर-गणेश' उपन्यास में नायक की बहन सरोज का धनाभाव के कारण प्रौढ़ व्यक्ति से विवाह कर दिया जाता है। सरोज सारे कर्तव्यों का पालन करने उपरांत भी अपने पति की उपेक्षा का पात्र बनती है। पति द्वारा उसकी पिटाई भी होती है। उसकी बहुत दुर्दशा की जाती है। लड़की के पिता उसे लेने पहुँचते हैं तो पति उनको भी तिरस्कृत करता कहता है—'छोड़ो माँ, जाने दो, इनका दिमाग ठिकाने नहीं है, जो इनका मन हो करने दो।'⁹

शांतम् की माँ भी अपने पति द्वारा तिरस्कृत होती है। शांतम् विनायक को अपनी माँ के विषय में बताते हुए कहती है—'डैडी गुस्से में आकर दरवाजा बंद करके उन्हें पीटने लगते हैं। मैं छोटी थी तो ऐसा अक्सर होता था।'¹⁰

शांतम् की माँ स्वयं विनायक के समक्ष इस बात को स्वीकार करती कहती है—'हमने तो ज़िंदगी में बहुत दुख पाया, अब अपनी लड़की को दुखी नहीं देखना चाहता।'¹¹

पुरुषों द्वारा अपमानित होने पर भी ये नारियाँ विद्रोह नहीं करतीं तथा अपनी नियति समझ सहज ही स्थिति से समझौता कर लेती हैं, परंतु 'विनायक' उपन्यास में मालती अपने पति विनायक से उचित वाद-विवाद करती है, जिससे उनके दांपत्य जीवन में हमेशा द्वंद्व चलता रहता है। मालती अपने सारे कर्तव्यों का निर्वाह उपरांत भी पति द्वारा तिरस्कृत होती है। वह मालती के प्रत्येक कार्य की आलोचना करता है। विनायक के शब्दों में पत्नी की समाज-सेवा की उपेक्षा इस प्रकार है—'जैसे इन्हीं के किए दुनिया बदल जाने वाली हो, इन्हीं को एकमुश्त ठेका मिल गया हो दुनिया भर को सुधारने का।'¹²

मालती पति द्वारा शोषित नहीं होती, बल्कि इसका विद्रोह करती है, जिससे विनायक के अहं को ठेस पहुँचती है। अतः दोनों उपन्यासों में नारी के जिन रूपों का चित्रण है, उससे रमेशचंद्र शाह की विकसित उपन्यास-कला के दर्शन होते हैं, जो प्राचीनता दर्शन से आधुनिकता की ओर उन्मुख हुई है। नारी को पुराने रीति-रिवाजों व रूढ़ियों में बँधा दर्शाया गया है। दूसरी ओर 'विनायक' उपन्यास में नारी इन रूढ़ियों से विद्रोह कर बाहर निकली है। वह अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं सक्षम बन समाज में विचरण कर रही है। दोनों उपन्यासों में साम्य के इन महत्वपूर्ण बिंदुओं के उल्लेख के पश्चात् वैषम्य के उन महत्वपूर्ण बिंदुओं की ओर ध्यान केंद्रित करते हैं, जो विनायक को गोबरगणेश की अगली कड़ी कहने पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं।

वैषम्य की दृष्टि से—'विनायक' उपन्यास में आधुनिक बौद्धिकवर्ग की त्रासदी को दर्शाया गया है। आधुनिकयुग में बौद्धिकवर्ग की कुंठा, संत्रास, द्वंद्व, रिश्तों में तनाव इत्यादि को चित्रित किया गया है, जबकि 'गोबरगणेश' रमेशचंद्र शाह का आत्मकथात्मक उपन्यास है, जिसमें निम्न मध्यवर्गीय परिवार के संघर्ष की त्रासदी को केंद्र में रखा गया है। निम्न-मध्यवर्गीय परिवार का बालक अपनी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अपने परिवार को उन्नत करने का अनवरत प्रयास एवं कड़ी मेहनत करता है।

'गोबरगणेश' बालक-मन पर आधारित कृति है, जिसमें विनायक के परिवार की

आर्थिक विपन्नता को चित्रित किया गया है। इसके विपरीत 'विनायक' में प्रौढ़ अवस्था के व्यक्ति का जीवन मुख्य है, जिसमें पति-पत्नी दोनों नौकरीपेशा हैं। इसमें आर्थिक रूप से संपन्न परिवार का वर्णन मिलता है।

'गोबरगणेश' में यौवनावस्था के प्रेम पर चर्चा की गई है, जबकि 'विनायक' उपन्यास में विवाहेतर संबंधों का वर्णन है। इसमें नायक कभी मागरेट और कभी शकुंतला से प्रेमप्रसंग चलाता है।

'गोबरगणेश' दांपत्य जीवन की त्रासदी को दर्शाता है। विनायक का पिता बेरोजगारी के कारण अपने परिवार का उत्तरदायित्व नहीं सँभाल पाता। आर्थिक तंगी के कारण उनके दांपत्य जीवन में मनमुटाव देखने को मिलते हैं। इसके विपरीत 'विनायक' आधुनिकयुग में नौकरीपेशा दांपत्य जीवन की विडंबना को दर्शाता है। यहाँ आर्थिक स्थिति तो मजबूत होती है, परंतु पति-पत्नी दोनों नौकरीपेशा होने के कारण एक-दूसरे को पर्याप्त समय नहीं दे पाते। समयाभाव के कारण उनमें दूरियाँ बढ़ती जाती हैं, जिससे तलाक तक की नौबत आ जाती है।

उद्देश्य की दृष्टि से भी इन दोनों उपन्यासों में वैषम्य दिखाई पड़ता है। गोबरगणेश एक सामान्य वर्ग के अंतर्जीवन की संघर्ष-गाथा प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत 'विनायक' आधुनिकयुग में नौकरीपेशा लोगों की व्यस्त दिनचर्या की त्रासदी को दर्शाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रचनाकार ने अपने दृष्टिकोण को दो धरातलों पर पाठकों के सम्मुख रखा है और वह है उसकी दो कृतियाँ—गोबरगणेश और विनायक। दोनों रचनाओं का विषय अलग-अलग है, परंतु समाज के प्रति सजगता एक-जैसी है। समाज की विसंगतियों एवं विडंबनाओं पर कुठाराघात कर लोगों में उचित दृष्टिकोण का निर्माण करना केंद्र में है। इन्हीं संदर्भों के आधार पर 'गोबरगणेश' के विकासात्मक रूप की पूर्ति 'विनायक' में होती है, जिसके आधार पर विनायक को गोबरगणेश की अगली कड़ी कहा जा सकता है।

संदर्भ

1. गुलाब रसूल, तुलनात्मक अनुसंधान एवं उनकी समस्याएँ (लखनऊ : हिंदी साहित्य भंडार, 1980), पृ० 26
2. बृहत् हिंदी कोश, कालिकाप्रसाद (संपा०) (वाराणसी : ज्ञानमंडल लिमिटेड, संस्करण, 2011), पृ० 486
3. वही, पृ० 40
4. रमेशचंद्र शाह, विनायक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2011), पृ० 40
5. रमेशचंद्र शाह, गोबरगणेश (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1977), पृ० 225
6. रमेशचंद्र शाह, विनायक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2011), पृ० 173
7. रमेशचंद्र शाह, गोबरगणेश (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1977), पृ० 1630
8. रमेशचंद्र शाह, विनायक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2011), पृ० 84
9. रमेशचंद्र शाह, गोबरगणेश (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1977), पृ० 323
10. वही, पृ० 225
11. वही, पृ० 256-257
12. रमेशचंद्र शाह, विनायक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2011), पृ० 40

दिशाओं की करवट में हिंदी-कविता

डॉ० सुनीता शर्मा

सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय
अमृतसर (पंजाब)

इक्कीसवीं सदी का प्रवेश भारत में हर तरह से चौंकाने वाला है, क्योंकि जो सामाजिक, औद्योगिक, तकनीकी एवं सूचना का विकास एक-डेढ़ दशक में हुआ है, उसने इस देश में उत्तर-आधुनिकता का ध्वज और ऊँचा कर दिया है। समाज की इस सूचना एवं औद्योगिक क्रांति तथा नवीन तकनीक ने रचनाकार के मस्तिष्क को उर्वरा शक्ति प्रदान की है, जिससे लेखन के क्षेत्र में नई संभावनाओं एवं नई दिशाओं का मार्ग प्रशस्त हुआ है। कविता बाह्य परिस्थितियों के अंतस पर पड़े प्रभाव की अभिव्यक्ति है। इसमें न केवल मानवीय सुख-दुख अपितु मानव-कल्याण का भाव भी रहता है। आज अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी और तकनीक के आ जाने से यदि भारत बाजारवाद का अखाड़ा बन गया है तो भारतीय समाज की बहुत-सी अस्मिताएँ, मूल्य एवं मर्यादाओं पर भी प्रभाव पड़ा है, जिससे आज का सामाजिक जागरूक हुआ है। हिंदी-कविता आज के इन्हीं वैश्विक संदर्भों को अपने में समेटे हुए है। इसमें एक ओर जहाँ विकासगाथा है तो दूसरी ओर भूमंडलीकरण, बाजारवाद और उपनिवेशवाद के वर्तमान दौर में आम भारतीय की व्यथा-कथा का मार्मिक साक्ष्य भी है। आज की हिंदी-कविता कहीं पुरातन इतिहास के प्रसंगों को उद्घाटित करती है तो कहीं बिखरती मर्यादाओं एवं टूटते मूल्यों के साथ पश्चिमी संस्कृति के आवरण को भारतीय संदर्भों में खोलने का प्रयत्न करती है। कविता के विकास की इन विभिन्न दिशाओं को निम्नलिखित शीर्षकों में चित्रित किया जा रहा है—

1. **मानवीय संबंधों का बदलता स्वरूप** : आज की कविता बदल रहे मानवीय संबंधों को रेखांकित करने में अपना महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रही है। मानवीय अलगाव को इसने बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है और कवियों के अनुसार आदमी को आदमी से काटने में बाजार की बड़ी भूमिका है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रसार, औद्योगिक घरानों की चकाचौंध में खोया व्यक्ति अपने को कैसे अजनबी पाता है। सुशीलकुमार का कविता-संग्रह 'तुम्हारे शब्दों से अलग' किसान मजदूर और आम आदमी पीड़ा की मार्मिकता को व्यक्त करता है। कविता बाजार और कविता में वे लिखते हैं—

बस पौ फटने की देर है,

कि आदमी बाजार के विरुद्ध कबीर की तरह लकुटी लिए/

इसी बाजार में खड़े मिलेंगे जगह-जगह।'

दूसरी ओर इस बहुराष्ट्रीय कंपनियों, नई बैंकिंग नीति ने व्यक्ति को परिवार एवं समाज से काटकर उसके जीवन को स्वयं का भी नहीं रहने दिया है, इसीलिए लाखों किसान और

असहाय व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए विवश हैं। 'कपास के अगले मौसम में' कविता-संग्रह में कवि हरिओम ने मनुष्यता की इस नियति का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि आज इन कंपनियों के लिए व्यक्ति की कीमत किसी बेचे जाने वाले माल के समान है—

इस विपन्न समय में हम जिसे मानते हैं ज़िंदगी
उसे तुम समझते हो माल।
और जिसकी कीमत चुका तुम कितनी सहजता से
बन गए हो हमारी ज़िंदगी के मालिक।²

इस समय में जब व्यक्ति एक-दूसरे से बिल्कुल कट चुका है। हर व्यक्ति किसी-न-किसी संघर्ष से गुज़र रहा है पर उसकी पीड़ा नितांत स्वयं की है। किसी दूसरे को इसका अहसास तक भी नहीं है। देखने वालों को दूर से ऐसा लगता है कि सब-कुछ सुखमय चल रहा है। फिर किसी के पास इतना समय भी कहाँ है कि वह दूसरे की चिंताओं के दर्द को जान सके। संजय पारिख की कविता-संग्रह 'तुम हो तो हूँ' में कवि ने इसके विषय में इस प्रकार लिखा है—

जो नन्ही चिड़िया सवेरे
पास की दीवार से चहकती थी।
वो अब रात भी पंख फड़फड़ाती है
हम/ कैसे दर्द जानें दूसरे का।³

इस विकास-क्रांति और महँगाई ने मानव के सपने भी उससे छीन लिए हैं। निश्चित होकर सोने का, नए सपनों की दुनिया में खोना और फिर उसे पूरा करना इस सबसे दूर होकर आम व्यक्ति को आजीविका की चिंता में ही ग्रसित पाया गया है। उमा अर्पिता की कविता 'कल और आज' की प्रकार इसी मनःस्थिति का यथार्थांकन करती है—

मन अब सपने नहीं बुनता
वह लगाता है हिसाब बच्चों की फीस
मकान का किराया, दूध का बिल
पेपर का बिल और न जाने कितने ही
खर्चों का जिन्हें सारी रात जोड़ता है मन...।⁴

इसी आजीविका की चिंता ने मानव को एक जीता-जागता 'प्रोडक्ट' बना दिया है। विज्ञापनों की चकाचौंध में दुनिया भटक रही है। जीवन में यांत्रिकता का बोलबाला हो गया है। आज विज्ञापन देखकर ही वस्तु खरीदने का निर्णय लिया जाता है, इसलिए हर वस्तु के विक्रय के लिए अच्छे-से-अच्छे विज्ञापन बनाए जा रहे हैं और इन विज्ञापनों के केंद्र में है—'नारी' और 'बच्चा'। संबंधों की त्रासदी है कि मंदिर माने जाने वाले नारी के शरीर को वस्तु की तरह प्रयोग में लाया जा रहा है और बाज़ार अभीप्सित लाभ प्राप्त कर रहा है। स्त्री प्रसन्न है कि उसके सौंदर्य का विकास हो रहा है, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ रही है, पर वास्तव में 'मॉडर्निटी' के स्थान पर 'ब्लगरिटी' परोसी जा रही है। प्रदीप जिलवाने की कविता 'केलेंडर पर मुस्कुराती हुई लड़की' बाज़ार की इस सच्चाई को इस प्रकार व्यक्त करती है—

और मुस्कुराते हुए उसके होंठों पर, एक किस्म का आमंत्रण है।

और यह आमंत्रण उसकी देह के समाने का नहीं
 उसकी देह चुपड़े प्रोडक्ट तक जाने का है।⁵
 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' की शिक्षा देने वाला यह देश ऐसे दौर से गुजर रहा है कि कवि
 यह लिखने के लिए विवश है—

मगर कौन नहीं जानता कि बंद किवाड़ों के भीतर
 यहाँ नारी को कितना और कैसे पूजा जाता है।
 और जबकि किवाड़ों के बाहर भी। दुनिया अब
 उन्हें महज देह साबित करने में व्यस्त है।⁶

2. **पारिवारिक संबंधों को महत्त्व** : आज के इस तकनीकी और मीडिया के युग ने
 संबंधों की गर्माहट को फिर से जगाया है। कवि ने इस बात पर बल दिया है कि संबंधों की
 उत्कट लालसा ही व्यक्ति को परिश्रम करने के लिए प्रेरित भी करती है। आज के वर्तमान समाज
 को यदि देखा जाए तो पता चलता है कि तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के बाद युवावर्ग घर
 छोड़कर बाहर आजीविका हेतु चले जाते हैं, पर वहाँ पर संबंधों का आकर्षण उन्हें व्यथित करता
 है। इसी को ध्यान में रखकर कवियों ने माँ को आधुनिक कविता का केंद्र बनाया है। पद्मा
 सचदेव नीम की टहनी को माँ की बाँह के रूप में देखती हुई लिखती हैं—

नीम की टहनी या माँ की बाँह है।
 बिन दरख्तों के भटकती छाँह है।⁷

दूसरी ओर कवि हरिओम ने 'माँ भीतर हवेली' जैसी कविताओं की रचना कर माँ को
 मानव-सभ्यता की सबसे मजबूत कड़ी बताया है। वह लिखते हैं—

माँ तुम उदास मन से ही सही/ पिता की मुस्कान के
 इतिहास पर सोचना, क्योंकि तुम्हारा उबरना/
 इक्कीसवीं सदी के सौंदर्यशास्त्र के लिए/ बेहद जरूरी है।

आज प्रतिभा-पलायन हो रहा है। बच्चे थोड़े सक्षम होने के बाद विदेशों में चले जाते
 हैं और घर में माँ-बाप उनका बचपन याद करके ही दिन व्यतीत करते हैं। प्रवासी बेटे की
 वर्षगाँठ पर एक माँ कहती है—

लिखना तो तुम्हें था
 तुम्हारी वर्षगाँठ ऐसे बीते जैसे
 उत्सव की रात्रि
 जैसे लदा हुआ गुलमोहर

लिखना तो तुम्हें था और भी कितना कुछ
 पर मन के घायल होने का मर्म तुम तो
 नहीं जानोगे मेरे बच्चे
 तपती रेत पर नंगे पाँव चल रहा है मेरा देश
 तेरा भी देश।⁸

इन्हीं संबंधों की मिठास को याद करते हुए कवि रामदरश मिश्र लिखते हैं—

नदी-सी माँ की ममता।
धूप-सा पिता का आशीष।
हवा-सा भाई-बहनों का प्यार।¹⁰

बेटा जब बाहर पढ़ने चला जाता है और उसके पत्र भी जब घर नहीं पहुँच पाते तो माँ बेटे की याद में आँसू बहाकर रह जाती है। ऐसे में बेटे माँ को इस अवस्था में देखकर कहती है—

माँ ने कहाँ से खरीदी थीं चिट्ठियाँ?
माँ के पास कौनसा बाज़ार था?
माँ ने भैया को इतनी दूर क्यों भेज दिया?
पढ़ाई क्या इतनी ज़रूरी होती है?
माँ इस शहर में क्यों रहती है
जहाँ चिट्ठियाँ भी नहीं मिलतीं
जिन्हें पढ़कर
मैं भी आँसू भरी आँखों से हँस सकूँ।¹¹

3. **घर को महत्त्व** : 'बसुधैव कुटुम्बकम्' का स्वप्न देखने वाले भारत में घर गायब हो रहे हैं। आज घर मकान में तब्दील हो रहे हैं। फ्लैट या कॉटेज में बदल रहे हैं। ईट, लोहे, बालू, सीमेंट से घर कहाँ बनता है? विभिन्न उपकरणों के सजा देने से घर नहीं बनता। घर का निर्माण तो स्नेह, प्रेम, विश्वास और संवेदना से होता है। पर आज औद्योगिकीकरण के कारण घर केवल प्रतीक्षालय बनकर रह गया है, इसलिए आज के कवि घर के प्रति बहुत चिंतित हैं। युवा कवि जितेंद्र श्रीवास्तव 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' कविता में लिखते हैं—

मेरे कदम भागते हैं हर साँस के साथ।
मैं पहुँचता हूँ घर जहाँ मेरी प्रतीक्षा से
लंबी एक प्रतीक्षा राह अगोरती मिलती है मुझसे।
घर टूटते जा रहे हैं और मकान में तब्दील हो रहे हैं।¹²

घर के इन रागात्मक संबंधों पर बाज़ारवादी अर्थव्यवस्था भारी पड़ रही है। महँगाई के कारण घर बनाना कठिन है, इसलिए आज का कवि घर की पीड़ा में संतप्त है। 'सौ साल फिदा' कविता-संग्रह में गौरव सोलंकी की चिंता इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

घर के लिए जिसे जितना ढूँढो
वह उतना खोता जाता है।¹³

दूसरी ओर कवि बेघरों के लिए भी चिंतित है। इसलिए उन्हें प्रेरित करता हुआ वह कहता है—

हमें हाथ पकड़कर चलना है
खोना है मेलों में
और ढूँढते रहना है घर।¹⁴

आज के इस युग में बाज़ार और घर का अंतराल समाप्त हो रहा है। कवि रामदरश मिश्र ने अपनी कविताओं में बाज़ार की उपमा पाते हुए घर के संघर्ष को रेखांकित किया है। वे

लिखते हैं घर को समाप्त करने में विश्व के व्यवसाय-संपन्न देशों का बड़ा हाथ है। वे विश्वग्राम का (Global Village) नारा देकर अपनी वस्तुएँ तो बेच रहे हैं, पर उस सबकी चक्की में पिस रहा है घर। कवि ने घर से निष्कासित होते मानव की स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है—

अब तो विश्व के संपन्न वणिकदेश
विश्वग्राम का मोहक नारा देकर पिछड़े देशों में
फैलाते जा रहे हैं बाज़ार का रंगीन माया जाल
यानी एक नया उपनिवेश
उनके द्वारा बनाई गई वस्तुएँ
दूसरे देशों के लिए ज़रूरी न होकर भी
ज़रूरी होती जा रही हैं/ उनके मोह के
पाश में बंधकर/ लोग उन्हें सगर्व सजाते
जा रहे हैं अपने-अपने घरों में
और अनजाने ही स्वयं निष्कासित होते जा रहे हैं घर से।¹⁵

वास्तव में अगर विदेशों की ओर देखा जाए तो पता चलता है कि वहाँ पर घर नाम की न कोई संस्था है और न घरों को महत्त्व ही दिया जाता है। आज उसी लकीर पर भारत को भी चलाने के विदेशी प्रयास कुछ-कुछ सफल होते जा रहे हैं, पर यदि संबंधों की गर्माहट बनी रहे इसके लिए घर भारत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। घर के विषय में कवयित्री सविता मिश्र लिखती हैं—

सुनो/ घर होते ही हैं
शाम को लौटने के लिए
सुनो/ अनसुना मत करो
बेहद ज़रूरी है शाम को/ अपने घर लौटना
जहाँ बच्चों के साथ घर भी शामिल है
हमारे इंतज़ार में।¹⁶

4. **पर्यावरणीय चिंता का अंतर्नाद** : पर्यावरण से अभिप्राय है—जलवायु-परिवर्तन जिसके लिए वायुप्रदूषण, जलप्रदूषण, मृदाप्रदूषण जिम्मेदार हैं। पर्यावरण का विशेष अर्थ है—जो चारों तरफ़ से गैसों से घिरा हो। मनुष्य की जीवन-शैली, उसकी भाषा, संस्कृति सभी उसके अंग हैं। आज प्राकृतिक पर्यावरण प्रदूषित होने के साथ-साथ मनुष्य ने अपने आस-पास के पर्यावरण को भी दूषित कर लिया है। इसी पर्यावरण की दूषिता के लिए सचेतता लाने हेतु सभी मानविकी विषयों में इसका चित्रण हो रहा है। ऐसे में राष्ट्रभाषा रचनाकार कैसे मौन साध सकता है। लेखक दूरदृष्टि संपन्न होता है। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से मनुष्य को आने वाली आपदाओं से सचेत भी करता है और समाधान भी प्रस्तुत करता है। अतः पर्यावरण आज की कविता का एक अभिन्न अंग है, क्योंकि औद्योगिक तरक्की के लिए पर्यावरण से जो छेड़छाड़ की गई है, उसका दुष्परिणाम भी तो मानव ही झेल रहा है। ईश्वर ने तो सृष्टि को बड़े संतुलित ढंग से बनाया है, जिसमें जंगल, पहाड़, नदी, नाले, फल-फूल और पशु-पक्षियों के रूप में विविध रंग भरे हुए हैं, पर मनुष्य ने नवनिर्माण के बहाने जो ईश्वरीय निर्माण को चुनौती दी है, इसका परिणाम हम

भुगत रहे हैं। मानव-कल्याण में सहायक पशु-पक्षियों की कई प्रजातियाँ अब लगभग नष्ट हो चुकी हैं। चिड़िया के लिए कहा जाता है प्रवासिनी हो चुकी है, पर नहीं वह तो सूचना-तंत्र की भेंट चढ़ गई। कवि हरिओम ने अपनी कविता में प्रकृति और पर्यावरण की विराटता का वर्णन किया है। तीव्र गति से कटते हुए जंगलों को देखकर कवि का मन कह उठता है—

लहूलुहान जंगल है, टूटता हुआ समय है
और हारी हुई मनुष्यता।¹⁷

विकास के नाम पर समाप्त होते पहाड़ों, नदियों और पेड़ों को देखकर कवि मानव को सजग करता कहता है—

बस थोड़ी देर में दुख की तरह टूटेंगे पहाड़
उम्मीद की तरह सूखेगी नदियाँ
और उम्र की तरह कटेंगे कच्चे पेड़
सब ओर होगा आक्रामक आज़ादी का भयावह जश्न।¹⁸

कवि प्रदूषित होते पर्यावरण को देखकर चिंतित है। इसलिए वह पर्यावरण-सुरक्षा के लिए पाठकों को सचेत करके यह कहना चाहता है कि सारी ताकतें मिलकर ही इसके विकास के लिए योगदान दे सकती हैं। जैसे कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

जब तक समाज की और ताकतें अपना सहयोग नहीं देती।
तब तक अकेली कविता से कुछ नहीं होगा।¹⁹

सरकार द्वारा पर्यावरण-स्वच्छता हेतु नीतियों का निर्माण करना और उन्हें लागू करना ऐसे प्रारंभिक प्रयास हैं, जिनसे पर्यावरण में सुधार लाया जा सकता है।

5. प्रेम की प्रतिष्ठा : प्रेम जीवन का सार है। यह एक ऐसा गहन तत्त्व है, जो प्राणों में स्पंदन बनाए रखता है। आधुनिक कविताओं में कवियों ने वासनाजन्य प्रेम का परित्याग कर आत्मिक प्रेम को स्थान दिया है। ऐसा प्रेम जिसका रस कहीं गहरे में समाया है, जो जीने का साधन है। 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' कविता-संग्रह में कवि जितेंद्र श्रीवास्तव लिखते हैं—

तुम रहती हो/ मुझमें/ गहरे बहुत गहरे कहीं।
मेरी आत्मा के रस में घुली हुई
जीवनरस की तरह।²⁰

प्रेम को जीवन का आधार मानकर देह से ऊपर उठे प्रेम की गंभीरता और विराटता के विषय में कवि लिखता है—

यह प्रेम बोध नहीं क्षण-भर का
यह यात्रा है जीवन की।²¹

प्रेम मनुष्य के पास एक शक्ति है, संपत्ति है, उसके जीने का सहारा है। प्रेम के बिना जीवन लक्ष्यहीन हो जाता है। प्रेम कर्म का प्रेरक तत्त्व है। डॉ० हरमहेंद्र सिंह बेदी अपने कविता-संग्रह 'फिर से फिर' में इसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति करते हैं—

प्रेम कृपा है या संपदा, अर्थ है या शब्द
वजह जीने की या फिर स्मृति बोन की।²²

6. असहाय बच्चों एवं वृद्धों का वर्णन : आधुनिक कवियों ने जहाँ एक परिवर्तन-

क्रांति को अपनाया है तो दूसरी ओर असहाय दीनहीन बच्चे भी उनकी लेखनी का विषय बने हैं। रामदरश मिश्र के कविता-संग्रह 'धूप के टुकड़े' में कवि ने मुक्तकों में कविता की रचना करते हुए असहाय छोटू का ऐसा यथार्थांकन किया है कि पाठक की सारी संवेदना उसकी विवशता के साथ जुड़ जाती है। कवि के शब्दों में—

फुटपाथ पर टूटा हुआ अरमान हो छोटू
इस देश की जनतंत्र की पहचान हो छोटू
उट्टो कि तुम्हीं हाथ हो, निर्माण हो छोटू
ताकत से अपनी आज तक अनजान हो छोटू²³

औद्योगिक क्रांति आने से आज युवा आजीविका हेतु घर छोड़कर चले जाते हैं तो उनके वृद्ध माता-पिता असहाय हो जाते हैं। एक विचित्र पीड़ा उन्हें घेर लेती है। कवयित्री ने 'वृद्धाश्रम' कविता में वृद्धों की पीड़ा को निम्नलिखित पंक्तियों में चित्रित किया है—

बूढ़ी आँखों से, बरसता है दर्द हर क्षण।
रात के सन्नाटे में
जगमगाती स्मृतियों के बीच
बिखर-बिखर जाता है मन
गीला तकिया टीस उठता है बार-बार।²⁴

इस प्रकार आज की कविता के माध्यम से कवि असहाय बच्चों और वृद्धों के दुख-दर्द व उनके अधिकारों के प्रति उन्हें सचेत करते दिखाई देते हैं।

7. **शैलीगत परिवर्तन** : आधुनिक कविता में शैली की दिशा में भी कई परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। इस नई तकनीक में संज्ञाविहीन कविताएँ लिखी जा रही हैं। कवि स्थान एवं नाम-विशेष को छोड़कर सर्वनामों के प्रयोग से कविता-रचना कर रहे हैं। इसलिए आज की कविता 'तू', 'मैं', 'वो' जैसे सर्वनाम धड़ाधड़ प्रयुक्त हो रहे हैं। जैसे कि बसंतकुमार परिहार की कविता 'अलाव जल रहा है' की पंक्तियाँ उदाहरणस्वरूप उद्धृत हैं—

छोड़कर तेरे चमन को
मैं आ गया हूँ मैदाने-जंग में
लड़ने को जंग/ तेरे जुल्म के खिलाफ़।²⁵

समस्त मानवता को संबोधित करने के लिए आज का कवि सर्वनामों का प्रयोग करता है, ताकि पूर्ण विचारधारा को पाठकों के सम्मुख रख सके। जैसे—

मजे में हैं वे तो सदियों से,
सारा इतिहास उनके मजे की ही दास्तान।
वे जिनका वर्णन नहीं इस कहानी में,
उनका मानुष होने का ही सबूत क्या है।²⁶

शैली के अंतर्गत अनेक प्रश्नों को उठाता हिंदीकवि उसी अंदाज़ में उत्तर देता चलता है, जो उसकी अभिव्यक्ति की विलक्षणता की परिचायक है।

अतः आधुनिक हिंदी-कविता अपनी जिस बहुआयामी दृष्टि से रची जा रही है, इससे उसने विषयगत परिवर्तनों को तो समेटा ही है। साथ ही अभिव्यक्ति को भी विस्तार दिया है।

आज मानव की हर समस्या, उसके हर ख़तरे को भाँपकर कवि अपनी कविता में उस भाव को उतारता है तो साथ-साथ मानव को सचेत करने हेतु उपाय भी बताता चलता है और उस विषय के महत्त्व को भी रेखांकित करता चलता है, इसलिए तो संबंधों को महत्त्व देता आज का कवि इसकी गर्माहट को को बनाए रखने के लिए माता-पिता के वात्सल्य को कविता में उतार रहा है। इसी भाव के लिए घरों के बिखराव को ध्यान में रखते हुए मकान नहीं अपितु घर का महत्त्व पर प्रकाश डाल रहा है। वह नारी और असहाय अनाथ बच्चों के लिए चिंतित है तो उनको समाज में उचित स्थान दिलवाने के लिए प्रयासरत भी है। इस प्रकार इन विविध करवटों में पैदा होती हिंदी-कविता का महत्त्व अक्षुण्ण है।

संदर्भ

1. सुशीलकुमार, तुम्हारे शब्दों में, कविता-बाज़ार और कविता, हिंदी युग्म, दिल्ली 2011
2. हरिओम, व्यास के अगले मौसम में, कविता-ज़िदगी कपास, शिल्पायन, दिल्ली 2011
3. संजय पारिख, तुम हो तो मैं हूँ, कविता-बेचैन कविहृदय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2010
4. उमा अर्पिता, कुछ सपने कुछ सच, कविता-कल और आज, नमन प्रकाशन, दिल्ली 2012
5. प्रदीप जिलवाने, जहाँ भी हो ज़रा-सी संभावना, कविता-कैलेंडर पर मुस्कुराती हुई लड़की, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2012
6. वही।
7. पद्मा सचदेवा, तेरी बातें ही सुनने आए, कविता-नवाँ माह, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2010
8. हरिओम, कपास के अगले मौसम में, कविता-माँ भीतर हवेली, शिल्पायन, दिल्ली 2011
9. राजी सेठ, आधुनिक महिला-लेखक, कविता-प्रवासी बेटे की वर्षगाँठ पर, शिल्पायन, दिल्ली 2012
10. रामदरश मिश्र, आग की हँसी, कविता-हाय गाँव हाय गाँव, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली 2010
11. सविता मिश्र, इस बार बसंत में, कविता-फिर एक बार, नमन प्रकाशन, दिल्ली 2011
12. जितेंद्र श्रीवास्तव, बिल्कुल तुम्हारी तरह, कविता-घर, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2011
13. गौरव सोलंकी, सौ साल फिदा, कविता-घर के लिए, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2012
14. वही, कविता-लौट कर जाने के लिए होगा घर, वही
15. रामदरश मिश्र, आग की हँसी, कविता-विश्वग्राम, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली
16. सविता मिश्र, इस बार बसंत में, कविता-हक, नमन प्रकाशन, दिल्ली 2011
17. हरिओम, कपास के अगले मौसम में, कविता-जंगलकथा, शिल्पायन, दिल्ली 2011
18. वही
19. वही
20. जितेंद्र श्रीवास्तव, बिल्कुल तुम्हारी तरह, कविता-तुम, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2011
21. वही
22. हरमहेंद्र सिंह बेदी, फिर से फिर, कविता-अनकृति, साहित्य सिलसिला, दिल्ली 2011
23. रामदरश मिश्र, धूप के टुकड़े, संख्या 21-22, शांति पुस्तक मंदिर, दिल्ली 2012
24. सविता मिश्र, इस बार बसंत में, कविता-वृद्धाश्रम, नमन प्रकाशन, दिल्ली 2011
25. बसंतकुमार परिहार, अलाव जल रहा है, आकार प्रकाशन, अहमदाबाद 2008

प्रेमचंद का साहित्य : स्वराज्य की रूपरेखा

डॉ० सुरेशकुमार

हिंदी विभाग

बी०एल०जे०एस० कॉलेज, तोशाम (भिवानी)

हिंदी साहित्य जगत में प्रेमचंद एक व्यक्ति का नाम नहीं, बल्कि एक युग का नाम है। प्रेमचंद साहित्य और जीवन का घनिष्ठ रूप से संबंध मानते हैं। 1901 से 1936 के बीच प्रेमचंद ने एक लंबी वैचारिक यात्रा तय की है। 'गोदान' को आधुनिक जीवन का महाकाव्य बनाने में उन्हें पैंतीस वर्ष लगे। किसी एक भारतीय लेखक ने इतनी लंबी निरंतर ऊर्ध्वगामी विकास-यात्रा का परिचय इससे पहले नहीं दिया। भारत में पहली बार प्रेमचंद ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीति के अंतःसंबंधों की जटिलता को अपने साहित्य के माध्यम से जनसाधारण के लिए सुलभ बनाया। इसी विकास-यात्रा के साथ प्रेमचंद की दृष्टि में स्वराज का स्वरूप भी निरंतर विकसित होता गया, जो अंत में क्रांतिकारी जनवादी होता रूप ग्रहण करता गया।

प्रेमचंद हर राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन के सार्थक पक्ष के समर्थक रहे हैं। इन आंदोलनों को प्रेमचंद के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा और परखा है। जब भी इन आंदोलनों अथवा इनसे जुड़े व्यक्तियों की सार्थक भूमिका समाप्त होती दिखाई दी, प्रेमचंद नये सार्थक रास्ते की तलाश में आगे निकल आते हैं। आंदोलन के विभिन्न आयाम, किसानों और मजदूरों के आंदोलन, जटिल होती हुई आर्थिक व्यवस्था और शोषण-तंत्र, संश्लिष्ट भारतीय समाज-व्यवस्था, भारतीय बुर्जुवा वर्ग और सामंतवर्ग का परस्पर सहयोग और आपसी अंतर्विरोध, पतनशील साम्राज्य-व्यवस्था, दलितवर्ग और नारीमुक्ति, धर्म, सांप्रदायिकता तथा भावी भारत का स्वरूप भारतीय साहित्य संस्कृति और भाषा का रूप ये सब प्रेमचंद की चिंता के विषय हैं। ज्यों-ज्यों उनकी चिंताओं का दायरा बढ़ता गया, उनकी दृष्टि लगातार व्यापक होती गई। उनकी चेतना एक विकासशील प्रक्रिया का नमूना है।

प्रेमचंद के आरंभिक लेखन में स्वराज्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं है। उन्होंने धार्मिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों, महंत, पंडों, पुरोहितों जनता को, भ्रमित करने वाली धार्मिक संस्थाओं तथा नारीमुक्ति जैसे विषयों को अपने लेखन का विषय बनाया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध तथा देशप्रेम की भावना उनके लेखन में आरंभ से ही रही है। साम्राज्यवाद के सक्रिय विरोध के कारण उनकी रचनाएँ जब्त हुईं। प्रेमचंद जी ने स्वदेशी आंदोलन का समर्थन किया, क्योंकि वे चाहते थे कि स्वदेशी वस्तुओं का देश में अधिक-से-अधिक प्रयोग होना चाहिए। विदेशी माल के बहिष्कार से राष्ट्रीयता को बल मिलेगा। इस संबंध में उन्होंने 'जमाना' में कई लेख भी लिखे। उनका विचार था कि बिना स्वदेशी चीजों जैसे रूई, कपड़ा, चीनी आदि के प्रसार के राष्ट्रीय मुक्ति नहीं है।

भारतीय जनता ने इस स्वदेशी आंदोलन का खुले दिल से समर्थन किया। 'गबन'¹ के दवीरीन जैसे साधारणजन ने उसी आंदोलन में अपने दो जवान बेटे चढ़ा दिए। इसके बाद भी यह हौसला रखा कि यदि मेरे और भी बेटे होते तो उन्हें भी देश पर बलिदान कर देता। राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक जन-आधार प्रदान करने में गांधी जी की ऐतिहासिक भूमिका से कोई इंकार नहीं कर सकता। प्रेमचंद संघर्षशील गांधी के साथ थे। किसानों की पीड़ा पर मरहम लगाने वाले साम्राज्यवाद-विरोधी महात्मा जी को वह श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे गांधीवादी थे या गांधी के स्वराज्य की कल्पना ही प्रेमचंद के स्वराज्य की कल्पना है। गांधी के व्यक्तित्व से प्रभावित प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम'² में प्रेमशंकर के चरित्र को प्रस्तुत किया है। वह पहला उपन्यास है, जो जमींदारों के शोषण का संपूर्ण रूप से चित्रण करता है तथा इस वर्ग द्वारा किए जा रहे अन्याय और क्रूरता का कलात्मक विवरण भी देता है। उस समय के किसान-आंदोलन की प्रमुख माँगों जैसे लगानबंदी, चारागाहों, तालाबों का समाजीकरण तथा बेगारी के विरोध का प्रेमचंद ने इस तरह के किसान आंदोलन के कभी पक्षधर नहीं रहे। उन्हें संदेह है कि सत्याग्रह में अन्याय का दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धांत भ्रांतिपूर्ण सिद्ध हो गया है। यद्यपि उपन्यास का अंत प्रेमाश्रम बनाकर करते हैं, जो गांधी के नैतिकवादी आदर्श से प्रभावित हैं।

प्रेमचंद 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में किसान की मुक्ति के लिए सोवियत क्रांति की ओर आशापूर्ण दृष्टि डालते हैं। रूस और बलगारिया में हुई समाजवादी क्रांतियों की तरह वे भारत में भी किसान-मजदूरों के राज्य की आशापूर्ण कल्पना करते हैं। उन्होंने इसी उपन्यास में कहा है कि 'मनुष्य को अपनी कमाई खानी चाहिए। किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरों की कमाई को अपनी जीवन-वृत्ति का आधार बनाए।'³

प्रेमचंद जी ने 'नया जमाना-पुराना जमाना (1919) नामक अपने प्रसिद्ध लेख में कहा है, 'स्वराज्य की बेकार और बेमतलब सदाओं पर तकिया करके बैठने का अब वक्त नहीं। क्योंकि आने वाला जमाना अब जनता का है। वह लोग पछताएँगे जो जमाने के साथ क्रदम से क्रदम मिलाकर न चलेंगे।'⁴ इसी लेख में उन्होंने कहा है, 'क्या यह शर्म की बात नहीं है। जिस देश में 90 फीसदी आबादी किसानों की हो, उस देश में कोई किसानसभा, कोई किसान की भलाई के आंदोलन का व्यवस्थित प्रयत्न न हो। आने वाला जमाना अब किसानों और मजदूरों का है।'⁵

प्रेमचंद सामंती-व्यवस्था की समाप्ति में ही किसानों की मुक्ति देखते थे। विश्व पटलपर हो रही घटनाएँ उन्हें प्रभावित कर रही थीं और उनकी आंकाक्षा को आशा का संबल मिल रहा था। अपनी पत्नी के साथ हुए वार्तालाप में उन्होंने कहा, 'हाँ, रूस है, जहाँ कि बड़ों को मार-मारकर दुरुस्त कर दिया गया। अब वहाँ गरीबों को आनंद है। शायद यहाँ भी कुछ दिनों बाद रूस जैसा ही हो।'⁶

प्रेमचंद के लिए स्वराज का अर्थ केवल राजनीतिक स्वाधीनता नहीं था। वे जनसाधारण की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति की आंकाक्षा रखते थे। व्यक्तियों को बदलने से किसी बड़े परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती है। साम्राज्यवाद से भारत को शीघ्र मुक्ति मिलेगी, प्रेमचंद के ऐतिहासिक बोध और घटनाक्रम के सही विश्लेषण ने उन्हें इसके प्रति

आश्वस्त कर दिया था। लेकिन ब्रिटिश शासन के बाद भारत की भावी रूपरेखा के प्रश्न पर वह अधिक चिंतित थे। उन्हें भय था कि स्वराज की गंगा को पूँजीपति और जमींदार आज़ादी के बाद भी केवल अपने हित-साधन में प्रयोग करेंगे त्याग और बलिदान करने वाले श्रमिक किसान तट से ही प्यासे लौट जाएँगे। उन्होंने कहा, 'जॉन के स्थान पर गोविंद को बैठा देने से ही स्वराज्य नहीं आ जाएगा। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राण हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वह विदेशी नहीं, स्वदेशी है।'

प्रेमचंद जी ने कहा है कि स्वराज्य की प्राप्ति केवल स्वप्न देखने और बात करने से ही नहीं होती क्योंकि वह महाजनी सभ्यता के पैसे दाँतों और नाखूनों से भली भाँति परिचित थे। उससे लड़ने के लिए उचित तैयारी और रणनीति की आवश्यकता को उन्होंने उस समय भी महसूस किया था। उन्होंने मृत्यु शैया से आह्वान किया था, 'मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा। दरिंदों के बीच में उससे लड़ने के लिए हथियार बाँधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतोपन नहीं चाहता।'⁸

प्रेमचंद के अपने स्वराज्य की कल्पना में किसी भी प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विषमता का कोई स्थान नहीं है। उनका स्वराज शोषणरहित समाज के रूप में है। अपने प्रसिद्ध और अंतिम लेख 'महाजनी सभ्यता' में उन्होंने कहा कि 'धन्य है वह समता जो मालदारी और व्यक्तिगत संपत्ति का अंत कर रही है और जल्दी या देर से दुनिया उसका पदानुकरण अवश्य करेगी। यह समता अमुक देश की समाज-रचना अथवा धर्म-मजहब से मेल नहीं खाती या उस वातावरण के अनुकूल नहीं है, यह तर्क नितांत असंगत है। जो शासन-विधान और समाज-व्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है, वह दूसरे देशों के लिए भी हितकर होगी। हाँ, महाजनी सभ्यता और गुर्गे अपनी शक्ति-भर उसका विरोध करेंगे। उसके बारे में भ्रमजनक बातों का प्रचार करेंगे, जनसाधारण को बहकाएँगे, उनकी आँखों में धूल झोंकेंगे। पर जो सत्य है एक दिन उसी की विजय होगी और अवश्य होगी।'⁹

संदर्भ

1. प्रेमचंद, गबन, पृ० 170
2. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० 227
3. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० 43
4. प्रेमचंद, नया ज़माना पुराना ज़माना लेख 1919, पृ० 269
5. प्रेमचंद, नया ज़माना पुराना ज़माना, पृ० 263
6. प्रेमचंद, प्रेमचंद घर में, शिवरानी देवी प्रेमचंद, पृ० 110
7. प्रेमचंद, आहुति : हंस, नवंबर 1930
8. प्रेमचंद, मंगलसूत्र, पृ० 390
9. प्रेमचंद, महाजनी सभ्यता, प्रेमचंद स्मृति, पृ० 264

हिंदी विभाग
बी०एल०जे०एस०कॉलेज, तोशाम (भिवानी)
मो० 9034870766

प्रेमचंद के कथासाहित्य में महिला का मनोविश्लेषण

‘बड़े घर की बेटी’ के संदर्भ में

डॉ० सुरेशकुमार

सहायक प्रोफेसर (हिंदी)

बी०एल०जे०एस० महाविद्यालय, तोशाम

प्रेमचंद एक समर्थ एवं सशक्त कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी इस प्रतिष्ठा में उनकी रचनादृष्टि एवं जीवनमूल्यों की स्थितियों का विशेष योगदान है। प्रेमचंद का समग्र कथासाहित्य उनके ‘जीवनानुभवों का खुला दस्तावेज़ है।’¹ ‘प्रेमचंद का कथासाहित्य मानवीय अनुभूतियों से संपन्न है।’² प्रेमचंदपूर्व युग हिंदी कहानी का शैशवकाल है।³ प्रेमचंदयुग में कहानी अपने शैशव के कच्चेपन से निकलकर यौवन की पुष्टता को पाने लगती है। जीवन का यथार्थ अपनी संपूर्ण विद्रूपताओं में चित्रित होने लगता, किंतु उनका समाधान आदर्श के रूप में ही कहानी में आता है। कहानी बाह्य घटनाओं के चित्रण एवं कौतूहल-वृत्ति से आगे बढ़कर मानवीय चरित्रों के विश्लेषण में भी इस समय प्रवृत्त होने लगती है।⁴ प्रेमचंद जी की कहानियों में जनसाधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का चित्रण मार्मिक रूप से हुआ है। वे साधारण से साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में सिद्धहस्त थे।⁵ प्रेमचंद ने अपने कथासाहित्य में विभिन्न सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ व्यक्तिगत चुनौतियों व कठिनाइयों को भी चित्रित किया है। उनका साहित्य विभिन्न सामाजिक वर्गों के एक-दूसरे के प्रति पूर्वाग्रहों और दृष्टिकोण को चित्रित करने में भी सफल रहा है।

प्रेमचंद द्वारा रचित ‘बड़े घर की बेटी’ भी इस प्रकार की एक प्रसिद्ध रचना है। इस कहानी में बड़े घर की बेटी के रूप में आनंदी की व्यक्तिगत समस्याओं का वर्णन करते हुए महिला का मनोविश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। ‘बड़े घर की बेटी’ में महिला की समस्या और मानसिकता चित्रित हुई है। जब किसी अमीर और बड़े घर की बेटी का विवाह सामान्य परिवार में हो जाता है तो आरंभ में उस महिला के साथ नए परिवार के प्रति सामंजस्य की समस्या पैदा हो जाती है, जिसका आधार आर्थिक होता है। इसी प्रकार की महिला मनोदशा का चित्रण प्रेमचंद जी आनंदी के माध्यम से करते हैं। ‘बड़े घर की बेटी’ नामक कहानी का यह चित्रण यही सिद्ध करता है, ‘आनंदी अपने नए घर में आई, तो यहाँ का रंग-ढंग कुछ और ही देखा। जिस टीमटाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह यहाँ नाममात्र को भी न थी। हाथी-घोड़ों की तो बात ही क्या, कोई सजी हुई सुंदर बहेली तक न थी। रेशमी-स्लीपर

साथ लाई थी, पर यहाँ बाग कहाँ! मकान में खिड़कियाँ तक न थीं, न ज़मीन पर फ़र्श, न दीवार पर तस्वीरें। यह एक सीधा-सादा देहाती गृहस्थ का मकान था। किंतु आनंदी ने थोड़े ही दिनों में अपने को इस अवस्था के ऐसा अनुकूल बना लिया, मानो उसे विलास के सामान कभी देखे ही न थे।⁶ प्रेमचंद ने यहाँ महिला-मानसिकता की स्वाभाविक प्रतिक्रिया के साथ-साथ उसके विपरीत व नई परिस्थितियों में सामंजस्य का सकारात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है, क्योंकि आनंदी ने स्वयं को नए परिवार के अनुकूल ढाल लिया था।

अमीर या बड़े घर की बेटी ने आर्थिक समस्या को नहीं देखा, इसी कारण घर में बचत करने का दृष्टिकोण नहीं पाया जाता। इस महिला-मानसिकता को भी आनंदी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए 'एक दिन दोपहर के समय लालबिहारी सिंह चिड़िया लिए हुए आया और भावज से कहा—'जल्दी पका दो, मुझे भुख लगी है। आनंदी भोजन बनाकर इनकी राह देख रही थी। अब यह नया व्यंजन बनाने बैठी। हाँडी में देखा तो घी पाव भर से अधिक न था। बड़े घर की बेटी किफायत क्या जाने। उसने सब घी मांस में डाल दिया।'⁷ महिला विवाह के बाद सब-कुछ सहन कर सकती है, परंतु अपने पिता के घर की निंदा सहन नहीं करती। इस प्रकार का मानसिक चित्रण 'बड़े घर की बेटी' में दिखाया गया है। जैसे स्त्री गालियाँ सह लेती है, मार भी सह लेती है, पर मैके की निंदा उससे नहीं सही जाती। आनंदी मुँह फेरकर बोली, 'हाथी मरा भी तो नौ लाख का! वहाँ इतना घी नित्य नाई-कहार खा जाते हैं।'⁸ औरत की शक्ति उसका पति होता है। उसकी अनुपस्थिति में वह यह अनुभव करती है। जैसे—आनंदी को भी क्रोध आया। मुँह लाल हो गया, बोली वह होते तो आज मजा चखा देते।⁹ 'स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमंड होता है। आनंदी खून का घूँट पीकर रह गयी।'¹⁰

महिला का जल्दबाजी में निर्णय लेना और बाद में पछतावा करने की मनोदशा भी कहानी में चित्रित हुई है। जैसे—'आनंदी ने लालबिहारी की शिकायत तो की थी, लेकिन अब मन में पछता रही थी! वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जाएगी। वह मन में अपने पति पर झुँझला रही थी कि यह इतने में गरम क्यों हो जाते हैं। उस पर यह भय भी लगा हुआ था कि मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें तो कैसे क्या करूँगी। इस बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाजे पर खड़े यह कहते सुना कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ है, उसे क्षमा करना, तो उसका रहा-सहा क्रोध भी पानी-पानी हो गया। वह रोने लगी। मन का मैल धोने के लिए नयन-जल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।'¹¹ 'भीतर बुला लो मेरी जीभ में आग लगे! मैंने कहाँ से यह झगड़ा उठाया।'¹² औरत को परिवार के टूटने की चिंता भी होती है। यह भावना भी 'बड़े घर की बेटी' में वर्णित है। जैसे—'पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गयी है। ऐसा न हो, कहीं चल दें।'¹³

संयुक्त परिवार को बिखरते देख महिलाएँ एकता के लिए भावनात्मक प्रयास करती हैं। जैसे—

आनंदी—कहाँ जाते हो?

लालबिहारी—जहाँ कोई मेरा मुँह न देखे।

आनंदी—मैं न जाने दूँगी।

लालबिहारी—मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।
आनंदी—तुम्हें मेरी सौगंद, अब एक पग भी आगे न बढ़ाना।
आनंदी—मैं ईश्वर की साक्षी दे कर कहती हूँ कि तुम्हारी और से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।¹⁴

और अंत में 'बड़े घर की बेटी' आनंदी अपने व्यवहार और बुद्धिमत्ता से संयुक्त परिवार के बिखराव को रोक लेती है। 'बेनीमाधव बाहर से आ रहे थे। दोनों भाइयों को गले मिलते देखकर आनंद से पुलकित हो गए। बोल उठे—'बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती हैं।'

'गाँव में जिसने यह वृत्तांत सुना, उसी ने इन शब्दों में आनंदी की उदारता को सराहा—'बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।'¹⁵

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने 'बड़े घर की बेटी' में महिला के स्वाभाविक व्यवहार का वर्णन किया है। इस रचना में आनंदी के व्यक्तित्व का सकारात्मक दृष्टिकोण चित्रित हुआ है। प्रस्तुत रचना में यथार्थवाद और आदर्शवाद का मिश्रण है। जहाँ एक ओर आनंदी का शिकायत करने का दृष्टिकोण दिखाया गया है, वहीं दूसरी ओर उसका परिवार के बिखराव को रोकने के प्रयास का आदर्शवादी पक्ष भी उजागर हुआ है। प्रेमचंद ने उस पूर्वाग्रह को भी तोड़ने का प्रयास किया है कि अमीर या बड़े घर की बेटी परिवार की समस्याओं को नहीं समझती।

संदर्भ

1. धर्मध्वज त्रिपाठी, प्रेमचंद कथासाहित्य : समीक्षा और मूल्यांकन, 1997, पृ० 215
2. उपर्युक्त पृ० 215
3. पुष्पपाल सिंह, हिंदी कहानी : विश्वकोश, प्रथम खंड 1995, पृ० 13
4. उपर्युक्त पृ० 13
5. गणपतिचंद्र गुप्त, साहित्यिक निबंध, 2003, पृ० 431
6. कमलकिशोर गोयनका द्वारा संकलन एवं संपादन, प्रेमचंद कहानी रचनावली, 2012 पृ० 178
7. उपर्युक्त पृ० 178-179
8. उपर्युक्त पृ० 179
9. उपर्युक्त पृ० 179
10. उपर्युक्त पृ० 179
11. उपर्युक्त पृ० 183
12. उपर्युक्त पृ० 183
13. उपर्युक्त पृ० 183
14. उपर्युक्त पृ० 183-184
15. उपर्युक्त पृ० 184

स्त्री-विमर्श : परिभाषा एवं परिव्याप्ति

शिराज शेख

शोधार्थी, हिंदी विभाग

सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे

वर्तमान समय में हिंदी-साहित्य की विविध विधाओं में स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, अल्पसंख्यक-विमर्श, आदिवासी-विमर्श और कम-अधिक मात्रा में मुस्लिम-विमर्श आदि की चर्चाएँ हो रही हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है। किसी ने ठीक ही कहा है—

**‘अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है,
मुर्दा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है।’**

साहित्य में चर्चित उपर्युक्त विमर्शों के कारण ही समाज स्त्रियों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों और दलितों की स्थितियों से अवगत हुआ और इन उपेक्षित वर्गों के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदला है। साहित्य समाज को प्रकाशमय बनाता है। आज देश का शिक्षित वर्ग नहीं चाहता कि इन उपेक्षित वर्गों को और अधिक उपेक्षित रहना पड़े, इसलिए सेमिनारों, कार्यशालाओं में इन विषयों पर साहित्यिक दृष्टि से विचार किया जाने लगा है। प्रस्तुत आलेख स्त्री-विमर्श की परिभाषा और परिव्याप्ति को रेखांकित करता है। अतः प्रस्तुत आलेख में स्त्री-विमर्श की विविध परिभाषाओं और उसकी परिव्याप्ति को उद्घाटित करते हुए साहित्य में चित्रित स्त्री-विमर्श के कारण बदलाव की स्थिति और संभानाओं को रेखांकित किया जा रहा है।

स्त्री शब्द की व्युत्पत्ति

‘स्त्री शब्द संस्कृत के ‘स्त्रैय’ धातु से बना है। वस्तुतः नारी और स्त्री समानार्थी शब्द हैं। टीकाकार दुर्गाचार्य नारी को स्त्री संज्ञा उसके लज्जाशील होने के कारण मानते हैं।’¹ प्रस्तुत उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री लज्जाशील होती है। स्त्री और नारी समानार्थी शब्द हैं। वेदों में स्त्री को कांता नाम से भी संबोधित किया हुआ दिखाई देता है। ‘कांता’ एक नदी का नाम है।² स्त्री का व्यक्तित्व प्रवाहमयी नदी की धारा के समान समर्पित होने के कारण संभवतः उसे कांता कहा होगा। मनोविज्ञान के अनुसार नर और नारी लिंगभेद को दर्शाते हैं।

विमर्श का अर्थ

बृहद् हिंदी कोश के अनुसार विमर्श का अर्थ है—‘विचार, विवेचन, समीक्षा, गुणदोष की मीमांसा (डेलिबरेशन), परामर्श, तर्क, ज्ञान, शिव, चरम-बिंदु।’³ इस प्रकार स्त्री-विमर्श का अर्थ होता है स्त्री-संबंधी विचार, विवेचन और समीक्षा करना।

स्त्री-विमर्श की परिभाषाएँ

किसी भी वस्तु की परिभाषा देना अत्यंत कठिन कार्य होता है क्योंकि उसे तीन दोषों से बचना पड़ता है। जैसे—‘अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव देशत्रयशून्यम्’ अर्थात् अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव से बचकर की गई परिभाषा ही उचित परिभाषा ठहरती है। स्त्री-विमर्श की विविध परिभाषाएँ निम्नांकित रूप में देखी जा सकती हैं—

1. **पाश्चात्य आलोचक लिंडा गोर्डन**—‘नारीवाद नारी के गौण स्थान का विश्लेषण मात्र है, जिसका हेतु उसकी स्थिति में बदलाव लाना मात्र है।’¹⁴

2. **पाश्चात्य विद्वान जार्डिन**—‘नारीवाद स्त्रियों की दृष्टि से स्त्रियों के लिए किया गया आंदोलन है।’¹⁵

3. **उषा शिंदे**—‘कानून, रूढ़ि, संस्था और जनमत सभी स्तरों पर नारी को मानवता का मूल्यमुक्त अधिकार दिलाने के लिए सूझबूझ के साथ लड़ी जाने वाली राजनीतिक लड़ाई को स्त्रीवाद कहा जा सकता है।’¹⁶

4. **मेरी वॉल्टन क्राफ्ट**—‘मैं यह नहीं चाहती कि पुरुष के बदले अब स्त्री का वर्चस्व पुरुष पर स्थापित होना चाहिए। जरूरत इस बात की है कि स्त्री को स्वयं अपने बारे में सोचने, विचारने एवं निर्णय का अधिकार मिले।’¹⁷

5. **स्वामी विवेकानंद**—‘स्त्री-पूजन से ही समाज की प्रगति होती है। जिस देश अथवा समाज में स्त्री-पूजन नहीं होता, वह देश अथवा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। पश्चिमी देशों के अधःपतन के कारण उन्होंने शक्तिरूपिणी स्त्री की अवहेलना माना है।’¹⁸

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-विमर्श या नारीवाद स्त्री के प्रति, स्त्री के अस्तित्व और उसकी अस्मिता को पहचानने का नूतन दृष्टिकोण है। स्त्री का भी अपना अस्तित्व है। स्त्री, पुरुष समानता के इस प्रवाह में भला स्त्री को ही क्यों प्रताड़ित होना पड़ता है। इसके पीछे क्या कारण हो सकते हैं आदि स्त्री-विषयक विविध समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण ही स्त्री-विमर्श है।

स्त्री-विमर्श : परिव्याप्ति

शब्दकोश के अनुसार ‘परि’ एक उपसर्ग जो समंततोभाव (परिक्रमण), व्याप्ति (परिणत), दोषकथन (परिवाद), भूषण (परिष्कार), पूजन (परिचर्या), आच्छादन (परिच्छद) आदि अर्थों के द्योतन के लिए शब्दों के पूर्व आता है।¹⁹ इन अर्थों को देखने से स्पष्ट होता है कि परि उपसर्ग लगने से परिपूर्णता की खोज करना अनिवार्य होता है।

नालंदा शब्दकोश के अनुसार, ‘व्याप्ति’ का अर्थ है—सब जगह फैला होना।²⁰ इन अर्थों के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-विमर्श ‘परिव्याप्ति’ का अर्थ हुआ स्त्री-विमर्श का फैलावा। निम्नांकित बिंदुओं में स्त्री-विमर्श की परिव्याप्ति पर प्रकाश डाला जा रहा है।

स्त्री-विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति पाश्चात्य विचारकों की देन है। इसका मतलब यह नहीं कि भारतीय चिंतकों ने स्त्री-विमर्श की चर्चा की नहीं, पाश्चात्य स्त्री-विमर्श और भारतीय स्त्री-विमर्श में मूलतः अंतर यह है कि पाश्चात्य स्त्रियाँ पुरुष-सत्ता से अलग होना चाहती हैं। वह अपने आपको सारे बंधनों से मुक्त कराना चाहती है। पर भारतीय स्त्री-चिंतन नारी के हक

की लड़ाई है। वह अपने-आपको सभी बंधनों से मुक्त कराना नहीं चाहती, बल्कि रूढ़ियों और परंपराओं के बंधनों से मुक्त कराना चाहती हैं। पुरुष-समाज ने जो स्त्री को पशु संपत्ति समझकर उस पर अन्याय, अत्याचार करने का प्रयास किया है, उसका आज की स्त्री-लेखिकाएँ विरोध करती हैं। भारतीय स्त्री-लेखिकाएँ अपने हक की लड़ाई लड़ रही हैं और इस लड़ाई के लिए उन्होंने कलम रूपी शस्त्र को हाथ में उठा लिया है। सन् 1975 के उपरांत स्त्री-लेखिकाओं ने हर विधा में स्त्री की मनोदशा का चित्रण करने का सफल प्रयास किया है। कहानी, उपन्यास, कविता, आत्मकथासाहित्य, जीवनी, यात्रावर्णन यहाँ तक कि फ़िल्मों में भी स्त्री के प्रति होने वाले अन्याय की आलोचना होने लगी है। इन विविध साहित्यिक विधाओं में स्त्री-विमर्श को द्योतित किया जा रहा है। इन सभी साहित्यिक विधाओं में स्त्री-विमर्श व्यापित है, जिन्हें निम्नांकित बिंदुओं में देखा जा सकता है—

1. हिंदी आत्मकथा साहित्य

इक्कीसवीं शती की महिला आत्मकथाकारों में प्रमुख रही हैं—रमणिका गुप्ता (हादसे), सुशील राय (एक अनपढ़ कहानी), सुशीला हरीश (प्रतिप्रसंग), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या), मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुंडल बसै, गुड़िया भीतर गुड़िया), कौशल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप...), कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं है दिल मेरा), मन्नु भंडारी (एक कहानी यह भी) आदि। उपर्युक्त महिला लेखिकाओं ने बड़ी संवेदनशीलता और निर्भीकता के साथ अपने स्वानुभूतसत्य की अभिव्यक्ति की है।

2. हिंदी कथासाहित्य

हिंदी कथासाहित्य के इस प्रवाह में चंद्रकिरण सोनरैक्सा, ज्योत्सना देवधर, मन्नु भंडारी, चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, मंजुल भगत, कृष्णा सोबती, मेहरुन्निसा परवेज़, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठ, सूर्यबाला आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में स्त्री-भावनाओं और उसकी हक्रीकृत को स्वर दिए हैं। 'कृष्णा सोबती के 'दिलो दानिश' में स्त्री-पुरुष संबंधों में निहित शिक्षित पुरुष की मानसिकता तथा शोषण को सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है।'¹¹

3. हिंदीकाव्य

हिंदी-कविता में भी नारी ने अपने आत्मसमर्पण को ललकारा है। कात्यायनी के 'सात भाइयों के बीच चंपा' और 'इस पौरुषपूर्ण समय में' काव्य-संग्रहों में स्त्री की बदलती मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है। अनामिका की 'बेवजह' कविता नारी-स्वर एवं समाज में नारी के स्थान पर प्रश्नचिह्न लगाती है। कुसुम अंसल द्वारा लिखित 'वृंदावन' कविता में वृंदावन जैसे पवित्र स्थान पर स्त्रियों के साथ कैसे खिलवाड़ किया जाता है, इसकी यथार्थ दास्तान को अंकित किया गया है।

उपर्युक्त विधाओं के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक विधाओं में भी कम-अधिक मात्रा में स्त्री-विमर्श परिव्याप्त है, पर आलेख की कतिपय सीमाओं के कारण उन्हें यहाँ प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। अतः स्पष्ट होता है कि स्त्री-विमर्श की परिव्याप्ति सभी विधाओं में रही है।

यह स्त्रियों द्वारा चलाया गया साहित्यिक आंदोलन है।

स्त्रियों के हक के लिए भारतवर्ष में अनेक कानून बन चुके हैं, पर स्त्रियाँ आज भी उनका लाभ नहीं उठा पा रही हैं। यदि वे यह लाभ उठा रही होतीं तो आज समाचार-पत्रों में स्त्री-अत्याचार की खबरें न आतीं। आज भी भारतीय स्त्रियों को समाज की प्रताड़ना सहन करनी पड़ती है। स्त्री-जीवन से जुड़ी अनेक समस्याएँ आज भी दिखाई देती हैं। इन समस्याओं को निपटाने के लिए संपूर्ण समाज को जाग्रत होने की आवश्यकता है और स्त्रियों के प्रति परंपरावादी दृष्टिकोण को बदलने की आवश्यकता है।

विचारणीय बात यह है कि गाड़ी दो पहियों पर चलती है, अगर उसका एक पहिया टूटा हुआ हो तो गाड़ी नहीं चल सकती। संसार रूपी गाड़ी को चलाने वाले स्त्री पुरुष के समानता के प्रवाह में सतत नारी को प्रताड़ित किया गया। अतः हमें समतावादी दृष्टिकोण को अपनाना पड़ेगा और स्त्री को आदर और सम्मान से देखना पड़ेगा, तभी स्त्री-विमर्श की चर्चाएँ सफल होंगी।

स्त्री-जीवन विविध समस्याओं से जूझता रहता है। 'संयुक्त परिवार की समस्या', 'दांपत्य जीवन की समस्या', 'प्रेमविवाह की समस्या', 'अंतर्जातीय विवाह की समस्या', 'बेमेल विवाह की समस्या', 'तलाक की समस्या', 'पारिवारिक विघटन की समस्या', 'आर्थिक स्वतंत्रता की समस्या', 'महिलाओं की बेरोज़गारी की समस्या', 'विधवा जीवन अकेले बिताने की समस्या' आदि विविध समस्याओं से एक अकेली स्त्री को जूझना पड़ता है। नारी शक्तिस्वरूपा होने पर भी सदियों से इन समस्याओं से जूझती आ रही है। इन समस्याओं से जूझना पुरुषों के बस में नहीं है। एक अकेला पुरुष इन समस्याओं से जूझता हुआ नहीं दिखाई देता।

उपर्युक्त समस्याओं से जूझती नारी ने आज अपने लेखन के माध्यम से अपने स्वानुभूत सत्य की अभिव्यक्ति अपने लेखन द्वारा की है, जो सत्य और वास्तववादी दर्शन कराती है। स्त्री-विमर्श की व्याप्ति अब सब ओर दिखाई देती है और इसका मूल कारण स्त्रीशिक्षा ही है। अंत में मैं यही कहना चाहूँगा कि स्त्री-विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति तथा स्त्री-सुधार का प्रथम प्रयास पुरुषों द्वारा हुआ है—म० फुले, डॉ० बाबासाहेब अंबेडकर, राजा राममोहन राय, महर्षि कर्वे, दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि समाज-सुधारकों ने पहले-पहल स्त्री-दशा को सुधारने के लिए स्त्री-शिक्षा की आयोजना की नींव रखी, सती-प्रथा का विरोध किया और स्त्री को पुरुषों के समान जीवन जीने की राह दिखाई। तत्पश्चात् सन् 1975 के बाद के साहित्य में विविध स्त्री-लेखिकाओं ने अपनी समस्याओं को साहित्य के माध्यम से अवगत कराया और आज इसी स्त्री-विमर्श के कारण समाज में स्त्री के प्रति होने वाले पुरुष के नज़रिए में बदलाव आता दिखाई देता है। फिर भी आज स्त्रियों की संपूर्ण स्थिति में बदलाव नहीं आया है। आज भी स्त्रियों पर अन्याय और अत्याचार की खबरें सुनने को मिलती हैं। यह संपूर्ण स्थिति बदलने के लिए स्त्रियों को कुछ क़दम उठाने होंगे। जैसे—

1. भारतीय स्त्रियों को पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण नहीं करना चाहिए। सांस्कृतिक परिवर्तन ठीक है, पर अनावश्यक सांस्कृतिक परिवर्तन न हो तो बेहतर है।
2. किसी भी स्त्री को अन्य स्त्री के जीवन में अनचाही दखल नहीं देनी चाहिए।
3. किसी भी माँ को अपने पुत्री के संसार में अनावश्यक दखल नहीं देना चाहिए।

4. हर स्त्री को हमेशा अपने कर्तव्य के प्रति तत्पर रहना चाहिए।
5. अपने स्वरक्षण हेतु अपने-आपको सक्षम बनाना चाहिए।

किसी भी बात का असर तब हो पाता है, जब प्रताड़ित व्यक्ति अपने-आपसे शुरू करे। उपर्युक्त बातों का ध्यान अगर सभी समाज कर सकता है तो संभव है कि आने वाले समय में स्त्री-दशा की दिशा सकारात्मक दृष्टि से सबल हो और भारतीय नारी पुनः शक्तिस्वरूपा देवी का रूप धारण करे।

संदर्भ

1. शोध दिशा, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, 25 वाँ अंक, पृ० 175
2. बृहद् हिंदी कोश, कालिकाप्रसाद, पृ० 1160
3. बृहद् हिंदी कोश, कालिकाप्रसाद, पृ० 1059
4. फ़ेमिनिज़्म एंड रिसेंट फ़िक्शन इन इंग्लिश, सुशीलासिंह, पृ० 8
5. वहीं, पृ० 24
6. साहित्य विविध वाद, डॉ० ओमप्रकाश शर्मा, पृ० 18
7. व्हीडीकेशन ऑफ़ द राइट्स वुमेन, मेरी वॉल्सटोन क्राफ्ट
8. हिंदीकाव्य में नारी, डॉ० वल्लभदास तिवारी, पृ० 38
9. बृहद् हिंदी कोश, कालिकाप्रसाद, पृ० 649
10. नालंदा शब्दकोश, पृ० 492
11. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ० सूर्यनारायण रणसुभे, पृ० 143

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे-7
मो० 09011444059

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के काव्य में दार्शनिकता

डॉ० अनिता रानी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग

राजकीय महाविद्यालय

खरखरा (रेवाड़ी) हरियाणा

दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति 'दृश' धातु से 'करण' अर्थ में 'ल्युट' प्रत्यय के योग से हुई है। इसका शाब्दिक अर्थ है—'जिसके द्वारा देखा जाए' अर्थात् 'दृश्यते अनेन इति दर्शनः'। देखने का स्थूल माध्यम नेत्र है। नेत्रों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसको चाक्षुस प्रत्यय कहते हैं। यह विचार स्थूल दर्शनों द्वारा अनुमोदित है। अन्य सूक्ष्म दर्शन इस मत को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार संसार में ऐसी बहुत सी वस्तुएँ अथवा तथ्य हैं, जिनको चर्मचक्षुओं से देख पाना संभव नहीं होता। उनके लिए सूक्ष्म दृष्टि अपेक्षित है। यह सूक्ष्म दृष्टि चर्मचक्षुओं से संबद्ध न होकर तात्त्विक बुद्धि से संबंधित है। इसी को मनीषियों ने प्रज्ञा चक्षु, ज्ञानचक्षु अथवा दिव्यदृष्टि कहा है।¹ इस प्रकार दर्शन वह विचारशक्ति है, जो विभिन्न विषयों का सही-सही ज्ञान कराती है।

दर्शन का प्रयोजन

दर्शन का प्रमुख प्रयोजन दुख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। संसार दुखमय है। अनेक प्रकार की कायिक-मानसिक व्याधियाँ मानव-मन को घेरे हुए हैं। मनुष्य सभ्यता के आदिकाल से ही इन व्याधियों से मुक्त होने के लिए व्याकुल रहा है। उसने अपनी मुक्ति और दुखों से छुटकारा पाने के लिए निरंतर चिंतन किया है। वेदों में, उपनिषदों में, आरण्यकों में, स्मृतियों में, काव्यों में, नाटकों में, पुराणों में और विविध धर्मग्रंथों में संकलित उसके विचार दर्शन के रूप में सभ्यता के विकास का इतिहास बने हैं। इन सबका उद्देश्य मनुष्य को दुख से छुटकारा दिलाना ही है।²

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के काव्य में भी दर्शन का यही प्रयोजन दिखाई पड़ता है। उन्होंने भी सांसारिक एवं पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए दार्शनिक सूत्रों की काव्यमय व्याख्या की है। उनका काव्य दार्शनिक प्रयोजन की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के काव्य में दार्शनिकता

1. ब्रह्म-निरूपण

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने वेदांत-दर्शन के अनुरूप ब्रह्म को सर्वव्यापी माना है। उन्होंने उसकी सर्वव्यापकता इन शब्दों में व्यक्त की है—

कोऊ कहे हरि हैं नभ में, अरु कोऊ कहे हरि भूमि पताले।

कोऊ बतावत पूरब-पश्चिम, जंगल में वन में कोऊ भाले।
सागर में सर में कोऊ ढूँढत, काठ पषानन में कोऊ टाले।
जो श्रद्धा करके लखिए तब, है सबमें सबको प्रतिपाले।³

पंडितजी के युग में आर्यसमाज का प्रभाव था। आर्यसमाज ने निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया है। फिल्लौरी जी आर्यसमाजी नहीं थे। वे शुद्ध सनातनी थे। मूर्तिपूजा, कर्मकांड के प्रति उनकी अखंड निष्ठा थी। फिर भी ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की उन्होंने निंदा नहीं की। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म का भी स्पष्ट रूप से वर्णन किया। इस संदर्भ में उनका एक पद इस प्रकार द्रष्टव्य है—

रूप न रेख, निरंजन जोऊ, ताको कहा सनाना।
बिन शरीर ठाकुर हित कैसे, बस्तर-भूषन नाना।
सीस आकाश पताल पैर कित चंदन पुष्प चढाव है।
भूख-प्यास बिन सदा बिराजै काको भोग लगाव है।
नासा-नैन न जाके कोऊ धूप-दीप कित जोरो।
कान कला नहीं जिस ठाकुर के काहे बजंतर खोरो।
घट-घट पूरण है परमात्म कोऊ न जानहु दूजा।
'श्रद्धा' सहित सबन को पोषहु मुक्ति पंथ यह पूजा।⁴

निराकार ब्रह्म का स्पष्ट निरूपण करते हुए फिल्लौरी जी ने साकार ब्रह्म का भी चित्रण किया है। कृष्ण की मोहनी छवि का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

जय कृष्ण कलानिधि गोप सखे, तुमरी गति नाह बिरौचि लखे।
धर मोर सिरे निज हाथ वरम्, दस दोष मिटे भव पासि हरम्।
सिर शोभत जासु किरिट कला, झलकैँ सम कुंडल द्वै विमला।
अलकैँ विथुरी सुथरी मुख पै।

फिल्लौरी जी की मान्यता थी कि निर्गुण ब्रह्म भक्ति के कारण सगुण रूप में अवतरित होता है।

2. जगत-निरूपण

वेदांत दर्शन के जनक आचार्य शंकर ने जगत् को मिथ्या बताया है। उनके अनुसार—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मेव नापर'⁵ अर्थात् ब्रह्म सत्य है। संसार असत्य है। जीव ब्रह्म ही है अन्य कुछ नहीं है। इस सिद्धांत में ब्रह्म को सत्य कहा गया, किंतु परवर्ती दार्शनिकों में विशिष्टाद्वैतवाद, रामानुज संप्रदाय, वल्लभ संप्रदाय आदि में जगत् को ब्रह्म का ही अंश स्वीकार करके सत्य कहा गया। इस प्रकार भारतीय दर्शन-परंपरा में जगत् सत्य भी है और असत्य भी है। पंडितजी ने जगत् की नश्वरता अतः मिथ्या बताया है—

जगत सब सुपने को व्यवहार।
देखन मात्र सत्य सब भासत मित्त न लागे वार।
धन संपत सुत नार मात पित बांधव मित्र अगार।
छिन मो उपजत मित्त पलक मों कर््यों बाध्यो प्यार।
चार दिवस की खेल पसारी छिन जल अगनि बयार।

मिले तत्त्व मों तत्त्व फूटकर कहाँ रहे संसार।
मैं मेरी माँ उरझ रहयो शठ हृदय न धरी विचार।
'श्रद्धा' अजहुँ शरण गहु हरि की तज माया जंजार।⁶

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने संसार को वृक्ष की छाया के समान अस्थिर बताया है। इसमें रोग-शोक युक्त भोगों का प्रसार है। जिस प्रकार मधु में पंख चिपक जाने पर मक्खी उससे मुक्त नहीं हो पाती, उसी प्रकार जीवन संसाररूपी मधु में लिप्त होने के उपरांत उससे मुक्त नहीं हो पाता। किंतु जिस प्रकार तोता सेवल के फल से स्नेह करता है, अंत में कोई स्वाद नहीं पाता, उसी प्रकार सांसारिक भोगों में लिप्त मनुष्य को अंत में केवल पश्चात्ताप करना पड़ता है—

जगत सब देखत ही छिप जाय।
थिर नहिं रहति न जात गह्यो कछु त्यों तरुवर की छाया।
रोग-शोक युत भोग जगत के जो इन मों लिपटाय।
छूट न सके गही मधुमक्खी सिर धुन-धुन पछिताय।
सिंवल फूल मों करत कीर रुचि रोवत समय विहाय।
त्यों सुंदर लख फँस्यो जगत सुख वृथा अवधि बिनसाय।
इंद्रजालवत् खेल जगत् की हम देखी बहु भायं
बिनु हरिनाम काम कछु नहीं श्रद्धा सत्य बताया।⁷

वेदांत दर्शन के अनुसार जब परमात्मा एक से अनेक होना चाहता है, तब वह अपने लीला-विलास के लिए सृष्टि की रचना करता है। जब परमात्मा अकेला होना चाहता है, तब महाप्रलय करके सृष्टि को स्वयं में समेट लेता है। वह पाँच तत्त्वों और तीन गुणों के द्वारा सृष्टि का सृजन करता है और अंडज-जरायुज आदि जीवों की सृष्टि करके जगत् की रचना करता है। देखने में यह रचना सत्य प्रतीत होती है, किंतु अंततः मिथ्या सिद्ध होती है। इसमें केवल इसका रचयिता 'मदारी' परमात्मा ही सत्य है। शेष सब जगत उसका लीला-विलास है और असत्य है—

साधो हरि ने खेल पसारी।
छिन जलादि की पाँच गुंथलिया पहले ही विस्तारी।
सत रज तम त्रे बँटे काढ़े माया रसरी डारी।
जो देखे सो सरप निहारे चकित भए नर-नारी।
मिथ्या आँव जगत प्रगटायो दशो दिशा जिन्ह डारी।
अंडज और जरायुज हरि ने खोली चार पिटारी।
देखन मात्र सत्य यह रचना सदा न रहे सँभारी।
जब संकोच करै वह 'श्रद्धा' एकहु बचे मदारी।⁸

कबीर आदि निर्गुण संतों की भाँति पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भी संसार को चार दिनों का मेला बताया है और शरीर की शीघ्र नश्वरता को सिद्ध किया है—

जगत मों चार दिनन को मेलो।
कोऊ बाप, कोऊ सुत बन बैठो, कोऊ गुरु, कोऊ चेलो।
जल को बूँद गरभ में बैठत नख शिख अंग दिखावै।
ब्राह्मण वैश्य देह को मानत है माटी को ढेलो।

भूषण-वस्त्र विविध विधि भोजन जा तन हेत बटोरे।
 सोतन श्वास विहीन होत जब मोल न परत अधेलो।
 देख्यो जगत धूम को बादर बिनसत बिलम न लागे।
 'श्रद्धा' सो हरि के पद पकरों फेर न मिलि है बेलो।⁹

फिल्लौरी जी ने संसार की नश्वरता और उसकी क्षणभंगुरता को पग-पग पर रेखांकित किया है। साथ-ही-साथ उसका सुख हरि स्मरण में स्वीकार किया है। वे मन को संयमित करके उसे हरिभजन के लिए समर्पित करने का संदेश देते हैं—

जगत मों है सो की यह बात।
 सब-कुछ अरपे हाथ गोविंद के सोवे निश परभात।
 खान-पान पहिरन की चिंता हम क्यों धारें भ्रात।
 सर्वजगत को भरता ठाकुर, जीवत हमरो तात।
 बाको कियो मिटे नहिं रंचक, रे मन क्यों अकुलात।
 ताके तजे ठौर नहिं पाते ज्यों तरु टूटे पात।
 कर विश्वास आस धरि हरि की, तज मन के उत्पात।
 'श्रद्धा' सो हरि के हो रहिए, तब सब-कछु बन जात।

फिल्लौरी जी ने भी इसी कारण जगत् को दुखमय माना है। उनके मतानुसार इस अनित्य जगत् के सारे सुख मिथ्या हैं। इसमें केवल हरिभजन ही एकमात्र सुख का द्वार है—

अब मैं हरि-चरनन को दास, मोको मत रोको रे भाई।
 काम-क्रोध के वश में मेरी सारी ओध विहाई।
 देखन-मात्र जगत है सुंदर, ज्यों विष-भरी मिठाई।
 भली प्रकार विचार कियो जब अंत समय दुखदाई।
 कालकंट सब दूर होत है जल में मिले बड़ाई।
 यम का दंड नरक की पीड़ा मेटत हरि शरणाई।
 झूठा संग सनेह जगत का झूठी सब चतुराई।
 'श्रद्धा' सहित गाय हरि के गुन होवे अंत सहाई।¹¹

3. जीव-निरूपण

फिल्लौरी जी ने निर्गुण संतों की मान्यताओं के अनुरूप जीव को वासनाओं के दास के रूप में अंकित किया है। उनके अनुसार जीव भ्रांतियों के भूतों की जकड़ में जकड़ा हुआ है। वह ईश्वर को विस्मृत करके अनेक प्रकार के कष्ट सहता रहता है और अपना जीवन व्यर्थ कर लेता है—

लगयो भ्रम भूत तोहे दहिकात।
 रे मन तू जो नहीं थिर बैठत ताकत नाना घात।
 माटी डेल देह पर बौघत चुन-चुन पाग सुहात।
 छौह निहार सुधारत मूँछन ऐंठत टेढ़ो गात।
 मोह बंध्यो बहुरो दुख पावत तबहूँ नहीं लजात।
 जिन्हें कहित मेरे प्रिय बांधव अंत न पूँछहि बात।

अपनी पोट धरत सिर तेरे, मात-पिता सुत-भ्राता।
खखत बोझ उठावत तिन को 'श्रद्धा' किन कुशलात।¹²

फिल्लौरी जी के अनुसार माया के बंधनों में जकड़ा हुआ जीव विवश है। वह जगत् की मिथ्या लालसाओं में फँसा हुआ परमात्मा से विमुख होता चला जाता है और अपना जीवन व्यर्थ ही गवाँ देता है—

माई मेरे घर मों उपजे चोर।
काम-क्रोध पुन लोभ-मोह-मद, लूटत पाँच कठोर।
कहा भयो जग के रिपु जीते वृथा लगायो जोर।
घर मों लूट मची नहिं जानी बाँध्यो ज्यों पशु ढोर।
मानुष जनम अमोलक छीजत संयम करत न भोर।
हरि धन त्याग लगयो झूठे रस राखत राख बटोर।
हे! मंद भाग विषय-सुख मातो प्रेम न तुमरी ओर।
आप हाथ सिर राखो 'श्रद्धा' मैं पतंग तुम डोर।¹³

4. माया निरूपण

फिल्लौरी जी ने माया के संदर्भ में अधिक चर्चा नहीं की है। तथापि उसकी प्रबलता और जीव पर उसके प्रभाव को बार-बार रेखांकित किया है। उन्होंने परमात्मा के मायाजनित विधान पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखा है—

नाथ तुम कैसी बनत बनाई।
घर के लोग जगाये आपहिं चोरहिं दियो लगाई।
बुद्धिहिं कह्यो सुचाल चलावो मनहिं कुचाल सिखाई।
आग लगाय कह्यो भर पानी यह नीकी ठकुराई।
तन मो पाँच विषय भर दीने, मोहे अचाह दृदाई।
अचरज अहो दूध की पीहरु बिलिया ल्याइ बिठाई।
जो तुम करी धरी हम सिर पर, कछु नहिं पार बसाई।
सात बीस को सौ जहाँ श्रद्धा मौन तहाँ सुखदाई।¹⁴

पंडित जी ने 'माया' को खेल कहा है। उनके अनुसार परमात्मा के इस खेल का प्रचार चराचर जगत् में सर्वत्र व्याप्त है। परमात्मा का यह खेल अति विचित्र है। मनुष्य परमात्मा से कुछ याचना करता है और कुछ और प्राप्त करता है। यह तथ्य उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है—

राम यह कैसा खेल पसारी।
खग-मृग नाह मोहवश व्याकुल, देव-यक्ष नर-नारी।
धर्म-अधर्म सबी जग जानत पर कछु बन नहिं आवै।
जो हम चाहें सो होत न कबहूँ, कीनी होत तिहारी।
चाहत धन-धाम नारि-सुत गुण-यश-मान घनेरो।
राज भाग संपत हम माँगत, तुम कर देत भिखारी।
हम ताकत वनवास मुक्ति मद शम दम दया विवेका।
आछी सुनी वीनती 'श्रद्धा' कर दीने घरवारी।¹⁵

जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है—प्रवृत्तिमूलक एवं निवृत्तिमूलक। प्रवृत्तिमूलक जीवन दर्शन वह है, जिसमें मनुष्य को अपना जीवन भौतिकवादी दृष्टि से जीने को प्रेरित किया जाता है। जीवन-दर्शन का यह भेद भौतिक सुखों की चाह जाग्रत करता है और उनकी प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। प्रवृत्तिमूलक जीवनदर्शन में मनुष्य की दृष्टि भौतिक जगत् की उपलब्धियों तक ही सीमित रहती है। निवृत्तिमूलक जीवनदर्शन वह है, जो भौतिक जगत् से दूर भावजगत् की ओर आकर्षित करता है। इस लोक की अपेक्षा परलोक के सुख पर बल देता है। मनुष्य को भौतिकता से विमुख करता है। पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने इसी जीवन-दृष्टि को स्वीकार किया है और मनुष्य को संसार की झूठी उपलब्धियों से दूर रहकर परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने को प्रेरित किया है। निम्नांकित पद में मनुष्य-जीवन के प्रति उनकी दृष्टि इस प्रकार प्रकट हुई है—

बीत गए जनम दिहारे।

भोगत भोग शांति नाहिं उपजी मन मों धरे न हरि चरणा रे।
रे मन त्याग कुमति हरिपद गहु पुनि पछुताय कहेगो हारे।
वा छन किछु बन है नहिं मूरख जब यम आय पुकारत हारे।
काम क्रोध विष को सुख मानत त्यागत क्यों हरिनाम सुधारे।
जीवनमुक्त होत नहिं रे शठ, संतवेद सब तोहि पुकारे।
कलिमल हरण नाम हरि जू को पुन जनमादि कलेश निवारे।
तहि बिसार अहो सुख चाहत धिक 'श्रद्धा' कुल मात पितारे।¹⁶

पंडित जी ने मोक्षप्राप्ति के लिए निवृत्तिमूलक जीवनदर्शन के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन के लिए भी दृष्टि दी है—

- (1) तन मन धन कर कीजिए, निशदिन पर-उपकार।
यही सार नर-देह में, वाद-विवाद बिसार।¹⁷
- (2) जहाँ मान मत्सर मैथुन, मदिरा मिथ्या धूत।
सो कुसंग उपहास वह, जाय न तहाँ सपूत।¹⁸
- (3) प्रियभाषी शीतल हृदय, सुंदर सरल उदार।
जो जन ऐसो जगत में, ता सो सबको प्यार।¹⁹
- (4) अति नीचो नहिं छूजिए, अति ऊँचो मत होइ।
मध्य भाव में बरतिए, शोक न व्यापे कोई।²⁰

संदर्भ

1. कृष्णकाव्य परंपरा में नमन : एक अनुशीलन, डॉ० कृष्णगोपाल मिश्र, पृ० 35
2. वही, पृ० 129
3. पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ग्रंथावली, खंड दो, पृ० 15
4. वही, पृ० 36
5. भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ० 14
6. पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ग्रंथावली, खंड दो, पृ० 27

7. वही, पृ० 28
8. वही, पृ० 28
9. वही, पृ० 28-29
10. वही, पृ० 27
11. वही, पृ० 13
12. वही, पृ० 22
13. वही, पृ० 23
14. वही, पृ० 26
15. वही, पृ० 26
16. वही, पृ० 21
17. वही, पृ० 69
18. वही, पृ० 70
19. वही, पृ० 70
20. वही, पृ० 73

डॉ० रामविलास शर्मा का आशावादी दृष्टिकोण

डॉ० अनुपाल भारद्वाज
सहायक प्रोफेसर, हिंदी-विभाग
गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय
अमृतसर

हिंदी साहित्य का विकास सैकड़ों वर्षों की परंपरा को समेटे हुए आधुनिककाल तक पहुँचा है। अभिव्यक्ति के साधनों का विस्तार इसी काल में अधिक हुआ है। किसी भी कृति में कई तरह के पहलू छिपे होते हैं। उनको सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के लिए आलोचना-कर्म की आवश्यकता पड़ती है। आलोचक दो तरह से कार्य करता है। एक तरफ़ उसका साहित्यकार से सरोकार रहता है तो दूसरी तरफ़ पाठकों में उस कृति की रुचि जगाना उसका कार्य है। शिवकरणसिंह के शब्दों में—‘सृजक और आलोचक एक-दूसरे के पूरक हैं। सृजन के अनंत, अपूर्ण स्थलों का आलोचक ने परिहार किया है। आलोचक ने ही सृजन को निर्माण-क्षमता प्रदान की है और सृजक ने ही आलोचक को आलोचना से अवगत कराया है। एक के अभाव में दूसरे के अस्तित्व का निखार नहीं।’¹

हिंदी-आलोचना भी आज उस दौर से गुज़र रही है, जहाँ अभिव्यक्ति के एक साधन साहित्य के प्रति रुचि कम होती जा रही है तो आलोचना भी इसी उपेक्षा की शिकार रही है। इंद्रनाथ मदान के शब्दों में—‘आज यदि साहित्य की शुद्धता या पवित्रता पर, उसके अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगने लगा है तो आलोचना किस तरह अछूती रह सकती है।’²

हिंदी-आलोचना पर भी ऐसे प्रश्नचिह्न लगते रहे हैं। यह सौभाग्य ही है कि हिंदी-आलोचना के पास ऐसे दिग्गज आलोचक हैं, जिन्होंने नई परंपराओं का मार्ग प्रशस्त किया तथा पुरानी मान्यताओं पर पुनर्विचार करने के लिए पाठकों को प्रेरित किया। ऐसे ही विराट व्यक्तित्व हैं—डॉ० रामविलास शर्मा।

भले ही उनकी प्रमुख पहचान प्रगतिवादी/मार्क्सवादी आलोचक के रूप में हो, परंतु उनके कृतित्व को देखें तो पता चलता है कि यह उनके व्यक्तित्व का एक पक्ष है। भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषाएँ, हिंदीभाषा, साहित्य, मानव-सभ्यता, राष्ट्रियता, इतिहास ऐसे कई पक्ष हैं, जो उनके व्यक्तित्व की पूर्ति करते हैं। इसका प्रमाण उनकी पुस्तकें हैं—

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी-आलोचना
2. आस्था और सौंदर्य
3. आर्य और द्रविड़ भाषा-परिवारों का संबंध

4. इतिहास-दर्शन
5. आज की दुनिया और लेनिन
6. कथा-विवेचन और गद्य-शिल्प
7. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल
8. घर की बात
9. निराला की साहित्य-साधना (तीन भाग)
10. भारतीय संस्कृति और हिंदीप्रदेश
11. हिंदी-जाति का इतिहास
12. भारतीय नवजागरण और यूरोप
13. नई कविता और अस्तित्ववाद
14. भारत में अँग्रेजीराज और मार्क्सवाद
15. भारतीय साहित्य की भूमिका
16. भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ
17. भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास
18. भारतेंदु हरिश्चंद्र
19. भारतेंदुयुग और हिंदीभाषा की विकास-परंपरा
20. भाषा और समाज
21. भाषा, युगबोध और कविता
22. भाषा, साहित्य और संस्कृति
23. मानव-सभ्यता का विकास
24. राष्ट्रभाषा की समस्या
25. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी-नवजागरण
26. साहित्य, स्थाई मूल्य और मूल्यांकन
27. भारत की भाषा-समस्या
28. भारत के प्राचीन भाषा-परिवार और हिंदी

हिंदी-आलोचना में उन्होंने अनिवार्य सिद्धांत-पुस्तकों का अंबार लगा दिया। मार्क्सवाद को उन्होंने अपनी समीक्षा-पद्धति का आधार तो बनाया, अनिवार्यता नहीं। मार्क्सवाद का अंधानुकरण नहीं बल्कि उसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में समझने पर बल दिया। व्यष्टि नहीं समष्टि को लेखन में स्थान दिया। लेखक के योगदान को डॉ० शर्मा महत्त्वपूर्ण मानते हैं। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—‘मानव-जाति का क्रांतिकर्तन, ऐसे भाव और विचार जिनसे (किसी विशेष व्यक्ति, वर्ग या श्रेणी का नहीं) कल्याण और हित होता है। उन विचारों या भावों में अद्भुत सामर्थ्य होता है, मानव-जाति का सांस्कृतिक विकास ऐसे भावों और विचारों से होता है। उन्हें फैलाने का काम लेखक करते हैं, इस तरह देश की जनता का साथ देकर वे क्रांति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।’³

लेखक का कर्तव्य, समाज में उसकी भूमिका का वर्णन इन पंक्तियों से सफलता से चित्रित हुआ।

देश की संस्कृति में डॉ० रामविलास शर्मा को गहन आस्था है। हिंदी-साहित्य के प्रति वे आशावान हैं। इसका एक सुंदर उदाहरण द्रष्टव्य है—‘हमारे देश के वीरों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर देश के भविष्य में, विश्वमानवता और भारतीय जनता की शक्ति में अपनी आस्था प्रमाणित की थी। ऐसे देश में कुंठा और अनास्था के लिए जगह नहीं है। अनास्था, कुंठा, घुटन की भावधारा क्षणिक है। इसका आधार हमारे सामाजिक जीवन में कम है, विदेश की सांस्कृतिक धाराओं में अधिक है। इसलिए हमें विश्वास है कि हिंदी-साहित्य की भगीरथी इस कर्दम को बहाकर एक ओर फेंक देगी और अपने गौरवशाली इतिहास के अनुरूप ही जीवनदायी निर्मल जल से भरी हुई प्रवाहित होगी।’⁴

उनकी आलोचना-दृष्टि अधिक स्पष्ट एवं विशद् है। जनवादी मान्यताओं से प्रभावित है, समष्टिहित के मूल्यों पर आधारित है, प्रगतिशील और अप्रगतिशील के विवेक से युक्त है, प्रचारवाद की शक्ति से संपन्न और उसकी सीमाओं से विपन्न है। इसके मूल में शुद्ध समाज-मंगल की भावना है। डॉ० रामविलास शर्मा अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—‘मेरा उन लोगों से मतभेद है, जो साहित्य को समाजहित या अहित से परे मानकर केवल रूप की प्रशंसा करते हैं। प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन करते समय मेरी दृष्टि में समाज के हित और अहित को भूल नहीं जाना चाहिए।’⁵

डॉ० रामविलास शर्मा तुलसी के प्रगतिशील पक्ष का समर्थन करते हैं। प्रेमचंद के साहित्य की जनवादी परंपरा की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। निराला के व्यक्तित्व का अभिनंदन किया है। समय के साथ चलने का आग्रह करते हैं। आधुनिकयुग में रस-सिद्धांत के आधार पर काव्य-विवेचन निस्सार सिद्ध करते हैं।

डॉ० रामविलास शर्मा ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल को प्रेमचंद और निराला के समकक्ष माना। उनको हिंदी-आलोचना का आधारस्तंभ बताया। किसी आलोचक का दूसरे आलोचक के प्रति ऐसा दृष्टिकोण उनकी निरपेक्ष दृष्टि को द्योतित करता है। उनकी विरासत पर विचार करते हुए डॉ० शर्मा एक स्थान पर लिखते हैं—शुक्ल जी की विरासत के लिए संघर्ष करने वाले अनेक लेखक और साधारण हिंदी-प्रेमी पाठक हैं। ये लोग हिंदी की जीवंत शक्ति हैं। पूँजीवाद का अर्धमृत संसार का जो कोलाहल सुनाई देता है, वह श्मशान का कोलाहल है। हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में, जहाँ ऊर्जा की नई तरंग उठ रही है, वहाँ से यह कोलाहल अभी काफ़ी फ़ासले पर है।⁶

परंतु अब ये कोलाहल जीवन में घुल गया है, जिस कारण जटिलताएँ अधिक बढ़ी हैं। डॉ० रामविलास शर्मा ने परंपरा के भीतर मूल्य-सापेक्ष ज्ञानपद्धति का विकास किया। व्यवस्थित वस्तुवादी सिद्धांतकार के रूप में उभरे। डॉ० शर्मा ने ही निराला, प्रेमचंद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, केदारनाथ अग्रवाल, किशोरीदास वाजपेयी का मूल्यांकन कर उन्हें नई पहचान दिलाई। अपनी चिंतन-पद्धति में उन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति की गतिशील प्रकृति को हासिल किया। डॉ० रामविलास शर्मा ने हिंदीभाषा क्षेत्र की जनता को उनकी खोई हुई रचनात्मक अस्मिता वापस दिलाई है। भारतीय बुद्धिजीवियों के बीच आज भी वे एक मार्क्सवादी विचारक भाषाविद्, समाजशास्त्री, सौंदर्यतत्त्ववेत्ता, आधुनिकता-बोध से युक्त सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्तित्व हैं। हिंदीभाषा और साहित्य के प्रति उनका समर्पण है। हिंदी-आलोचना का उनका प्रदेय है—उनके

प्रयासों के कारण आलोचना सूक्ष्मदर्शी, पारदर्शी, स्थानिक हुई है। उसमें अंतर्नुशासनात्मक प्रकृति विकसित हुई। निष्कर्ष से अधिक चिंतन-पद्धति को महत्त्व दिया। उनकी आलोचना-पद्धति के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक पक्ष का स्वरूप प्रचारवादी होने के कारण अधिक स्पष्ट एवं विशद् है। इंद्रनाथ मदान ने एक स्थान पर कहा है—'जब तक कृति है, सृजन है तब तक आलोचना भी है।'⁷

जब तक हिंदी-आलोचना है, तब तक डॉ॰ रामविलास शर्मा के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

संदर्भ

1. शिवकरण सिंह, आलोचना के बदलते मानदंड और हिंदी-साहित्य, (किताब महल, इलाहाबाद 1967), पृ० 35.
2. इंद्रनाथ मदान, आलोचना और आलोचना कृति की राह से, (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1971), पृ० 11.
3. रामविलास शर्मा, आस्था और सौंदर्य, (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990), पृ० 8.
4. वही, पृ० 10.
5. उद्धृत, इंद्रनाथ मदान, आलोचना और साहित्य, (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1964), पृ० 29.
6. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी-आलोचना, पृ० 25.
7. इंद्रनाथ मदान, आलोचना और आलोचना कृति की राह से, पृ० 12.

निराला की कविता पर प्रगतिवादी चिंतन का प्रभाव

डॉ० बालकराम भट्टी

सं० प्र० हिंदी, राजकीय महाविद्यालय
पौखाल, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

संक्षिप्त परिचय

हिंदी साहित्य-जगत् में महात्मा कबीर के बाद यदि किसी फक्कड़ एवं निर्भीक कवि का जन्म हुआ तो वे सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जी थे। वे एक ऐसी विद्रोही कवि थे, जिन्होंने निर्भीकता के साथ अनेक रूढ़ियों को तोड़ डाला और काव्य के क्षेत्र में अपने नवीन प्रयोगों से युगांतकारी परिवर्तन किए हैं।

छायावाद के द्वितीय स्तंभ कवि निराला का जन्म सन् 1896 में बंगाल प्रांत के मेदनीपुर नामक जिले में बसंत पंचमी के दिन हुआ था। इनके बचपन का नाम सूर्यकुमार था। इनके पिता का नाम पंडित रामसहाय त्रिपाठी था। निराला की प्रारंभिक शिक्षा बंगाल में हुई। समाज की विसंगतियों तथा आर्थिक विषमताओं ने निराला को काव्यानुभूति के नूतन स्वर दिए हैं, जिसके परिणामस्वरूप छायावादी होते हुए भी निरालाजी प्रगतिवाद के आरंभकर्ता कवि बने। उनके काव्य में कबीर का फक्कड़पन एवं निर्भीकता दिखाई देती है। इनका व्यक्तित्व जितना वैविध्यपूर्ण, रोचक एवं तत्वमय है, उतना ही उदांत, दृढ़ एवं आकर्षक भी है। हिमालय के सामान व्यक्तित्व की विशालता लिए हुए उनकी सहज द्रवणशीलता, करुणा की गंगा बन जाती थी। वे लोगों के दुख को दूर करने के लिए अपना सर्वस्व त्यागने के लिए तत्पर रहते थे।

निराला के काव्य में प्रगतिवादी स्वरूप

हिंदी-साहित्य में मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित कविताओं को प्रगतिवादी कह जाता है। प्रगतिवादी कवियों ने शोषण का विरोध किया है तथा शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाकर क्रांति का आह्वान किया एवं रूढ़ियों का खंडन किया है। अपने युग की काव्य-परंपरा के प्रति प्रबल विद्रोह का भाव लेकर काव्य-रचना करने वाले कवि निराला को हिंदीकाव्य-जगत् में एक विशिष्ट कवि के रूप में जाना जाता है। उन्होंने तत्कालीन काव्य-परंपरा पर आधारित छंद एवं बिंब-विधान की उपेक्षा करके स्वच्छंद एवं छंद-मुक्त कविताओं की रचनाएँ प्रारंभ की और नवीन बिंब-विधान एवं काव्य-चित्रों को प्रस्तुत किया है। इसके फलस्वरूप निराला को तत्कालीन कवियों के भारी विरोध का सामना करना पड़ा।

अनामिका, गीतिका, परिमल, कुकुरमुत्ता, नये पत्ते, बेला, अराधना, अर्चना, गीतकुंज, क्षणिका, तुलसीदास, सरोज स्मृति, अपरा उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। परिमल में उन्होंने अन्याय

और शोषण के प्रति विद्रोह तथा निम्न वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति तथा गीतिका की मूल भावना शृंगारिक, मधुरता के साथ आत्मनिवेदन, प्रकृति-वर्णन तथा देश-प्रेम की भावना पर आधारित चित्रण एवं राम की शक्ति पूजा में ओज, पौरुष तथा छंद-सौष्ठव प्रकट किया है। उनके काव्य में प्रगतिवादी चिंतन इस प्रकार से देखा जा सकता है—

देश-प्रेम की भावना

निराला का काव्य देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। उन्होंने देश की सांस्कृतिक पतन की ओर संकेत किया है। वे देश को विदेशी शासन से छुटकारा दिलाना चाहते थे। वे चाहते थे कि देश का भाग्योदय हो और भारतीय जनता आनंद-विभोर हो उठे। भारती जय-विजय करे, जागो फिर एक बार आदि कविताओं में निरालाजी ने भारत माता के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम-भाव से गीत लिखकर राष्ट्र की वंदना की है। यथा—

भारती, जय-विजय करे। कनक शस्य-कमल धरे।
लंका पदतल-शतदल, गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण-युगल, स्तब कर बहु अर्थ भरे।¹

जागो फिर एक बार कविता में उन्होंने आपसी फूट दूर करने की प्रेरणा देते हुए कहा है—‘व्यक्तिगत भेद ने छीन ली हमारी शक्ति’²

भारत की अतीत गरिमा का चित्रण करते हुए निराला जी ने जागो फिर एक बार नामक गीत लिखकर भारतवासियों को जगाने की कोशिश की है। यथा—

जागो फिर एक बार।
समर में अमर कर प्राण,
गान गाए महासिंधु से
सिंधु नद तीर वासी
सैधव तुरंगों पर चतुरंग चमू संग
सवा-सवा लाख पर एक को चढाऊँगा
गोविंदसिंह निज नाम जब कहाऊँगा।³

सामाजिक समस्याओं के प्रति सचेष्ट

निरालाजी समाज के प्रत्येक वर्ग को सुखी देखना चाहते थे। ‘सरस्वती वंदना’ में उन्होंने यह भावना प्रकट की है कि मानव-समाज में नवीन शक्तियों का उदय हो और प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करे। निम्न पंक्तियों में कवि ने लोक-कल्याण की ऐसी ही कामना की है—

दृग-दृग को रंजित कर अंजन भर दो भर।
विधेँ प्राण पंचबाणों के भी परिचय-शर।
दृग-दृग की बँधी सुछवि बाँध सचराचर भव।⁴

निरालाजी ने अपनी पितृभूमि और वैशवाडे के अन्य ग्रामीण क्षेत्रों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विशमताओं का शिकार होते हुए देखा है। जमींदारों द्वारा शोषित किसानों की दुर्दशा देखकर उनका मन अत्यंत दुखी हुआ और वे कह उठा—

जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर,
 तुझे बुलाता कृषक अधीर,
 ये विप्लव के वीर।
 चूस लिया है उसका सार,
 हाड़ मात्र ही है आधार,
 ये जीवन के पारावार।

सामाजिक विशमता को देखकर उनका मन खिन्न हो जाता था तथा वंदना और निराशा से भर उठता था। 'मैं अकेला' तथा 'स्नेह निर्झर' कविता निराला जी की इसी प्रकार की कविता है यथा—

स्नेह निर्झर बह गया है।
 रेत ज्यों तन रह गया है,
 आम की वह डाल ,
 सूखी दिख कह रही है—
 अब यहाँ पिक या शिखी नहीं आते
 पंक्ति में वह हूँ लिखा।⁵

सामाजिक अर्थव्यवस्था पर प्रहार

निराला स्वभावतः रूढ़ि-विरोधी एवं क्रांतिकारी कवि थे। उन्होंने शोषितवर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति का प्रदर्शन किया है। भिक्षुक, वह तोड़ती पत्थर, विधवा जैसी कविताओं में यह प्रवृत्ति प्रमुख रूप से दिखाई देती है। 'भिक्षुक' कविता में एक ओर दीन-हीन भिक्षुक के बच्चे सड़क पर पड़ी हुई जूठी पत्तलों को चाटकर अपनी भूख शांत करते हैं तो दूसरी तरफ़ कुत्ते उन बच्चों से पत्तलें छीनने को तैयार रहते हैं। यथा—

वह आता
 दू टूक कलेजे के करता
 पछताता पथ पर आता।
 पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
 चल रहा लक़ुटिया टेक
 मुट्ठी-भर दाने को, भूख मिटाने को
 मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता।⁶

नारी-स्वतंत्रता के प्रति जागरूक

प्रगतिवादी कवि एक ओर शोषित एवं त्रस्त नारी का चित्रण करते हैं तो दूसरी ओर उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं। निरालाजी ने अपने काव्य में नारी की स्वतंत्रता की पुकार की है। नारी के प्रति उनका मस्तक आदर्श के साथ झुका रहा है। अतः भारतीय समाज की पीड़ित स्त्री का दुख-दर्द उन्हें जीवन-भर सताता रहा। उन्होंने समाज के आर्थिक अभाव को दर्शाते हुए इलाहाबाद की सड़कों पर पत्थर तोड़ती हुई गरीब स्त्री की हालत का चित्र प्रस्तुत किया है। पूँजीपतियों ने जैसे पेड़ों को भी कैद कर रखा है। मजदूरनी को इतनी सुविधा भी नहीं

कि वह उनके पेड़ की छाया में बैठकर पत्थर तोड़ सके। यथा—

वह तोड़ती पत्थर
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
नहीं छायादार पेड़ वह
जिसके तले बैठी हुई स्वीकार

परिवर्तन के पक्षधर

निराला जी महान क्रांतिकारी एवं ओजस्वी कवि थे। वे समाज में परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों का विध्वंस करके नवीन युगनिर्माण के गीत गाए हैं। वे अपने व्यक्तित्व कृतित्व में युगांतकारी परिवर्तन के प्रतीक हैं। वे चाहते थे कि एक दिन समाजसेवक देश का नेतृत्व करेंगे। जैसे—

जब ये कुछ उठेंगे,
और बड़े त्याग के निमित्त कमर बाँधेंगे,
आएँगे वज्र भी देश के धरातल पर
अभी अखबार उनके नाम नहीं छपते,
ऐसा ही पहरा है।

विद्रोह का स्वर

निराला जी स्वभाव से ही विद्रोही, क्रांतिकारी एवं स्वच्छंदताप्रेमी कवि थे। वे जीवन-पर्यंत संघर्ष करते रहे हैं। उन्होंने न केवल परंपरा से ही विद्रोह किया, अपितु स्वयं अपनी उपलब्धियों से भी जिनसे कालांतर में परंपरा बननी थी, से भी विद्रोह किया है। उनका काव्य वैविध्य 'जुही की कली' से लेकर पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है, तक एक लंबी काव्ययात्रा है। उनका जन्म ऐसे समय में हुआ है, जब देश में सामंतवाद, जातिवाद जैसी अनेक बुराइयों का बोलबाला था। उस समय निराला की कविता एक विद्रोह बनकर फूटी। अनामिका, सुकुल की बीबी, परिमल, अपरा आदि में उनके व्यंग्य, आक्रोश, घृणा तथा विद्रोह देखने को मिलता है। यथा—

घन गर्जन से भर दो वन,
तरु-तरु पादप-पादन तन,
गरजो हे इंद्र, वज्र स्वर,
थराए भूधर-भूधर।⁷

साम्यवादी वैचारिकता

निराला जी के काव्य में सामाजिक विशंगतियों के प्रति आक्रोश और दुखियों के दर्द को देखकर विकलता की मार्मिक अनुभूति देखने को मिलती है। उन्होंने समाज की विसंगतियों पर व्यंग्य करते हुए आने वाली विचारधारा कोशक्ति प्रदान करके जाति-पात, छुआ-छूत, दीन-हीन एवं किसानों की दशा देखकर समाज में समानता का आदर्श स्थापित करने के लिए

लिखा है-

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ।
आज अमीरों की हवेली,
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी पासी, चमार, तेली,
खोलेंगे अंधरे घर का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे टाट विछाओ।

प्रगतिशील भाषा

काव्यभाषा का स्वरूप इतिहास के माध्यम से ही परखा जा सकता है। उससे ज्ञात होता है कि समय और परिस्थिति के भेद से विचारों में कुछ भिन्नता भी रही है। निराला जी ऐसे समय में हिंदीकाव्य-रचना में प्रवृत्त हुए जब खड़ीबोली का काव्य अपने शैशव की स्थिति में था। छायावादी काव्य और विशेषतः निराला का काव्य भाषा की दृष्टि से नए प्रयोगों, नए विस्तार का प्रतिनिधि है। निराला जी भावानुकूल भाषा के सिद्धांत के मर्म को पहचानते थे। उन्होंने हास्य-व्यंग्य विनोदशैली को अपनाकर तदनुरूप भाषा की खोज की है। कुकुरमुत्ता नामक कविता में उन्होंने गुलाब के बहाने पूँजीपतियों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। कुकुरमुत्ता उपेक्षित वर्ग का प्रतीक है जिसे अपनी हीनता के बोध से गुलाब से घृणा है। कुकुरमुत्ता अपना सिर उठाए हुए गुलाब को कहता है-

अरे सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगो-आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।⁸

प्रगतिशील काव्य

निराला जी की बादल राग नामक कविता एक प्रतिनिधि प्रगतिवादी कविता है। बादल क्रांति का प्रतीक है, उन्होंने आकाश में उमड़ने-घुमड़ने वाले बादलों के माध्यम से क्रांति का संदेश दिया है। बादल अपनी गर्जना से एक ओर छोटे-छोटे पौधों को जीवन प्रदान करता है तो दूसरी ओर इसकी गंभीर गर्जना सुनकर पूँजीपति काँप उठते हैं। वे कहते हैं-

बार-बार गर्जन वर्षण है मूसलधार।
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र हुंकार।⁹

सांस्कृतिक समन्वय की भावना

निराला जी देश का भाग्योदय चाहते थे। उन्होंने राष्ट्रियता के राजनीतिक पक्ष के बजाय उसके सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक दृष्टि रखी है। उन्होंने तुलसीदास नामक काव्य हिंदू-मुस्लिम द्वंद के चित्रण से आरंभ किया है।

उर के आसन पर शिरस्त्राण

शासन करते हैं मुसलमान
है उर्मिल जल, निश्चल प्राण परशतदल।¹⁰

उनके लिए समस्या राजनैतिक, जातिगत रूप से नहीं वरन् सांस्कृतिक स्तर पर थी। इस्लाम की सांस्कृतिक चुनौती के संदर्भ में निराला ने कवि तुलसीदास का आविर्भाव दिखाया है। समकालीन अँग्रेजी शासन से जूझने के लिए उन्होंने अपने को भी वैसी ही भूमिका में दिखाया है। 'जागो फिर एक बार' नामक कविता में उनके क्रांतिकारी सांस्कृतिक विचार देखने को मिलते हैं। यथा—

जागो फिर एक बार।
प्यारे जागते हुए हारे रूप तारे तुम्हें
जगो फिर एक बार।¹¹

निष्कर्ष

निराला का प्रगतिवाद सामाजिक विविधता का सजीव व्यंग्य रूप है। उनकी ओजभरी वाणी, क्रांतिकारी स्वर रूढ़ियों और बंधनों के विरोध में प्रहार करते थे। अतः हम कह सकते हैं कि निराला के काव्य में प्रगतिवादी चिंतन का प्रभाव है। उन्होंने क्रांति का अधिकार सर्वहारा वर्ग को सौंपा है तथा तत्कालीन कवियों के विरोध का सामना करते हुए स्वच्छंद एवं छंदमुक्त कविताओं की रचना की है। उनका स्वाभिमान देश, जाति, संस्कृति और साहित्य का स्वाभिमान था एवं उनका कोमल हृदय समाज के अनेक पीड़ितों और प्रपीड़ितों के प्रति सहानुभूति पूर्ण था। तथा मानव-मूल्यों को प्रतिष्ठित करना उनका लक्ष्य था।

संदर्भ

1. निराला, भारति जय विजय करे, 'गीतिका', पृ० 73
2. निराला, जागो फिर एक बार, 'परिमल'
3. निराला, जागो फिर एक बार, 'परिमल', पृ० -156-157
4. निराला, सरस्वती वंदना।
5. निराला, स्नेह निर्झर बह गया।
6. निराला, भिक्षुक, 'परिमल', पृ० 103
7. निराला, अपरा।
8. निराला, कुकुरमुत्ता।
9. निराला, बादलराग, 'परिमल'
10. निराला, तुलसीदास।
11. निराला, जागो फिर एक बार, 'परिमल'

संप्र० हिंदी, राजकीय महाविद्यालय
पौखाल, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखंड)
मो० 09411749960

पूर्णमा वर्मन की कविताओं का अनुशीलन

एन०एच० भोजने

शोधार्थी हिंदी

स्प्रिंगडेल्स स्कूल, दुबई

प्रो० डॉ० शंकर बुंदेले

विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक

हिंदी विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय,

अमरावती (महाराष्ट्र)

साहित्य की किसी भी विधा का रचनाकार हो, वह अपने देशकाल की सामाजिकता, उसके साथ जुड़ी दुरूहता, जटिलताओं और विपन्नताओं के मध्य जीवन-यापन करता रहता है। रचनाकार के आसपास व्याप्त विपरीत परिस्थितियाँ उसकी रचना में सहज और स्वाभाविक रूप से उतर ही आती हैं। पूर्णमा वर्मन की कविताओं में भी उनके परिवेश का सहज चित्रण देखा जा सकता है। पहले कविता-संग्रह 'वक्त के साथ' में गीत, गज़ल, दोहे, हाइकु, छंदमुक्त आदि विविध प्रकार की रचनाएँ हैं, जबकि दूसरे कविता-संग्रह 'चोंच में आकाश' में केवल नवगीत संगृहीत हैं।

'नवगीत' दो शब्दों के मेल से बना है—'नव' और 'गीत'। नव से अभिप्राय है, जिसमें नयापन हो और 'गीत' का अर्थ है, जिसे हम गा सकते हैं। मुख्यतः 'गीति' से ही 'गीत' शब्द की उत्पत्ति हुई है। नवगीत में नवता के लिए छंद, शिल्प, बिंब और उपमान आदि में समसामयिकता और नयापन लाने का प्रयास होता है।

नवगीत के क्षेत्र में बहुत ही कम माहिला रचनाकार सक्रिय हैं, जबकि प्रवासी रचनाकारों ने तो इस विधा में बहुत ही कम रचना की है। ऐसी परिस्थितियों में पूर्णमा वर्मन ने न केवल नवगीत को अपने लेखन की प्रमुख विधा बनाया है, बल्कि नवगीत की अंतरराष्ट्रीय लोकप्रियता के लिए अनुभूति द्वारा 2001 से 'नवगीत' की पाठशाला के द्वारा और 'नवगीत महोत्सव' के द्वारा 2011 से निरंतर कार्य किया है।

पूर्णमा वर्मन के समस्त रचना-संसार में जीवन की आस्था-अनास्था, महानगरों में व्याप्त यंत्रिय जीवन, संबंधों में आने वाली दरारों, अजनबीपन, अस्तित्व पर मँडराने वाले संकट आदि का उल्लेख मिलता है। उनके नवगीतों की भाषा, सहज और परिष्कृत है। शब्द-चयन, मुहावरे, कहावतों, बिंब, प्रतीक और संकेत आदि में अत्यधिक सतर्कता दिखाई देती है। उनका स्वर आशावादी है, भारतीय संस्कारों के प्रति आस्था है, देश के प्रति प्रेम है और संसार के बदलते परिवेश पर एक सतर्क दृष्टि भी है।

संयुक्त अरब इमारात में रहकर भी उनके नवगीतों में भारतीयता की ज्ञानात्मक संवेदना है। उन्हें संयुक्त अरब इमारात के प्रत्येक मनुष्य में भारतवासी और हर शहर में प्रयाग और काशी होने की अनुभूति होती है। इसका प्रमाण उनकी कविता 'मेरी माटी मेरा देश' में इन पंक्तियों में दिखाई देता है—'हर शहर लगे दिल्ली-काशी, हर जन लगता भारतवासी।'¹

अपने देश के प्रति आस्था में गहरे उतरते हुए पूर्णिमा वर्मन का आत्मिक लगाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे लिखती हैं—

मुझमें अपनापन बोते हैं / मेरी माटी मेरा देश
हर घास दूब-सी है लगती / हर पवन लगे मलयानिल-सी
हर रोज़ साथ जगते / मेरी माटी मेरा देश²

पूर्णिमा वर्मन ने इन संवेदनशील विचारों को अपने साथ रखते हुए भारत की मिट्टी की सुगंध, सामाजिक परिवेश, प्रकृति के सौंदर्य और अपनी सांस्कृतिक विरासत को विदेश में जीवित रखा हुआ है। डॉ॰ सविता मिश्र के शब्दों में—'इन गीतों में हाथ हिलाता हुआ गुलमोहर का गुच्छा, मरमरी उँगलियों में मूँगिया हथेली, चितवन की चौपड़ पर प्यार की पहेली, वृक्षों पर आवारा कोयल का धमाल आदि न जाने कितने बिंब हैं जो सहज ही मन में बसकर रह जाते हैं। ये गीत और नवगीत शिल्प और बिंब-विधान की दृष्टि से अत्यंत सुंदर हैं और संवेदन के स्तर पर जीवनोन्मुखी हैं।'³

विदेश जाने के बाद, वहाँ के परिवेश में पूरी तरह से घुलमिल जाने के बाद अपनी संवेदना को स्पष्ट करने वाला उत्कृष्ट गीत उनकी कलम से लिखा गया। वे लिखती हैं—

हम-तुम बदले / मगर प्यार का रंग नहीं
बदला वही समाचारों संग अपनी / चाय होती है
वहीं लॉन पर सुबह सुनहरी / मुखड़ा धोती है
धरती बदली / मगर प्रकृति का संग नहीं बदला
सागर तट पर / शाम टहलने अब भी जाते हैं
अब भी झोला भर के सब्जी / घर को लाते हैं
सागर बदले / पर जीवन का ढंग नहीं बदला
आँखों पर / चश्मे ने अपनी जड़ें जमा ली हैं
काले बालों में चाँदी ने / लड़ियाँ डाली हैं
पर सुख-दुख संग सहने का / अनुबंध नहीं बदला

अब भी हिंदी गानों पर / मन विह्वल होता है
अब भी मन का कोई कोना / गाँव में होता है
भाषा बदली / रामायण सत्संग नहीं बदला⁴

यहाँ एक पंक्ति पर विशेष ध्यान दे तो हमें यह ज्ञात होता है कि 'सुख और दुख के एक साथ रहने और उन्हें सहने का जो अनुबंध है, वह एक असामान्य घटना है। भारतीय नारी चाहे वह विदेश में हो या देश में, एक रूप ही रहती है और अंत तक अपने परिवार का साथ

निभाती है। चाहे परिवेश कोई भी हो, सांस्कृतिक परिवेश कितना ही बदले, अपने एकल विवाह की गवाह बनकर उसके पति और उसके साथ किए अनुबंधों को वह निभाती रहती है। इस प्रकार का संकल्प कोई और नहीं सिर्फ भारतीय नारी ही ले सकती है। इस बात को पूर्णिमा वर्मन ने अपनी कविता के माध्यम से जनमानस को समझाने का प्रयास किया है।

पूर्णिमा वर्मन को भारत के गली-नुक्कड़ों की जब याद आती है, वहाँ का शोरगुल उनकी स्मृति में ताजा होता है। परंतु जब वह विदेश के गली-नुक्कड़ों को देखती हैं तो उन्हें पसरा हुआ सन्नाटा काटने को दौड़ता है, तब उनके स्मृति-पटल पर अनायास भारत की छवि प्रस्फुटित होती है। अपने देश के हर नुक्कड़ पर लगे चाय, पान की दुकानें, सड़कों पर चलने वालों की भीड़, यह नजारा उन्होंने अपने एक नवगीत में चित्रित किया है।

विदेश का समाज व उसकी संस्कृति और बदलते परिवेश में उन्हें केवल विलासिता ही नज़र आती है। तब उनका मन कहता है—मेरा भारत चाहे जैसा भी हो, वहाँ जीवन-यापन करने के साधन तो हैं! इन विचारों को उन्होंने नवगीत 'कोरे खाली नुक्कड़' में लिखकर अपने मन का खाली कोना भरने की कोशिश जरूर की है। वे लिखती हैं—

कैसे कोरे खाली नुक्कड़ / यह विदेश है
चाय की दुकान नहीं है / पैदल चलने वालों का भी
ना ही भीड़ नहीं आवाज़ें / सन्नाटा बिखरा भदेस है।⁵

इन पंक्तियों में रचनाकार के हृदय की व्यथा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे समाज को जीवित देखना चाहती हैं, न कि संवेदनाहीन भावों में जीने वाले समाज का हिस्सा बनना चाहती हैं।

पूर्णिमा वर्मन आज जिस समाज और देश में अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं, वह पूँजीवादी तथा आधुनिक राजशाही की दलदल में फँसा है। यह बात भिन्न है कि अरब देशों में भी लोकतंत्र की ठंडी बयार बहने लगी है। तानाशाही को लोकतंत्र में आते-आते कई बदलाव भी देखने पड़ते हैं। हिटलर और मुसोलिनी की सत्ता भी बह जाती है। मिस्र जैसे देश के आंदोलन के समय पर लिखा उनका यह नवगीत सार्थक है। वे लिखती हैं—

सड़कों पर हो रहीं सभाएँ / राजा को धुन रहीं व्यथाएँ
प्रजा कष्ट में चुप बैठी थी / शासक की किस्मत ऐंठी थी
पीड़ा जब सिर चढ़कर बोली / राजतंत्र की हुई ठिठोली
अख़बारों / में छपी कथाएँ
दुनिया-भर में / आग लग गई
हर हिटलर की वाट लग गई
सहनशीलता थककर टूटी / प्रजातंत्र की चिटकी बूटी
दुनिया को / मथ रही हवाएँ
जाने कहाँ / समय ले जाए
बिगड़े कौन, कौन बन जाए
तिकड़म राजनीति की चलती / सड़कों पर बंदूक टहलती
शासक की / नौकर सेनाएँ⁶

इसी प्रकार ईराक में अमरीकी हस्तक्षेप को वे अत्यंत बारीकी से देखते हुए मुहावरेदार भाषा में कहती हैं—

अमन-चैन के भरम पल रहे / रामभरोसे!
कैसे-कैसे शहर जल रहे / रामभरोसे!
जैसा चाहा बोया-काटा / दुनिया को मर्जी से बाँटा
उसकी थाली अपना काँटा / इसको डाँटा उसको चाँटा
रामनाम की ओढ़ चदरिया
कैसे आदमजात छल रहे / रामभरोसे!

कवयित्री को अपनी संस्कृति के साथ-साथ अरब संस्कृति से भी लगाव है। अरबी सीखने का उनका चाव और लगन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे चौपाल के संबोधनार्थ शब्दों को इस प्रकार व्यक्त करती हैं कि 'भाषा कोई भी हो मनुष्य को इंसान बनाने में सहायक रहती है। दूसरों की संस्कृति और आचार-विचार जानने में हमें सरहदों का वास्ता नहीं देती।'⁷

पूर्णिमा वर्मन हिंदी का चहुँमुखी विकास देखने की चाहत रखती हैं, उनकी यह चाहत है कि हिंदी शिक्षा और धन-प्राप्ति का आधार बने, हिंदीभाषी कभी बेकार न रहें। इसका प्रमाण उनके इस गीत में मिलता है—

परंपरा की / घनी धरोहर और
प्रगति से प्यार / हिंदी अपने पंख फैलाए
उड़ने को तैयार
फूल-फूल में, कली-कली में
घर-आँगन में, गली-गली में
फूल उठा है / मधुर गंध से
जिसका अमित दुलार
जिसमें अच्छे लगते / अपने उत्सव तीज त्योहार

जन-गण-मन की अभिलाषा है
कोटि प्रयत्नों की आशा है
शिक्षा और / धनार्जन में भी
इसका हो आधार
हिंदी पढ़ने-लिखने वाला / कभी न हो बेकार।⁸

सहजता, स्वाभाविकता, आत्मपरकता, रागात्मकता, संगीतात्मकता, सामूहिकता और लोकप्रियता नवगीत-रचना के महत्वपूर्ण तत्व होते हैं। इन सभी तत्वों का पूर्णिमा जी ने बड़ी सहजता से प्रयोग किया है। उनके गीतों में लय-छंद के साथ ही संगीतात्मकता स्पष्ट दिखाई देती है।

पूर्णिमा वर्मन ने विदेश की धरती पर रहकर भी अपनी भाषा के विकास के लिए अपना साहित्य-संघर्ष जारी रखा है। इसी प्रकार प्रयोगधर्मी होने के साथ-साथ लय-छंद और गीतात्मकता पर भी अधिकार बनाए रखा है। इन्हीं विचारों पर नवगीतकार नचिकेता कहते

हैं—‘यह प्रयास देखकर एक सुखद अनुभूति होती है कि पूर्णिमा वर्मन ने प्रयोगधर्मी होने के बावजूद गीत की लय-छंद-संरचना में अद्भुत तादात्म्य बनाए रखा है, जिससे उनके गीतों में संगीतात्मकता और गेयता बरकरार है।’⁹

वक्त किसी के लिए ठहरता नहीं। हमें इसके प्रवाह में बहना ही पड़ता है। जो नहीं चलते उनका वक्त के साथ रिश्ता टूट जाता है। वक्त के साथ सब-कुछ बदल जाता है। जिंदगी के पड़ाव पर कभी सुख मिलता है तो कभी हर्ष। इंसान के सामने वक्त उसका हमदर्द बनकर आता है और उसके आँसू पोंछने की कोशिश करता है। इसमें समाज में हुए बदलाव भी दिखाई देते हैं और क्रांति भी।

पूर्णिमा वर्मन की कृति ‘वक्त के साथ’ में मानव-मन की अनेक प्रवृत्तियाँ और कुदरत के विभिन्न दृश्यों का दर्शन हुआ है। अंधकार किस प्रकार सत्य से बेहतर दिखाई दे सकता है और रौशनी में सच कितना कठोर हो सकता है, इस बात की प्रतीति उनकी कविता ‘अँधेरे में’ कुछ इस प्रकार दिखाई देती है—

अँधेरे में अचानक / सुंदर हो उठता है कमरा
सपाट हो जाती हैं दरारें / दीवारों की।
चमकते हैं शेलफ बिल्लौरी
और उन पर सजे हुए / स्फटिक
बिखेरते हैं अपनी किरनें / अँधेरे में।¹⁰

पूर्णिमा वर्मन की कविताओं में संप्रेषण की सफलता का रहस्य यह है कि वे चित्रात्मकता का सहारा लेकर अपनी बात को स्पष्ट करती हैं। वे अपयश या निराशा को दूर करने के लिए व्यक्ति को सफलता की ओर ले जाने की प्रेरणा देती हैं। यह बात उनके द्वारा रचित ‘सुनो-सुनो’ नामक कविता में बहुत ही सरल भाषा में उद्धृत हुई है। वे लिखती हैं—

सुनो-सुनो / कोई अजातशत्रु नहीं है
इसलिए आत्महत्या पाप नहीं है
मैंने भी आत्महत्या की है / एक नहीं कई बार
पर आत्मा ऐसी चीज़ है / कभी मरती नहीं
जीतना है तो / ज़रूरी है
पुनर्जन्म लेना तौलना / आपना सामर्थ्य / धैर्य
फिर से बटोरना / पुनः नई काया में
साहस टटोलना।

इन पंक्तियों से आज के मनुष्य को जो बल मिलता है, निश्चित ही वह अदम्य होगा। चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों ना हों।

जीवन एक संघर्ष है। उसमें कई प्रकार के उतार-चढ़ाव देखे जाते हैं। ठीक उसी प्रकार से समाज व देश की भी बात हो सकती है। मिलना और बिछड़ना जीवन के शाश्वत सत्य हैं। पर जीवन और गति उससे बढ़कर हैं जिनके साथ मनुष्य को चलना पड़ता है। क्षणिक सुख बहुत देर तक साथ नहीं देता। इस भावना को कवयित्री प्रकृति के माध्यम से समझाने का प्रयास करती हैं। वे लिखती हैं—

कौन कहाँ किसका होता है
यह दुनिया है / नश्वर जीवन / हर पल यहाँ
रोज़ कोई मिलता-खोता है
बारिश का झरना / कब झीलों का सोता होता है?¹¹

पूर्णिमा वर्मन के काव्य में प्रकृति-प्रेम उनके कथ्य को कई प्रकार से प्रभावित करता है। कहीं प्रेरणा देने के संदर्भ में कही मानवीकरण के संदर्भ में और कहीं संवेदनाओं की गहराई को व्यक्त करने के संदर्भ में। उनके विचारों को जानने के लिए उनकी कविता 'बारिश-बारिश नभ' की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

उतर रही थी शाम पहाड़ों से
बादल की बाँहों में बाँहें डाले

हरी वसुंधरा गले मिली थी / आसमान से
लंबी तनहाई टूटी थी
बारिश-बारिश नभ रोया था
धरती शबनम-शबनम भीगी थी।¹²

पूर्णिमा जी मानव-जीवन को प्रवाहमान मानती हैं, लेकिन इसे जीभर जीने का उल्लास उनकी पंक्तियों में जहाँ-तहाँ परिलक्षित होता है। जीवन में आने वाली विविधता में हर कहीं आशा के पल्लव दिखाई पड़ते हैं। मानव-मन की उड़ान में उत्साह और उमंग के स्वर भी भरे से दिखाती हैं। इन भावों को 'जिंदगी' नामक कविता भलीभाँति स्पष्ट करती है। वे लिखती हैं—

चाहे गा लो, चाहे रंगलो, चाहे बालो
हर एक साँस में अनुरोध किए जाती है
कभी कविता / कभी चित्रक / कभी दीपक
आस की शक्ल में सपनों को सिये जाती है
जिंदगी वक्त-सी टुकड़ों में उड़ी जाती है।

पूर्णिमा जी की कविताओं में व्यावहारिक पक्ष अलग सा दिखाई पड़ता है। वे दैनिक जीवन में घटित घटनाओं और उनकी अनुभूतियों को अपनी रचना का अभिन्न अंग बनाकर उनका सजीव चित्रण करती हैं। इस स्थिति में आने वाले उनकी कविताएँ हैं—'शहर में बरसात' 'मेरे गाँव में,' 'दोस्त तुम हो', 'किस कदर', 'दर्जी की कविता' आदि। साथ ही जीवन की दार्शनिकता को भी पूर्णिमा जी ने अपनी कविताओं वर्णित किया है। 'वक्त के साथ' कविता में वे लिखती हैं—

वक्त शिल्पी की तरह
दीवारों पर / खुद उकेरता है इतिहास।
हम सिर्फ़ देखते हैं / दर्शक की तरह।
और रूपांतर करते हैं / अपनी-अपनी भाषाओं में।¹³

कविता का मौलिक अर्थ बताते हुए, कविता क्या है? इस प्रश्न का उत्तर वे देते हुए वे कहती हैं कि शब्दों के साथ दोस्ती होना। इस बात का प्रमाण उनकी 'शब्द' नामक कविता

में स्पष्ट होता है—

शब्द दोस्त हैं मेरे / अलग-अलग काम के लिए
अलग-अलग वक्त पर / सहयोग करते हुए
मेरी भाषा के शब्द / मेरी साथ बढ़ते हुए।

मेरा धर्म, मेरा ईश्वर / मेरा दर्शन
रात के अँधेरे से / सुबह के उजाले तक
कभी मेरी राह / कभी मेरी मंजिल
कभी हमसफ़र
ठीक ही कहा है / शब्द ब्रह्म।

अब बात प्रासंगिकता की हो तो आज संपूर्ण मानव-समाज एक समस्या से चिंतित-सा नज़र आता है। वह समस्या है 'आतंकवाद'। पूर्णिमा जी इस समस्या से दुखी दिखाई देती हैं। पूरा विश्व और मानवता, संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ इसकी चपेट में आई हैं। इस बात का अवलोकन करते हुए वे कहती हैं कि आतंकवाद को आश्रय देने वाले राजनीति और सत्तावादी ही हैं। इस बात का प्रमाण 'आतंकवाद' नामक रचना में नज़र आता है। वे लिखती हैं—

आतंक!

जो सत्तावाद, अव्यवस्था / और असमानता से जन्मता है
घना होता है / आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक दमन से
हवा पाता है / दिशाहीन सरकारों से
और / लोलुप राजनीतिज्ञों से।¹⁴

अमेरिका और अन्य देशों के व्यापार-केंद्रों पर आतंकवादी हमला ऐसे ही अमानुष कृत्यों के उदाहरण हैं। अतः कवयित्री वक्त के साथ न चलती तो ऐसे विषयों पर कैसे सोचा जा सकता था। मनुष्य अपने जीवन में बेचैन होकर उसी में जीना चाहता है। इस बात की अनुभूति 'आज अचानक', 'आतंकवाद', 'आधी रात', 'अँधेरे में', 'ज़िंदगी' इन सभी कविताओं में मौजूद हैं।

'वक्त के साथ' और 'चोंच में आकाश' में संकलित रचनाओं में गंभीरता और वैविध्य है। विषय के अनुरूप शब्दों का प्रयोग हुआ है। दोनों काव्य-संग्रहों में पूर्णिमा जी की विलक्षण काव्य-प्रतिभा के दर्शन होते हैं। यह भी देखा जा सकता है कि विदेश में रहने के बावजूद उन्होंने अपनी मातृभाषा हिंदी के प्रति प्रेम और स्वदेश की मिट्टी की गंध पर किसी भी प्रकार की आँच नहीं आने दी। इसका ज्वलंत उदाहरण 'मेरी भाषा', 'नाम लो मेरा', 'सुनो-सुनो' कविताओं में समाहित है। उनके विचार और कविता सार्वकालिक और सार्वदेशिक है और उनमें प्रासंगिकता हर जगह बनी रही है।

डॉ० महेंद्र भटनागर के शब्दों में—'पूर्णिमा जी के काव्य का सबसे बड़ा गुण उसमें पाया जाने वाला प्रसाद गुण है। प्रांजलता के कारण उनके कथन में संप्रेषणीयता है। उनकी काव्य-पंक्तियाँ सहज ही गले में रच-बस जाती हैं। स्वच्छ और साहित्यिक भाषा के फलस्वरूप उनका स्तर स्वतः मानक आकार भी ग्रहण करता चलता है। शब्द-प्रयोगों के संदर्भ में वे विशेष

रूप से जागरूक दृग्गोचर होती हैं। इससे उनकी कविताओं का कला-सौष्ठव निखरा है। इस प्रकार कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से पूर्णिमा वर्मन जी की काव्य-सृष्टि हिंदी-कविता को अभिनव भंगिमा प्रदान करती है।¹⁵

संदर्भ

1. मेरी माटी मेरा देश, पृ० 56
2. मेरी माटी मेरा देश, पृ० 56
3. चोंच में आकाश 'सौंदर्यात्मक अन्विति से परिपूर्ण गीत', डॉ० सविता मिश्र
4. चोंच में आकाश, पृ० 85
5. कोरे खाली नुक्कड़, पृ० 50
6. वक्त के साथ, पृ० 49
7. श्रीमती पूर्णिमा वर्मन : साक्षात्कार से
8. अपनी भाषा, पृ० 41
9. पारदर्शी संवेदना के सहज गीत, पृ० 9, नचिकेता
10. वक्त के साथ 'अँधेरे में', पृ० 40
11. वक्त के साथ 'बरगद', पृ० 45
12. वक्त के साथ 'बारिश-बारिश नभ, पृ० 46
13. वक्त के साथ पृ० 49
14. आतंकवाद पृ० 38
15. चोंच में आकाश / अभिमत / डॉ० महेंद्र भटनागर

'आश्रय' सदन पूर्वा नगर, रामकृष्ण अपार्टमेंट के पास, साईं नगर
अमरावती 444607 (महाराष्ट्र)
091 7038 660 787 (भारत)

विभागाध्यक्ष हिंदी, सिंगडेल्लस स्कूल
दुबई, संयुक्त अरब इमारात
+971 553460018 (यू०ई०)
Email : nbhojnae278@gmail.com

महिला-सशक्तिकरण और पंचायतीराज व्यवस्था सकारात्मक व नकारात्मक पहलू

डॉ० संतोषकुमारी

वरिष्ठ प्रवक्ता समाजशास्त्र
जे०के०पी० (पी०जी०) कॉलेज
मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

महिलाओं की स्वतंत्रता, समानता और आर्थिक प्रगति किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का परिचायक है, लेकिन आज भी महिलाएँ किसी-न-किसी रूप में असमानता, अत्याचार एवं शोषण का शिकार हो रही हैं। उनकी इस अवस्था में अभी तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया, यद्यपि प्रजातंत्र के विकास के साथ-साथ महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों में कुछ अंतर अवश्य आया है। आज प्रत्येक स्तर पर सशक्तिकरण हेतु महिलाएँ कहीं-न-कहीं संघर्षरत हैं, लेकिन इस सशक्तिकरण में समाज, पुरुषवादी मानसिकता तथा स्वयं महिलाएँ, किसी-न-किसी रूप में बाधा उत्पन्न कर रही हैं। आज भी समाज में विचारधाराओं, संस्थागत रिवाजों और प्रचलित प्रतिमानों ने उनके उत्पीड़न को बढ़ाया है। भारतीय समाज में महिलाओं के समर्थन में बनाए गए कानून महिलाओं में शिक्षा का फैलाव और महिलाओं में धीरे-धीरे बढ़ती हुई, आर्थिक स्वतंत्रता के बावजूद असंख्य महिलाएँ उत्पीड़न का शिकार हैं। विभिन्न संवैधानिक प्रावधान उनको विकास की मुख्य धारा में लाने का सार्थक प्रयास कर रहे हैं। इस सशक्तिकरण को आगे बढ़ाने हेतु विभिन्न सामाजिक संगठनों, शिक्षण-संस्थाओं एवं महिला-संगठनों ने बीड़ा उठाया है, जिससे उन्हें समाज में उचित स्थान मिल सके।

महिला-सशक्तिकरण की पहल 1985 में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन नरौबी में की गई थी। सामान्य रूप से महिला-सशक्तिकरण का अभिप्राय महिलाओं को पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्ता से है। दूसरे शब्दों में, महिला-सशक्तिकरण का तात्पर्य जीवन की गुणवत्ता में सुधार से है, जिसमें कम-से-कम महिला को अपने स्वयं के जीवन से संबंधित निर्णय लेने की क्षमता एवं स्वायत्ता प्राप्त हो सके। भारत में महिला-सशक्तिकरण का प्राथमिक उद्देश्य महिलाओं ने यह सिद्ध किया है कि कर्मक्षेत्र की किसी भी दिशा में अवसर मिलने पर वे पुरुषों के पीछे नहीं रहेंगी। चिकित्सा, शिक्षा, राजनीति, कूटनीति आदि क्षेत्रों में महिलाओं की श्रेष्ठतम उपलब्धियों ने सिद्ध कर दिया है कि यदि उन्हें पुरुषों के समान अवसर मिले तो वे अपने

दायित्वों का निर्वाह अधिक अच्छे ढंग से कर सकती हैं। महिला-सशक्तीकरण की संपूर्ण अवधारणा इसी परिकल्पना पर आधारित है।

सकारात्मक पक्ष :

महिलाओं को राजनीतिक रूप में सबल बनाने हेतु सर्वप्रथम अप्रैल 1993 में 73वें और 74वें संविधान संशोधन द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती संस्थाओं एवं स्थानीय निकायों में प्रत्येक स्तर पर महिला सदस्यों और अध्यापकों के लिए एक तिहाई सीटें आरक्षित कर दी गई हैं, ताकि देश के राजनीतिक, सामाजिक जीवन में वह सक्रिय भागीदारी निभा सकें। भारत में त्रिस्तरीय पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी के लिए आरक्षण की व्यवस्था करना निःसंदेह एक क्रांतिकारी कदम है। ग्रामीण एवं नगरीय पंचायतों में महिलाओं के लिए 1/3 स्थानों को आरक्षित कर उन्हें चूल्हे-चौके से बाहर निकालकर एक सकारात्मक शुरुआत की गई है। स्थानीय स्वशासन में इस आरक्षण से लगभग 20 लाख महिलाओं को जनप्रतिनिधियों के रूप में विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व व अधिकार प्राप्त हुए हैं। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ बढ़-चढ़कर चुनावों में हिस्सा ले रही हैं और ग्रामप्रधान, क्षेत्र समिति प्रमुख, ब्लॉक प्रमुख, जिला पंचायत सदस्य आदि महत्वपूर्ण पदों पर निर्वाचित होकर अत्यंत कुशलतापूर्वक शासन चला रही हैं। पहले प्रश्न उठता था कि राजनीतिक सत्ता पर महिलाओं की भूमिका क्या होगी? क्या वह चुनाव में भाग लेने का साहस करेंगी?, मतदान करने में भाग लेंगी, क्या वह मंचों पर उन्मुक्त भाषण दें पाएँगी, क्या वह समस्याओं का समाधान खोज सकेंगी? लेकिन इन सबके बावजूद महिलाओं में जबरदस्त चुनावी प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है। पंचायतीराज संस्थाओं और स्थानीय निकायों में उनकी बढ़ती सक्रियता और भागीदारी से एक नया मार्ग प्रशस्त हुआ है। पंचायतीराज संस्थाओं में इन चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों ने अपवादों को छोड़कर अपनी भूमिका सक्षमता से निभाते हुए सिद्ध किया है कि महिलाएँ किसी भी तरह पुरुषों से कम नहीं हैं। साथ ही पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता से ऐसी अनेक भ्रांतियाँ टूट रही हैं कि महिलाएँ राजनीतिक भूमिका निभाने एवं नेतृत्व प्रदान करने में असमर्थ होती हैं। अनेक स्थानों पर महिलाओं ने समस्त चुनौतियों का सामना करते हुए पंचायतीराज संस्थाओं एवं स्थानीय निकायों को सफल नेतृत्व प्रदान किया है।

नकारात्मक पक्ष :

महिला-सशक्तीकरण को बल देने के लिए किए गए विभिन्न प्रयास केवल कागजी दस्तावेज़ तक ही सीमित है, जबकि वास्तविकता के धरातल पर देखा जाए तो स्वतंत्रता के लगभग 63 वर्षों के बाद भी जनसंख्या का आधा भाग होते हुए भी महिलाओं की गणना एक उपेक्षित, शोषित व कमजोर वर्ग के रूप में की जाती है। यद्यपि आरक्षण के कारण स्थानीय निकायों में महिलाओं की हिस्सेदारी तो बढ़ी है, किंतु बावजूद इसके राजनीतिक सशक्तीकरण में इन महिलाओं का बहुत बड़ा हिस्सा अपने पतियों, ससुरालियों या माता-पिता की छत्रछाया में प्रधान या पंचायत सदस्यों का वैधानिक कार्य कर रहा है।

यह भी सत्य है कि भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता व सत्ता में साझेदारी के लिए किए गए प्रयत्नों को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। त्रिस्तरीय स्तर पर महिलाओं

को 33 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने के बावजूद 'महिला प्रधान' के सभी अधिकार व शक्तियों का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में एक पुरुष अर्थात् उस महिला-प्रधान के पिता, पति, ससुर या पुत्र इत्यादि द्वारा किया जाता है। महिला मतदाताओं की संख्या में वृद्धि के बावजूद ग्रामीण व नगरीय दोनों ही क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा अपने मत का प्रयोग स्वविवेक से न करके पिता, पुत्र, पति आदि के परामर्श या दबाव में ही किया जाता है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त तथ्यों के आधार कहा जा सकता है कि महिलाओं का अधिकार केवल राजनीति में हिस्सा लेने तथा वोट डालने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उन्हें अपनी शक्ति को पहचानने, स्वयं निर्णय लेने के साथ ही आत्मविश्वास, योग्यता और साहस पैदा करना है ताकि वे राजनीति में अपनी सक्रिय भूमिका निभा सकें। यह भी आवश्यक है कि उनकी राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए पुरुषों को या वातावरण को दोष देने के बजाय महिलाओं को अतिरिक्त योग्यता व साहस द्वारा आगे आकर जो लाभ उन्हें स्थानीय राजनीति में आने का मिला है उसके लिए उन्हें सचेत होकर सक्रिय होना पड़ेगा। तभी महिला सशक्तिकरण की धारणा सार्थक होगी।

संदर्भ

1. भार्गव एवं विद्या, राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की स्थिति, रूल ऑफ रूरल डेवलपमेंट VOL-II, NOS सितंबर 1992
2. के०एस० भट्ट, पंचायतीराज में नेतृत्व के बदलते आयाम 1967
3. सुशीला कौशिक, पंचायतीराज और महिलाएँ, नई दिल्ली 1993
4. नंदिनी पावली, महिलाओं में कम राजनीतिक प्रतिनिधित्व, राजस्थान पत्रिका, सितंबर 2000

वर्तमान समाज में महिला-सशक्तिकरण की चुनौतियाँ

श्रीमती आभा सिंघल

प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग

डी०ए०वी० कॉलेज

मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

जिस समाज में महिलाओं की स्थिति जितनी मजबूत, सम्मानजनक और सक्रिय होती है, वह समाज उतना ही समृद्ध और उन्नतिशील होगा। यह बात आधुनिक विचारक भी स्वीकार करते हैं और हमारे धार्मिक ग्रंथों में भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किए गए हैं। धर्मग्रंथों से इस बात का पता चलता है कि हमारे यहाँ पहले मातृसत्ता भी अस्तित्व में थी। प्राचीनकाल में नारी को समाज में समानता प्राप्त थी। महिलाएँ पुरुषों की प्रेरणा भी बनीं। राज्य के कार्यों से लेकर रणभूमि तक महारानियों की भूमिका रहती थी। रजिया सुल्तान जैसी महिलाओं ने सल्तनत चलाकर अपनी प्रतिभा दिखाई, वहीं दूसरी ओर जीजाबाई, रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई की अद्भुत राजनीतिक क्षमता व साहस से सभी परिचित हैं। लेकिन आज हम भारतीय समाज में पुरुष-स्त्रियों में जो समानता की बातें करते हैं, वह उचित प्रतीत नहीं होतीं। आज महिलाएँ घर से बाहर निकलकर शिक्षा प्राप्त कर रही हैं और उन क्षेत्रों में अपने कदम बढ़ा रही हैं, जहाँ पर पहले पुरुषों का एकाधिकार था। फिर भी वे आज भी पुरुष के अहं का शिकार हो रही हैं। वह चाहे कितने भी ऊँचे पद पर क्यों न हो, उसे पुरुष की प्रताड़ना झेलनी पड़ रही है। यह सब सशक्तिकरण की वास्तविकता को दर्शाता है। गाँव में महिलाएँ खेती का लगभग सभी कार्य करती हैं, फिर भी उनको कृषक की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। एक समान कार्य करने पर भी उनको पुरुषों के समान वेतन नहीं मिल पाता, नौकरियों में भर्ती व पदोन्नति में भी उनके साथ भेदभाव होता है। जीवन-भर माता-पिता की सेवा करने के बाद भी मुखाग्नि देने का अधिकार केवल पुरुषों को ही है।

महिला-सशक्तीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जो महिलाओं को उत्पीड़न व शोषण से मुक्त करती है। यह महिलाओं के चहुँमुखी विकास का माध्यम है, जिसमें नारी-जीवन के प्रत्येक संदर्भ को सम्मिलित किया गया है। यह महिलाओं की निर्णय निर्धारण-प्रक्रिया में भागीदारी पर बल देने की प्रक्रिया है तथा समाज में महिलाओं को समानता दिलाने का माध्यम है, महिलाओं के सम्मान व गरिमा को सुरक्षित करने पर बल देता है। यह मुख्य रूप से महिलाओं को सामाजिक व आर्थिक रूप से मजबूत करने से संबंधित है, जिससे वे स्वावलंबी होकर पुरुषों के समान राष्ट्र के निर्माण में अपनी सहभागिता दें।

हमारे देश में महिलाओं को सशक्त व सबल बनाने के लिए अनेक सकारात्मक प्रयास

भी किए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 व 15 में नारी-हितों को संरक्षित किया गया है। अनुच्छेद 51(क) में यह व्यवस्था दी गई है कि प्रत्येक नागरिक का यह वैधानिक दायित्व है कि वह महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध होने वाली किसी भी गतिविधि का विरोध करे। महिला-सशक्तीकरण की राष्ट्रीय नीति सरकार द्वारा 20 मार्च 2001 को लागू की गई। इस नीति का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास व सशक्तीकरण निश्चित करना व महिलाओं के साथ हर प्रकार का भेदभाव समाप्त कर सुनिश्चित करना कि जीवन के हर क्षेत्र व गतिविधि में खुलकर भागीदारी करें। भारत में सन् 2009 को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाया गया। 15 अगस्त 2001 को ऋण योजना शुरू की गई, जो 15-18 वर्ष की किशोरियों के लिए बनाई गई। महिलाओं व बच्चों के समुचित विकास के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत सन् 1985 में 'महिला व बाल विकास विभाग' की स्थापना की गई। इसी विभाग की सिफारिशों को ध्यान में रखकर 'राष्ट्रीय महिला आयोग' व 'राष्ट्रीय महिला कोष' की स्थापना हुई। महिला हितों के लिए 1987 में स्टेप कार्यक्रम शुरू किया गया। अनेक एन०जी०ओ० भी महिला-सुधार के लिए आगे आए। 1997 में बालिका समृद्धि योजना शुरू की गई। घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005 बनाया गया। महिलाओं के लिए कंप्यूटर बेसिक कोर्स का प्रशिक्षण योजना आरंभ की गई। राजीव गांधी किशोरी सशक्तीकरण योजना सबला भी शुरू की गई।

भारतीय समाज की कुछ महिलाएँ ऐसी भी हैं, जिन्होंने महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए अपना महत्वपूर्ण योग दिया है। जैसे-भारतीय मूल की कल्पना चावला नासा के अंतरिक्ष यात्री दल के चुने गए सिविलियन मिशन विशेषज्ञों के दल में शामिल की गईं। शास्त्रीय गायिका पद्मावती गोखले को कालिदास सम्मान दिया गया। प्रसिद्ध धाविका रोसा कुट्टी भारोतोलिका मल्लेश्वरी को अर्जुन पुरस्कार मिला। डिजाइन के क्षेत्र में रितु बेरी ने पेरिस में धूम मचाकर रख दी। शहनाज हर्बल्स की शहनाज हुसैन ऐसी उद्यमी हैं, जिसका उत्पाद आज विश्वप्रसिद्ध है। विश्वसुंदरी का खिताब जीतने वाली सुष्मिता सेन, ऐश्वर्या राय, युक्तामुखी, प्रियंका चोपड़ा आदि भारतीय महिला ही हैं। प्रसिद्ध आई०पी०एस० किरण बेदी ने देश-विदेश में महिला पुलिस अफसर के पद को गौरवान्वित किया है।

सशक्तीकरण के प्रयासों का प्रभाव नारी-समाज पर कुछ तो परिलक्षित हुआ है। पहले की अपेक्षा महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक हिस्सेदारी भी बढ़ी है। उन्होंने आज पुरुषों के वर्चस्व को तोड़ा भी है और पुरुष-प्रधान समाज का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट भी किया है। लेकिन मुख्य बात यह है कि ऐसी महिलाओं का प्रतिशत कितना है? ऐसा नहीं है कि प्रगति नहीं हुई, लेकिन यह प्रगति संतोषजनक भी नहीं की जा सकती।

महिलाओं की सशक्तीकरण में कई बातें अवरोधक बन रही हैं। जैसे-उनके परिवार का ढाँचा, उनकी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सरकारी प्रयासों की संदिग्धता, खानापूर्ति की प्रवृत्ति, कागजी आँकड़े, आर्थिक पराधीनता, स्वावलंबी न होना, निरक्षरता, सामाजिक जीवन में भागीदारी के प्रति उदासीनता, राष्ट्रीय मामलों में रुचि न होना, लिंग के आधार पर परिवार में भेदभाव होना आदि। महिलाओं का सशक्तीकरण न केवल समानता लाने के लिए अपितु स्थायी व सुदृढ़ आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए भी जरूरी है। वास्तव में महिला-सशक्तीकरण को सुदृढ़ व शक्तिशाली बनाते हुए सामाजिक संरचना में

परिवर्तन लाना अत्यंत आवश्यक है। नारी के विकास में जो उपर्युक्त बाधाएँ हैं, उनको दूर करना बेहद जरूरी है। अब महिलाएँ सबल व सशक्त होकर विकास की मुख्य धारा से जुड़ेंगी, तभी राष्ट्र का सार्थक विकास होगा।

महिलाओं को सशक्त व समान बनाने के लिए अभी और सरकारी व सामाजिक प्रयासों की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. परीक्षा मंथन समसामयिक निबंध, 2001
2. भारत का संविधान-डी०डी० बसु
3. आर०के० सिंह व मंजूसिंह, समाजशास्त्र, 2013-14
4. डॉ० अर्चना सिन्हा, समाजविज्ञान शोध पत्रिका, 2011-12
5. रजनी मल्होत्रा नैयर, महिला दिवस पर (महिला सशक्तीकरण की कुछ चुनौतियाँ),
7 मार्च 2010

373/13, गणपति एन्क्लेव
पटेल नगर, नई मण्डी,
मुज़फ़्फ़रनगर-251001

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका पर 'राजनीति'

डॉ० वर्चसा सैनी

राजनीति विज्ञान विभाग

जे०के०पी०(पी०जी०) कॉलेज

मुज़फ़्फ़रनगर (उ०प्र०)

भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान जब पुरुषों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर महिलाओं ने स्वयं सहभागिता दिखाई, तब भारतीय मानस-पटल पर इनके योगदान पर विचार-विमर्श हुआ, तब जाकर स्वतंत्रता के साथ संवैधानिक रूप से इनको संरक्षणात्मक प्रोत्साहन प्रदान किया जाना शुरू हुआ। देश के राजनीतिक परिदृश्य में महिलाओं की मौजूदगी का सवाल बौद्धिक बहसों, सेमिनारों और गोष्ठियों में गूँजता रहता है। देखा जाए तो इस देश ने दशकों पहले ही अपनी बागडोर इंदिरा गांधी के हाथों सौंप दी थी और आज जयललिता, सोनिया गांधी, मायावती एवं ममता बनर्जी जैसी नेता भारतीय राजनीति के अंबर के चमकते सितारे हैं; लेकिन प्रश्न यह है कि इस चमक का दायरा कितना व्यापक, कितना सघन और कितना स्थायी है।

आजादी से लेकर आज तक भारतीय राजनीति में महिलाओं की उपस्थिति वाले प्रश्न को हर चुनाव कुछ समय के लिए ऑक्सीजन प्रदान करने का काम करता है। सभी राजनीतिक दल चुनावी शतरंज में महिलाओं की सुरक्षा को मोहरा बनाकर 'राजनीति' तो करते हैं, लेकिन उन्हें सुरक्षित भविष्य के लिए बड़ी राजनीतिक भूमिका देना उनके एजेंडे में नहीं है। किसी भी राजनीतिक दल के संविधान में टिकट-वितरण की प्रक्रिया में महिला और पुरुष के बीच भेदभाव करने का जिन्न नहीं है, पर व्यावहारिक तौर पर जो लैंगिक असमानता है, उसके हम सब गवाह हैं। इसके पीछे कई बड़ी वजह सामने आती हैं कि महिलाओं को देश में कोई भी राजनीतिक दल 'वोट बैंक' के तौर पर नहीं मानता। इन दलों का मानना है कि महिलाएँ अपने घरों के पुरुषों के अनुसार ही मतदान करती हैं। जबकि आज का यह सच है कि महिलाओं में राजनीतिक चेतना का विकास तेजी से हो रहा है, जिसका प्रमाण है पिछले कुछ आँकड़े। इसके अनुसार महिलाएँ चुनाव पर लगातार अपना असर डाल रही हैं। पिछले साल हुए विधानसभा चुनाव में अधिकतर राज्यों तथा 2014 के लोकसभा चुनाव में मतदान करने के मामले में महिलाएँ पुरुषों से आगे ही रही हैं। गरीबी, शिक्षा में कमी या फिर पिछड़े समाज की बंदिशों से महिलाएँ राजनीति में आगे नहीं आ पा रही हैं। अपवादस्वरूप अगर महिलाएँ आगे आती भी हैं तो इसके पीछे भी किसी-न-किसी पुरुष का हाथ होता है, वरना अपने बलबूते पर पुरुष-प्रधान समाज में ऊपर आना उनके लिए संभव नहीं हो पाता।

भारतीय राजनीति को नज़दीक से देखने पर यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि राजनीति में महिलाओं की संख्या कम क्यों है? इसका कारण यह भी है कि परंपरागत पितृसत्तात्मक व्यवस्था में महिलाओं को शारीरिक, बौद्धिक व सामाजिक दृष्टि से पुरुषों से कमतर माना जाता है। भारतीय महिलाओं को अनेक सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है, इसके अलावा उनसे उम्मीदें बहुत ज्यादा होती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के बीच भेदभाव बचपन से ही शुरू हो जाता है। असमानता बाल्यकाल से आरंभ हो जाती है, महिलाओं को उसमें रहना होता है। इन असमानताओं के चलते समाज में पुरुष निर्णय लेने के क्षेत्र में महिलाओं को कोई महत्त्व नहीं देते हैं। परिणामस्वरूप महिलाएँ भी पुरुषों जैसा दृष्टिकोण पेश करती हैं। इस वजह से भी राजनीति में उनका विकास प्रभावित होता है। राजनीतिक दल भी एक पुरुष उम्मीदवार के बजाय महिला उम्मीदवार का समर्थन करने के अनिच्छुक रहते हैं। इंटर पार्लियामेंट्री यूनियन की 2013 की रिपोर्ट के अनुसार, संसदीय लोकतंत्र में महिलाओं को भागीदारी देने के सवाल पर भारत का स्थान 108वाँ है, जबकि पड़ोसी देश पाकिस्तान एवं नेपाल का 66वाँ एवं 24 वें स्थान पर होते हुए भी इस मामले में भारत से कहीं आगे हैं।

देश की राजधानी और राजनीति का केंद्रबिंदु दिल्ली भी महिलाओं को राजनीति में बड़ी भूमिका भी नहीं दे पाई। हाल ही में दिल्ली विधानसभा चुनाव में 70 विधानसभा सीटों पर बीजेपी, काँग्रेस एवं आम आदमी पार्टी ने मात्र 19 महिलाओं को चुनावी मैदान में उतारा, जिनमें केवल 6 ही जीत की दहलीज पार कर सकीं। दिल्ली के नवनियुक्त मुख्यमंत्री केजरीवाल 'आम आदमी' की बात तो करते हैं, लेकिन 'आम महिलाओं' के विषय पर उनकी सोच पर पुरुष मानसिकता ही हावी रही। प्रचंड बहुमत के बावजूद उनके कैबिनेट में महिलाएँ नदारद हैं। यह हमारे तंत्र की, हमारी व्यवस्था की एक बहुत बड़ी हार है कि जो महिलाएँ हर क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा सकती हैं और जब देश की नीतियों और महत्त्वपूर्ण फैसले लेने की बात आती है तो महिलाओं की भूमिका नहीं के बराबर रहती है। यह कितने अफ़सोस की बात है कि एक ओर तो हम दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र होने का दावा करते हैं, वहीं दूसरी ओर हमने लोकतंत्र में फैसले लेने वाली संसदीय संस्थाओं से महिलाओं को बाहर रखा है। इस पर राजनीतिक दल यह कहते हैं कि महिलाओं को चुनाव में खड़ा इसलिए नहीं करते, क्योंकि उनके जीतने की संभावनाएँ कम होती हैं। अगर यही स्थिति है तो फिर हर हालत में आरक्षण की आवश्यकता है ताकि 33 प्रतिशत महिलाएँ तो संसद एवं विधानसभा में पहुँच सकें। राज्यसभा में 10 प्रतिशत महिलाएँ हैं, इसमें वोट विधानसभा सदस्य डालते हैं, फिर दल महिलाओं को खड़ा क्यों नहीं करते, इसका कोई जवाब नहीं है। भारत जैसे सामंतवादी, पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों ने राजनीति को अपना पक्का व्यवसाय बना लिया है। भारतीय राजनीति में महिलाओं की क्या सशक्त भूमिका होनी चाहिए, किसी भी राजनीतिक दल की प्राथमिकताओं की सूची में शामिल नहीं दिखता। ऐसा नहीं है कि राजनीति में लैंगिक असमानता भारत में ही है। वैश्विक राजनीति में भी लैंगिक असमानता खुलकर सामने आई है। चिली के पूर्व राष्ट्रपति, वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्र महिला नामक संगठन की कार्यकारी निदेशक मिशेल बचलेट को विश्वास है कि अब रोज़गारों में संसदीय चुनावों या विभागों की पद नियुक्ति के समय महिलाओं के लिए आरक्षण करना ज़रूरी है, उनके शब्दों में—महिलाओं को अपने कैरियर

में इतनी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है कि यदि हम वास्तव में लैंगिक समानता स्थापित करना और महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें विशेष कार्यक्रम तैयार करना चाहिए। उदाहरण के लिए विशेष कोटे तय करना या फिर समान संभावनाओं के बारे में कानून स्वीकार करना ज़रूरी है, जिसके परिणामस्वरूप संसद में या कंपनियों के नेतृत्व में महिलाओं की संख्या बढ़ सकेगी। UNO की ताज़ा सूचनाओं के अनुसार 192 देशों में केवल 10 प्रतिशत देशों में महिलाएँ राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री पद पर काम कर रही हैं।

भारतीय राजनीति में अभी पुरुषवादी सोच ही हावी है, इसी कारण वे आरक्षण का कानून पारित नहीं करना चाहते। यह निश्चित है कि अगर महिला सीट आरक्षित हो गई तो वे पीछे नहीं हटेंगी। पंचायतीराज व्यवस्था में 33 प्रतिशत आरक्षण ने इस बात को अच्छी तरह स्थापित किया है और इन इकाइयों में काम कर रही महिलाओं को सर्वश्रेष्ठ रखरखाव व उत्कृष्ट विकास के लिए पुरस्कृत किया गया, पर यह कितने दुख की बात है कि देश की संसद और विधानसभाओं की दीवारों को तोड़कर हम आधी तो छोड़िए, एक तिहाई महिलाओं को भी नहीं ला पा रहे हैं। अतः अब आवश्यक हो गया है कि भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका पर जो प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है, उसे हटा देना ही बेहतर होगा। बिना महिलाओं की राजनीति में भागीदारी के कैसे हम भारत को सबसे बड़ा लोकतंत्र कहते हैं। भारतीय राजनीति के सियासतदां अगर वास्तव में राजनीतिक क्षेत्र में लैंगिक समानता लाना चाहते हैं तो निःसंदेह महिला-आरक्षण ही वह सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा महिलाओं की भारतीय राजनीति में भागीदारी सुनिश्चित करके भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक तस्वीर बदली जानी संभव है।

संदर्भ

1. डॉ॰ ज्ञानप्रकाश गौतम, महिला सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण, कला प्रकाशन, 2009
2. वृंदा करात, सबसे बड़े लोकतंत्र में महिलाओं की उपेक्षा, BBCHindi.com
3. प्राइम टाइम इंट्रो : लोकतंत्र में महिलाओं की भागीदारी-ND TV
4. हिंदुस्तान समाचार-पत्र, 05.02.2015

पुत्री श्री मलखान सिंह सैनी
पूर्व विधायक
ग्राम व पोस्ट-हसनपुर लुहारी
शामली (उ०प्र०)-247772

महिला-आरक्षण : महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता

डॉ० प्रेमलता

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद,
गाजियाबाद, (उ०प्र०)

वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण सर्वाधिक महत्त्व का विषय बना हुआ है। वस्तुतः कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा (49%) होने के कारण महिला और विकास का अंतरंग संबंध है। कोई भी समाज तब तक विकास नहीं कर सकता, जब तक उसका आधा भाग शोषित अथवा अविकसित हो। कोई भी राष्ट्रीय विकास तब तक अपूर्ण है, जब तक उसमें महिलाओं का विकास तथा विकास का लाभ महिलाओं तक पहुँचाने की व्यवस्था सम्मिलित नहीं है। वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता से इस बात की पुष्टि होती है कि सभी समाजों में महिलाएँ शोषित एवं पीड़ित रही हैं अर्थात् उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा गया है। इतना ही नहीं अपितु पुरुष समाज के मुकाबले महिलाओं की हीन स्थिति को न्यायोचित भी ठहराया गया है। लेकिन अब अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं पारिवारिक विकास एवं प्रगति के लिए महिला सशक्तिकरण के अपरिहार्य माने जाने की समझ बढ़ी है।

मुख्य विषय पर पहुँचने से पूर्व महिला सशक्तिकरण को समझना अति आवश्यक है। वस्तुतः शक्ति से ही सशक्तिकरण का सिद्धांत पोषित होता है। प्रचलित रूप से 'शक्ति' किसी कार्य के कर सकने की क्षमता को माना जाता है। सामाजिक संदर्भों में शक्ति-हुकम देने का हक, शासन करने या नियंत्रित करने की ताकत या प्रभावित करने की क्षमता इत्यादि है। इस प्रकार सशक्तिकरण से अभिप्राय—जहाँ शक्ति न हो या जहाँ पर कम हो, वहाँ पर शक्ति को और बढ़ा देना है। महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष लाकर उनके प्रति होने वाले सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करके उन्हें स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के प्रयासों का पुनर्वलन किया जाता है ताकि वे अपनी परंपरागत दबू प्रकृति के आवरण से बाहर निकलकर आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी बन सकें। दूसरे शब्दों में, महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य—सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनीतिक और आर्थिक नीति-निर्धारण में भागीदारी से है। इसके अंतर्गत महिलाओं को जागरूक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य-संबंधी साधन उपलब्ध कराए जाएँ ताकि वे सामाजिक न्याय व समानता के लक्ष्य को हासिल कर सकें। महिलाओं को शक्तिसंपन्न बनाने हेतु वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया गया। भारत में महिलाओं के कल्याण

हेतु पहली बार राष्ट्रीय उत्थान नीति बनाई गई, जिसमें महिलाओं की शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा में सहभागिता को सुनिश्चित कराया गया।

वस्तुतः व्यक्तित्व-विकास के लिए तीन बातें अति महत्वपूर्ण हैं—शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन और नीति-निर्माण में भागीदारी। इनके अभाव में हम सशक्तिकरण की कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि हमें किसी व्यक्ति, परिवार, धर्म, समाज, जिला, राज्य, राष्ट्र को ऊँचा उठाना है तो ये तीन चीजें उसे मुहैया करा दीजिए और यदि किसी का शोषण करना है तो इन तीनों चीजों से उसे वंचित कर दीजिए। वस्तुतः भारत में महिलाओं और दलितों के साथ भी यही व्यवहार हुआ, जिससे उनके विकास तथा कल्याण के सारे मार्ग अवरुद्ध हो गए और शोषण का ऐसा सिलसिला शुरू हुआ, जो इतने व्यापक संवैधानिक व वैधानिक प्रावधानों के बाद भी अनवरत् जारी है।

यदि हम ईमानदारी के साथ महिलाओं को सशक्त बनाना चाहते हैं तो जिन शस्त्रों को हमने उनसे छीना था, उन्हें हमें लौटाना होगा। महिला सशक्तिकरण के लिए महिलाओं को पूर्ण रूप से शिक्षित बनाना अति आवश्यक है। आजादी के बाद 1951 में महिलाओं की साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी, जो 2011 में बढ़कर 65.46 प्रतिशत हो गई।¹ सरकार द्वारा 6-14 वर्ष तक के बच्चों की निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई तथा शिक्षा को अनुच्छेद 21(क) में मौलिक अधिकार बनाकर इसे 1 अप्रैल 2010 से लागू कर सर्वशिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया गया,² जो अत्यन्त प्रशंसीय कहा जा सकता है। **दूसरा**—सरकार द्वारा महिलाओं को आर्थिक रूप से निर्भर बनाने के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं, जिनमें सरकारी योजनाओं व सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान भी है। इसी क्रम में पुत्रियों को पैतृक संपत्ति में हिस्सेदारी-संबंधी अधिनियम-2005 भी महत्वपूर्ण है, हालाँकि इसकी धरातलीय सच्चाई से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। **तीसरा**—महिलाओं को नीति-निर्माण-प्रक्रिया से जोड़कर राजनीतिक सहभागिता को बढ़ाकर महिला सशक्तिकरण के प्रयासों को सफल बनाया जा सकता है। नीति-निर्माण में भागीदारी इन तीनों बातों में अति महत्वपूर्ण है, क्योंकि नीति-निर्माण में भागीदारी से प्रथम दो लक्ष्य भी आसानी से साधे जा सकते हैं। हालाँकि नीति-निर्माण-प्रक्रिया से महिलाओं को जोड़ने का प्रयास राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व के दौरान 1992 में 73वें तथा 74वें संवैधानिक संशोधन द्वारा किया गया, जिसमें संविधान के भाग-9 के अनुच्छेद-243 में वर्णित तीनों पंचायतों को संवैधानिक संस्था घोषित किया गया तथा अनुच्छेद-243 घ (1) के खंड (3) के अंतर्गत महिलाओं के लिए एक तिहाई (33 प्रतिशत) आरक्षण का प्रावधान किया गया।³ 27 अगस्त 2009 को भारत सरकार ने एक ऐतिहासिक पहल करते हुए पंचायतों में आरक्षण 33 प्रतिशत बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया।⁴ उपर्युक्त व्यवस्थाएँ महिला-सशक्तिकरण के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हो रही हैं।

लेकिन सरकार द्वारा किए गए उपर्युक्त प्रावधानों को तब तक पूर्ण तथा सार्थक नहीं कहा जा सकता, जब तक सत्ता के मुख्य केंद्र लोकसभा और विधानसभा में महिलाओं की समानुपातिक भागीदारी सुनिश्चित नहीं की जाती। यदि अंतर संसदीय संघ की 189 देशों की

संसद में महिलाओं की स्थिति का जायजा लें तो भारत का स्थान 116वाँ है (ऊपर से घटते हुए क्रम में) जबकि हमारे पड़ोसी राज्यों में नेपाल का 36वाँ (29.9 प्रतिशत), अफगानिस्तान का 41वाँ स्थान (27.7 प्रतिशत), चीन का 62वाँ (23.4 प्रतिशत), पाकिस्तान का 73वाँ स्थान (20.7 प्रतिशत), बांग्लादेश का 77वाँ (19.8 प्रतिशत)⁵ हमसे बेहतर स्थिति की ओर संकेत कर रहा है। महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने के मामले में रवांडा (63.8 प्रतिशत)⁶ 'पहले स्थान पर है। यदि हम भारत में महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को देखें तो स्थिति निराश ही अधिक करती है। 1926 में डॉ० मुथुलक्ष्मी के विधायक मनोनीत होने से लेकर 2014 तक लगभग 90 सालों में 61 महिलाएँ ही संसद तक पहुँची हैं। सारणी 1 व 2 का अध्ययन बीते वर्षों में संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को समझने में सहायता करेगा।

सारणी-1
लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व (1952-2014)

क्र.सं.	वर्ष	कुल सीट	महिला सदस्य	पुरुष सदस्य	महिलाएँ % में
1	1952	499	22	477	4.4%
2	1957	500	27	473	5.4%
3	1962	503	34	469	6.8%
4	1967	523	31	492	5.9%
5	1971	521	22	499	4.2%
6	1977	544	19	525	3.4%
7	1980	544	28	516	5.15%
8	1984	544	44	500	8.1%
9	1989	517	27	490	5.3%
10	1991	544	39	505	7.2%
11	1996	543	39	504	7.2%
12	1998	543	43	500	7.9%
13	1999	543	49	494	9.0%
14	2004	545	45	500	8.2%
15	2009	545	59	486	10.8%
16	2014	543	61	482	11.21%

Source :- Statistics on women in India- 2010 Page 354 and Data. govt. in 10 June 2014

सारणी-2

राज्यसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व (1952-2014)

क्र.सं.	वर्ष	कुल सीट	महिला सदस्य	पुरुष सदस्य	महिलाएँ% में
1	1952	219	16	203	7.4%
2	1957	237	18	219	7.5%
3	1962	238	18	220	7.6%
4	1967	240	20	220	8.3%
5	1971	243	17	226	7.0%
6	1977	244	25	219	10.2%
7	1980	244	24	220	9.8%
8	1984	244	28	216	11.4%
9	1989	245	24	221	9.7%
10	1991	245	38	207	15.5%
11	1996	223	20	203	9.0%
12	1998	245	15	230	6.1%
13	1999	245	19	226	7.8%
14	2004	245	28	217	11.4%
15	2009	245	21	224	8.57%
16	2014	231	29	202	12.55%

Source :- Statistics on women in India- 2010 Page 354 and Data. govt. in 10 June 2014

दोनों सारणियों का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि उच्च राजनीतिक निकायों में महिलाओं के आरक्षण की माँग क्यों जोर पकड़ती जा रही है। वस्तुतः संविधान के अनुच्छेद-14 से 18 में स्त्री और पुरुष को समानता का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद-15(1) तथा अनुच्छेद 15 (2) में धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद अमान्य है, लेकिन अनुच्छेद 15 (3) कहता है कि स्त्रियों की दयनीय स्थिति तथा प्रचलित कुरीतियों के चलते, होने वाले उत्पीड़न के कारण शोषण की स्थिति में राज्यों को उनके लिए विशेष प्रबंध करने का विशेषाधिकार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ सामाजिक, पारिवारिक तथा स्वास्थ्य-संबंधी प्रश्न थे, वहाँ संविधान ने उन्हें पूर्णतः सुरक्षित किया, लेकिन पुरुषप्रधान समाज के प्रभाव के चलते महिलाएँ समानुपातिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व नहीं दे पाईं। वस्तुतः राजनीतिक दल चुनाव में महिला उम्मीदवार खड़ा करना ही नहीं चाहते, जिससे उनका प्रतिनिधित्व प्रतिशत भी न्यूनतम बना रहता है।

महिला-आरक्षण मुद्दे पर सर्वसम्मति हो जाने के बावजूद खास स्तर पर विरोध जारी है। महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था के साथ पिछड़ी और दलित जाति की महिलाओं के लिए उपव्यवस्था की जाए या नहीं, इस पर राजनीतिक समुदाय दो भागों में बँटा हुआ है। वस्तुतः पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए अलग आरक्षण-व्यवस्था करने में कोई हर्ज भी नहीं है, क्योंकि आज भी समाज में पिछड़े वर्गों, दलितों, मुस्लिम महिलाओं की स्थिति समाज में किसी से छिपी नहीं है। अतः ऐसी महिलाएँ यदि राजनीति में आएँगी, तभी समाज में सच्चा परिवर्तन आएगा तथा सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

उच्च निकायों में महिला-आरक्षण के लिए 1974 में सर्वप्रथम शिक्षा व समाज कल्याण मंत्रालय में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया। 1974 में भारतीय महिलाओं की स्थिति के अध्ययन के लिए एक समिति का गठन किया गया, जिसकी सदस्यताएँ—इला भट्ट, मृणाल पांडे, वीणा मजूमदार व फुल्किन गुहा थीं⁷। इस समिति ने विभिन्न पैमानों के आधार पर महिलाओं की स्थिति का अध्ययन किया⁸ इस समिति ने बेहद चौंकाने वाली जानकारियाँ संसद के समक्ष उजागर कीं। जैसे—

1. निरंतर घटता लिंगानुपात
2. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों (स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार) में लैंगिक आधार पर बढ़ती विषमताएँ।
3. निर्णय-निर्माण-प्रक्रिया में महिलाओं की नगण्य भागीदारी।
4. महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की निरंतर बढ़ती दर आदि⁹

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर स्त्री-पुरुष समानता के प्रयास शुरू हुए तथा 1985 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन महिला एवं बाल विकास' विभाग का गठन किया गया। तत्पश्चात् 12 सितंबर 1996 को 11वीं लोकसभा में एच०डी० देवगौड़ा सरकार ने 81वाँ संविधान संशोधन विधेयक संसद में रखा। 9 दिसंबर, 1996 में संयुक्त संसदीय समिति की अध्यक्ष गीता मुखर्जी ने लोकसभा में विधेयक प्रस्तुत किया, लेकिन तब गठबंधन की एक प्रमुख पार्टी के नेता शरद यादव ने विधेयक के प्रावधानों पर एतराज जताते हुए कहा था कि इससे सिर्फ 'परकटी महिलाओं' को ही फायदा पहुँचेगा¹⁰ 26 जून 1998 को 12वीं लोकसभा में 84वाँ संविधान संशोधन को जब कानून मंत्री तंबी दुर्र पेश करने के लिए खड़े हुए तो उनके हाथ से विधेयक की प्रति लेकर फाड़ दी गई¹¹ 13वीं लोकसभा में 22 नवंबर 1999, मई 2003, मई 2004, मई 2008 में भी कुछ प्रयास किए गए, लेकिन वे सफल नहीं हुए। 15वीं लोकसभा चुनाव के दौरान यूपीए सरकार ने महिला आरक्षण विधेयक पारित कराने का जनता को आश्वासन दिया था। 15वीं लोकसभा गठन के बाद 2010 में यूपीए ने जब यह बिल राज्यसभा में पेश किया तो इसे हंगामे व विरोध का सामना करना पड़ा, हालाँकि राज्यसभा से तो यह पारित हो गया, लेकिन 15वीं लोकसभा से यह पारित न हो सका और 15वीं लोकसभा के भंग होते ही विधेयक ने दम तोड़ दिया। वस्तुतः संविधान के अनुच्छेद-107 (5) के अंतर्गत कोई विधेयक, जो लोकसभा में लंबित है या जो लोकसभा द्वारा पारित कर दिया गया है और

राज्यसभा में लंबित है, लोकसभा के विघटन पर व्ययगत हो जाएगा।¹² अतः अब सरकार को नए सिरे से यह विधेयक लाना पड़ेगा और दोनों ही सदनों में इसे दोबारा पारित कराना होगा।

भारत में महिलाओं के सम्मान और समानता की विचारधारा उतनी ही सशक्त रही है, जितनी कि इनके साथ असमानता और अपमान की। आज स्थितियाँ पहले से काफी बदल गई हैं। आज कौनसा ऐसा कार्य है, जो आधी आबादी ने नहीं कर दिखाया। 73वें, 74वें संवैधानिक संशोधन के अधिनियमित होने के बाद महिलाओं की आवाज़ इस मुद्दे पर और सशक्त हो चली है कि धरातलीय संस्थानों में तो महिलाओं के लिए आरक्षण है किंतु समाज में धरातलीय परिवर्तन लाने वाली संस्था संसद व विधानसभा में आखिर ऐसा क्यों नहीं? वस्तुतः महिलाओं के उत्थान के लिए यह विधेयक अहम है। प्रतिनिधित्व से लड़कियों के समक्ष महिलाओं के रूप में एक नया रोल मॉडल पेश हो सकेगा, जिसका सकारात्मक असर महिला सशक्तिकरण आंदोलन तथा जागरूकता पर पड़ेगा। महिलाओं की आधी आबादी होने के नाते नीति-निर्धारण में उनकी समुचित समानुपातिक तथा सकारात्मक भूमिका भी अति आवश्यक है। तभी महिला-पुरुष के बीच की खाई को समतल करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है। वस्तुतः महिलाओं की संख्या संसद या विधानसभाओं में इसलिए नगण्य है, क्योंकि कोई भी दल उन्हें टिकट नहीं देना चाहता। अतः आरक्षण द्वारा सभी दलों द्वारा महिलाओं के चुनाव का समर्थन करना सुनिश्चित हो सकेगा।

महिलाएँ त्याग, समर्पण, संसाधनों के पुनर्चक्रण (रिसाइक्लिंग) के बेजोड़ उदाहरण सामने रखती हैं। यह सर्वविदित है कि संसाधनों का इस्तेमाल पुरुषों की तुलना में महिलाएँ बेहतर ढंग से करती हैं। पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था करते हुए इन बिंदुओं पर गंभीरता से विचार हुआ था। अब उच्च निकायों के लिए भी ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

आज ऊँचे ओहदों पर महिलाएँ पहुँच तो रही हैं, लेकिन उनकी संख्या नगण्य है। जब भी महिलाओं को कुछ देने की बात सामने आती है तो हम उन्हें कृपापात्र बना देते हैं। हम उन्हें उनका हक भी देना गँवारा नहीं समझते। अगर बेटी अपने पिता की संपत्ति में से हिस्सा माँगती है तो कहा जाता है कि कैसी बेटी है, जबकि यह उसका कानूनी हक है। आरक्षण बिल पारित होने के बाद उम्मीद है कि महिलाएँ आत्मविश्वास के साथ अपने अधिकारों को कानूनी रूप से प्राप्त करने के लिए स्वयं आगे आएँगी, जिससे महिला उत्थान व सशक्तिकरण आंदोलन को तेज गति प्राप्त होगी तथा समाज की महिला-विरोधी मानसिकता को विराम मिलेगा।

राजनीति में स्त्री को जब भी कोई पद मिलता है, तो उसे या तो पति के दिवंगत होने पर या पिता के दिवंगत होने पर। बड़ी-से-बड़ी सत्तासीन महिलाओं को उनका पद इमोशनल कारणों से मिला। यह स्त्रियों के स्वाभिमान पर चोट है। हालाँकि आज कुछ महिलाएँ अपवादस्वरूप अपने बूते भी राजनीति में आगे आ रही हैं। दरअसल, महिलाओं को अधिकार तो चाहिए, लेकिन कृपा के अंतर्गत नहीं बल्कि न्याय के अंतर्गत। वस्तुतः समाज की तरह राजनीति में भी पुरुष वर्चस्व है और वर्चस्व के इस दंभ ने स्त्रियों को बढ़ने नहीं दिया। अतः

महिला और पुरुषों की भागीदारी के अंतराल को हर हाल में खत्म करना होगा।

महिलाओं की निरक्षरता-दर पुरुषों की तुलना में काफी अधिक है। जनगणना 2011 का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि 82.14% पुरुषों के मुकाबले मात्र 65.46% महिलाएँ ही साक्षर हैं।²⁰ संसद और विधानसभाओं में आरक्षण देकर उनकी चेतना का शीघ्र विस्तार किया जा सकता है। लोहिया जी के शब्दों में—शक्ति मौका मिलने पर प्रकट होती है और प्रकट होते-होते आगे बढ़ती है। शक्ति दबाने पर दबती चली जाती है कि मानों हो ही नहीं और कभी नहीं रहीं हो। भारतीय समाज में भी नारी को इतना दबाकर रखा गया कि उसे अपनी सामर्थ्य व क्षमता पर विश्वास नहीं रहा। लोहिया ने महिलाओं की स्थिति में सुधार एवं पुरुषवादी प्रभुत्व की समाप्ति हेतु महिलाओं के लिए 'विशेष अवसर' की माँग की। यह विशेष अवसर आरक्षण के रूप में हो सकते हैं। वस्तुतः जब हमारा एक पैर खराब हो जाता है तो उसे दूसरे पैर के समतुल्य बनाने हेतु हम बैसाखी का सहारा लेते हैं। महिलाओं का तो वर्षों से शोषण जारी है, अतः उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ने अर्थात् समतुल्य बनाने के लिए आरक्षण रूपी बैसाखी का सहारा देना अति आवश्यक है।

आज महिलाओं के लिए कानून तो बहुत हैं, लेकिन उनका व्यवहार में अनुपालन सुनिश्चित नहीं हो पा रहा है। बलात्कार जैसे जघन्य अपराध की एफ०आई०आर० तक को प्राथमिकता नहीं दी जाती तथा पुलिस की ओर से बयान आता है कि ऐसी घटनाएँ समाज में होती रहती हैं। ऐसे संवेदनहीन समाज में जहाँ महिलाओं के प्रति अपराध लगातार बढ़ रहे हैं, महिलाओं का आगे आना बहुत आवश्यक है ताकि समाज को पीछे जाने से रोका जा सके।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महिला-आरक्षण रूपी साधन से महिला सशक्तिकरण रूपी साध्य को प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है। इसके लिए हमें कानून, कागज़ और कार्यवाही के बीच के बड़े अंतराल को पाटना पड़ेगा। कोई भी कानून तभी प्रभावी होता है, जब उसे सदिच्छा से लागू किया जाए। आज सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि महिला को मानव माना जाए। मानव के रूप में उसे वे सभी अधिकार दिए जाएँ, जो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास, गरिमा तथा सम्मान के लिए आवश्यक हों। उनकी स्थिति को सशक्त बनाने के लिए उनके राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास पर ध्यान देना होगा। हालाँकि आरक्षण सच्ची लोकतांत्रिक प्रक्रिया और महिलाओं की भागीदारी का विकल्प नहीं हो सकता, लेकिन वर्तमान समय में महिलाओं की स्थिति देखते हुए, इसे एक सकारात्मक व प्रभावी पहल अवश्य माना जाएगा।

संदर्भ

1. Census of India 2011
2. देवपुरा, प्रतापमल, 'आर्थिक स्वावलंबन से होंगी महिलाएँ सशक्तिकरण', कुरुक्षेत्र, (मासिक हिंदी पत्रिका), जून 2010, पृ० 16
3. पांडेय, जयनारायण, (2006), भारत का संविधान (39वाँ संस्करण) इलाहाबाद : सेंट्रल लॉ एजेंसी, पृ० 537

4. उमर फारूकी, महिला सशक्तिकरण में पंचायती राज की भूमिका, कुरुक्षेत्र, (हिंदी मासिक पत्रिका) अक्टूबर 2010, पृ० 33
5. Women in Parliament : World Classification, Inter-Parliamentary Union. (1st May 2014)
6. वही
7. <http://amitkr Gupta-Jagraniunction.com/2011/03/11>.
8. देवपुरा, प्रतापमल, 'आर्थिक स्वावलंबन से होंगी महिलाएँ सशक्तिकरण', कुरुक्षेत्र, (मासिक हिंदी पत्रिका), जून 2010, पृ० 16
9. वही
10. B.B.C. Hindi.com 17-06-2014
11. वही
12. भारतीय संविधान का अनुच्छेद-107 (5)
- 13- Census of India 2011

माँ गायत्री अपार्टमेंट
एफ-3, 7/31 सैक्टर-2, राजेंद्रनगर
साहिबाबाद, गाजियाबाद (उ०प्र०) 201005
Email: drpremlataneeraj@gmail.com
☎ 9958362811] 8860013471

प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा का इतिहास

श्रीमती सोनाली

प्रवक्ता, शारीरिक शिक्षा विभाग

जैन कन्या पाठशाला स्नातकोत्तर महाविद्यालय

मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

भारत के पुराने शहरों में शारीरिक शिक्षा के बारे में बहुत कम ज्ञान प्राप्त होता है, परंतु बहुत सारे इतिहासकारों ने मिलकर काफी मेहनत करके कुछ हद तक शारीरिक शिक्षा के बारे में पता लगाया है। सिंधु घाटी की सभ्यता बहुत पुरानी है। इस सभ्यता की सबसे बड़ी बात यह है कि इसके बारे में व्यक्तिगत रूप कम मिलता है। जो कुछ भी पता चला है वह यहाँ के रीति-रिवाज, पहनावे अतः परंपराओं पर चला है। मोहनजोदड़ो की खोज से पता चलता है कि उस समय के लोग काफी बलशाली थे। ये लोग मिल-जुलकर रहते थे। मनोरंजन को बहुत महत्त्व दिया जाता था। प्राचीन भारत में शारीरिक इतिहास को हम अलग-अलग भागों में बाँट सकते हैं। क्योंकि जैसे-जैसे भारत पर अन्य राजाओं ने अधिकार किया वह अपना प्रभाव छोड़ते गए। उनके अनुसार ही हम भारत की शिक्षा के बारे में पता लगा सकते हैं।

1. वैदिक काल, 2. ऐतिहासिक काल, 3. महाकाल, 4. नालंदाकाल, 5. राजपूत काल, 6. मुस्लिम काल, 7. ब्रिटिशकाल प्राचीन भारत (1947)

1. सिंधु घाटी की सभ्यता (3000 से 1500 B.C.)

इस समय में शारीरिक शिक्षा में कोई खास प्रगति नहीं की। लोग ज्यादातर कला में ध्यान देते थे। गैमला जुआ एक प्रसिद्ध खेल था, बच्चे मिट्टी के खिलौनों से खेलते थे, स्त्रियाँ नृत्य करना पसंद करती थीं।

2. वैदिककाल

शारीरिक शिक्षा का उल्लेख बहुत कम मिलता है, क्योंकि शिक्षा का ही कोई व्यवस्थित रूप नहीं था और इस समय की जो पुस्तकें और ग्रंथ मिलते हैं, उनमें भी शारीरिक शिक्षा का ज्यादा उल्लेख नहीं है। कहीं-कहीं पर शस्त्रविद्या और कुश्ती का उल्लेख आता है। वैदिककाल में उस समय आर्य लोग, जो मध्य एशिया से भारत में आए थे, उनका वर्णन है। यहाँ लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट तथा लंबे कद वाले थे। उनका पेशा भेड़-बकरियाँ पालना था। इनके भोजन में दाल, सब्जियाँ तथा फल आदि शामिल थे। इनके अलावा ये लोग बड़े ही ताकतवर व झगड़ालू थे। वह तीर-कमान, घुड़सवार तथा रथसवारी भली-भाँति जानते थे। इन क्रियाओं से ही ये हृष्ट-पुष्ट थे। इन लोगों को योग बहुत पसंद था। योग के द्वारा ये लोग अपनी साँस ठीक

करते थे। इनका विचार था कि योगक्रिया से मन पवित्र होता है।

3. महाकाव्य काल (700 से 200 B.C.)

यह वह समय है, जिसमें रामायण व महाभारत का वर्णन आता है। इन दोनों के अनुसार यह सारा समय उथल-पुथल और लड़ाई-झगड़ों से दूर था। इस समय शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य केवल सिखलाई ही थी। तीरंदाजी, भाला फेंकना, तलवार चलाना, कुश्ती लड़ना, तथा नृत्य करने का वर्णन आता है। भीम, कृष्ण तथा बलराम कुश्ती क्षेत्र में महान योद्धा थे। इस काल में भारतीय समाज चार श्रेणियों में बँटा हुआ था—

1 ब्राह्मण—ब्राह्मण लोग धार्मिक लोग कहलाते थे, वे प्रणायाम, आसन, सूर्य-नमस्कार तथा संध्या के समय धार्मिक कार्य करते थे।

2 क्षत्रिय—क्षत्रिय का मुख्य कार्य लड़ना होता था इसलिए दिनचर्या में घुड़सवारी, रथ चलाना, तलवारबाजी आदि थे।

3 वैश्य—वैश्यवर्ग में व्यापारी वर्ग शामिल था। ये शारीरिक परिश्रम करते थे।

4 शुद्र—शूद्रों के लिए भी बहुत-सी सेवा क्रियाएँ थीं। इन सभी श्रेणियों के लिए शारीरिक स्वास्थ्य एक प्रकार से आवश्यक था।

ये चारों श्रेणियाँ अपना कार्य करती थीं और इन चारों श्रेणियों के जीवन का उद्देश्य राज्य की तरक्की, उन्नति था।

4. (700 से 200 ऐतिहासिक B.C.)

इस समय में बौद्धधर्म और जैनधर्म का आरंभ हो चुका था। इस समय शारीरिक शिक्षा की तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता था। यह काल महात्माओं के धार्मिक विचारों का काल था। उनका कहना था कि शरीर को दुख देने से नहीं, अच्छे कामों को करने से परमात्मा को पाया जाता है। इसलिए बुरे कामों को छोड़कर अच्छे कामों में ध्यान देना चाहिए। इसलिए उस समय के लोग पूजा-पाठ करने में ज्यादा समय बिताते थे। बौद्धधर्म अहिंसा पर जोर देता था। उनकी खुराक का अच्छा प्रबंध नहीं था। उसके बाद अशोक का राज्यकाल आया, जिसने फौजी ट्रेनिंग पर जोर दिया और शारीरिक शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया।

5 नालंदाकाल (Nalanada period) (400 से 700 A.D.)

यह उस समय का विश्वविद्यालय था, जहाँ 6 हजार से भी अधिक विद्यार्थी बाहर के राज्यों से आए हुए थे। यहाँ शरीर की हृष्ट-पुष्टता पर ज्यादा ध्यान दिया जाता था। प्रणायाम तथा सूर्य-नमस्कार की क्रियाएँ प्रतिदिन करवाई जाती थीं। उस समय पैदल चलना बहुत अच्छी क्रिया समझी जाती थी।

6. राजपूतकाल (Rajput Peroid) (650 A.D. से 1200 A.D.)

राजा हर्षवर्धन, पृथ्वीराज चौहान आदि शूरवीर योद्धा थे। युद्धकाल होने के कारण लोग अपने शरीर को चुस्त व तगड़ा रखते थे। इसमें खेल तीरंदाजी, भाला फेंकने, तलवार चलाने, कुश्ती तथा नृत्य का वर्णन आता है। लोग बचपन से अपने पुत्र या पुत्री को सैनिक गतिविधियों के बारे में ज्ञान देते थे।

7. मुस्लिम काल (Muslim Period) (1300-1600 AD)

भारत में मुगलों का राज स्थापित करने में बाबर का सबसे बड़ा हाथ था। इसके बाद हुमायूँ, अकबर, औरंगजेब आदि ने राज किया। इस काल में शारीरिक शिक्षा ने बहुत प्रगति की। इस समय योग आदि बिल्कुल बंद कर दिए गए थे, क्योंकि मुस्लिम सोचते थे कि ये हिंदुओं की धार्मिक क्रियाएँ हैं। उस समय कुश्ती, बॉक्सिंग, तैरना, कबूतरबाजी प्रचलित खेल थे। औरतों को परदे में रखा जाता था। उनको खुले में रहने की इजाजत नहीं होती थी।

8 ब्रिटिश काल (British Period) (1600-1947)

1959 में अँग्रेज़ीराज स्थापित करने में रोबर्ट क्लाइव का खास योगदान था। उसके बाद गर्वनर जनरल आए। जैसे-वारेन हैस्टिंग्स, कर्नल वालिस परंतु शिक्षा में लार्ड विलियम्स का खास योगदान था। 1833 में बैटिक ने शारीरिक शिक्षा ज़रूरी कर दी थी, 1894 में स्कूलों में शारीरिक शिक्षा ज़रूरी थी। 1920 में वाई॰एम॰सी की स्थापना मद्रास में की गई। कई शारीरिक शिक्षा के कॉलेज स्थापित किए गए। 1928 में हालैंड में एम्सटर्डम में 1932 में लॉस ऐंजिल्स अमेरिका, 1936 में बर्लिन इनमें ओलंपिक गेम हुए तथा भारत ने हॉकी में गोल्ड मेडल जीते

9 निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शारीरिक शिक्षा न केवल आज ज़रूरी है बल्कि यह भविष्य में भी हमारे लिए उतनी ही ज़रूरी है, क्योंकि इतिहास इस बात का गवाह है कि जब-जब जिस देश व राज्य ने इसकी महत्ता को नहीं समझा या इसको स्थान नहीं दिया, तब-तब उस देश व राज्य की हार ही हुई है।

नारी-शिक्षा के लिए अधिक प्रत्यन किए जाएँ

शुभम त्यागी, शोध छात्रा

एम०ए० (मनोविज्ञान)

एम०एड०, एम०फिल (शि०शा०)

गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाने के लिए गृहिणी का शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है। महिला जब तक निरक्षर रहेगी, वह कहीं से कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेगी। जो बचपन से अपने सुसंस्कृत परिवार में पली हो व आपसी व्यवहार तथा वातावरण से बहुत कुछ सीख गई हो वह बात दूसरी है। ऐसी भी बहुत सी महिलाएँ होती हैं, जो पढ़ी-लिखी कुछ भी नहीं, किंतु उन्होंने इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि शिक्षित महिलाओं से भी वे आगे निकल जाती हैं।

महिलाओं के शिक्षित होने का तात्पर्य स्कूली शिक्षा से ही नहीं है। स्कूलों में भी लड़कियों के चरित्र का उचित विकास नहीं किया जाता और न उन्हें कोई गृहस्थी-संबंधी शिक्षा दी जाती है। स्कूलों में पढ़ना भी आवश्यक है तथा साथ ही साथ उनके गुणों के विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। लड़कियों के लिए ऐसे स्कूलों की व्यवस्था की जानी चाहिए, जहाँ उन्हें गृहव्यवस्था-संबंधी हर पहलू कर सिखाया जाए।

आज की कन्या कल की माँ है, जिसे एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सँभालना है। देश को सुयोग्य नागरिक देकर अपना कर्तव्य निभाना है। शादी के तुरंत बाद ही उसको घर का भी सभी कार्य सँभालना पड़ता है। एक महान जिम्मेदारी निभाने के लिए वह नये घर में प्रवेश करती है। वहाँ हर एक कार्य को सोच-समझकर करना पड़ता है। घर को स्वर्ग बनाने की महान जिम्मेदारी भी उसी पर निर्भर करती है।

अक्षर ज्ञान के अभाव में वह कुछ पढ़-लिख नहीं सकती। यदि उसने बचपन में कुछ नहीं सीखा है और शिक्षित है तो स्वाध्याय द्वारा वह अन्य गुण प्राप्त कर लेगी। पति, पुत्र, सास, ससुर से कैसे व्यवहार किया जाय, घर को किस तरीके से सजाना चाहिए आदि? कई बातें न जानने पर भी स्वाध्याय द्वारा वह इतने गुण प्राप्त कर सकती है जिनका अब तक अभाव रहा। यदि यह अशिक्षित है तो पुस्तकें पढ़ना लिखना तो दूर रहा, वह यह भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेगी कि उसके ऊपर क्या-क्या महान जिम्मेदारियाँ हैं और कैसे उन्हें निभाए। ऐसी स्थिति में महिलाओं का शिक्षित होना तो इतना आवश्यक है जैसे दीपक को तेल।

बच्चे के भावी निर्माण का उत्तरदायित्व, घर की व्यवस्था, अतिथि सत्कार, परस्पर शिष्टाचार, संबंध आरोग्य ज्ञान, हिसाब-किताब जैसे अनेक छोटी-छोटी किंतु महत्वपूर्ण बातें ऐसी हैं जिनका ज्ञान न होने से कितनी ही बड़ी-बड़ी मुसीबतें सामने आ खड़ी होती हैं। ये अधि

कांश महिलाओं की बुद्धि पर ही निर्भर करती है। हर क्षेत्र में महिलाओं का अधिक हाथ रहता है। संसार के प्रायः सभी महापुरुष सुयोग्य नारियों के हाथों में ही पल कर आए हैं।

समाज का जो विकृत स्वरूप आज हमारे सामने है, इसके लिए किसी एक को दोषी नहीं ठहरा सकते। आज की युवा पीढ़ी को यदि बचपन से ही परोपकार, दया, त्याग और देश प्रेम की शिक्षा दी जाती थी तो उनको वैसा ही कार्य करने की सूझती। किंतु हमारा यह दुर्भाग्य है कि पहले नारी शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उन्हें घर की चहारदीवारी में ही बंद रखा। परिणामस्वरूप वे कुछ भी शिक्षा ग्रहण न कर सकीं और न अपनी संतान को कुछ शिक्षा दे सकी। आज का हर व्यक्ति अपने ही स्वार्थ में डूबा हुआ है। अपने लाभ से दूसरों का गला घोटने में भी नहीं चूकता। देश सेवा तक तो बात ही नहीं पहुँचती। इसका एक बहुत बड़ा कारण अयोग्य अशिक्षित और कुसंस्कारी माताएँ भी हैं।

भारत गाँवों का ही देश है। आज अस्सी प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जो गाँवों में रहते हैं और वहाँ की महिलाएँ शिक्षा, सभ्यता से कोसों दूर हैं। गाँव की महिलाएँ अपने बच्चों को पढ़ाने के बजाय बचपन से ही काम कराने लग जाती हैं। छोटी उम्र में अधिक काम कराने व उचित पौष्टिक आहार न मिलने से बच्चों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। जैसे-तैसे जीवन को एक बोझ की तरह ढोकर जैसे आये थे वैसे ही मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। अमूल्य मानव-जीवन की कीमत तथा सही उद्देश्य वे नहीं जान पाते। इसका मुख्य कारण है, गाँवों में स्त्री शिक्षा का अभाव। यदि महिलाएँ शिक्षित होंगी, अपना कर्तव्य समझेंगी तो वे अपनी संतान को वैसा योग्य बनाकर देश की आवश्यकता को पूरी करेंगी।

गृहिणियों में शिक्षा के अभाव से उसमें पाकविज्ञान, शिशु-पालन, पारस्परिक व्यवहार आदि का उचित ज्ञान न होने से वह कितनी ही बार ससुराल में पति व अन्य सदस्यों द्वारा टुकराई जाती है। यहीं नहीं कभी-कभी उसे पति व बच्चों से भी अलग हो जाना पड़ता है और उसका भविष्य अंधकारमय हो जाता है। अपनी आजीविका के लिए उसे कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन कठिनाइयों का वर्णन किया जाए तो हृदय द्रवित हुए बिना नहीं रहता है।

गृह-व्यवस्था भी छोटा कार्य नहीं है। गृह-व्यवस्था के भी उतने ही विभाग होते हैं, जितने राज्य सरकार के होते हैं। शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए तेज बुद्धि वाले ही कार्य कर सकते हैं। काम छोटा हो या बड़ा, सुविकसित मस्तिष्क की हर जगह आवश्यकता होती है। बिना सोचे-विचारे जो कार्य होगा उससे अव्यवस्था ही फैलेगी। घर के छोटे-छोटे कार्यों में होने वाले नुकसान पर भी यदि ध्यान जाय तो वह साल के अंत में बहुत हो जाता है। इसी स्थिति की एक सुयोग्य गृहिणी के साथ तुलना की जाए तो पता चलेगा कि उसने कितनी होशियारी व किफायतसारी से परिवार का बजट बनाने व बिगाड़ने में सहयोग दिया है।

नारी को गृहलक्ष्मी बताया गया है। नारी यदि सुविकसित, सुशिक्षित, सुसंस्कृत हो तो वह अपने पति के लिए, संतान के लिए, परिवार के लिए व स्वयं अपने लिए भी एक वरदान है। शरीर का निर्माण तो आहार-विहार से भी हो सकता है किंतु व्यक्ति की मनोभूमि का निर्माण व विकास, जिस पर सर्वतोमुखी उन्नति-अवलंबित है, आदर्श नारी के समुचित सहयोग बिना

संभव नहीं। इन कार्यों को अध्यापक व उपदेशक भी पूर्ण नहीं कर सकते क्योंकि बालक अपनी आदतें व संस्कार माता के गर्भ से ही लेकर पैदा होता है।

किसी परिवार, समाज, देश एवं राष्ट्र की उन्नति तभी संभव है, जब महिलाओं में शिक्षा, उद्योग, परिश्रम जैसे गुणों का विकास हो। महाराणा, प्रताप, गांधी जी व शिवाजी आदि अनेक महान व्यक्तियों की वीरता का श्रेय उनकी माताओं व पत्नियों को ही दिया जाता है। पुरुष को आगे बढ़ाने में नारी का अधिक हाथ होता है। माता या पत्नी किसी भी रूप में उसे सहयोग अवश्य देती है।

गाड़ी को सुचारु रूप से चलाने के लिए उसके दोनों पहियों का सुदृढ़ होना आवश्यक है यदि एक भी पहिया कमजोर रहा तो गाड़ी लड़खड़ा जाएगी। इसी प्रकार समाजरूपी रथ को चलाने के लिए दोनों पहिये स्त्री-पुरुष का सुयोग्य होना आवश्यक है। एक ही पहिए का सुधार करते रहे तो वह गाड़ी कभी चल ही नहीं सकती। नारी का शिक्षित होना हर दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है।

यदि हम अपने समाज व देश की उन्नति चाहते हैं तो उसके लिए यह आवश्यक है कि समाज के आधे अंग की उन्नति के ही प्रयत्न किए जाएँ। इसे प्रगति नहीं कह सकते। विभिन्न प्रयासों से यह कोशिश करनी चाहिए कि प्रत्येक महिला सुशिक्षित हो जाए। समग्र शिक्षा को अपने जीवन में उतार कर कार्यान्वित करें। घर-घर को स्वर्ग बना दें और हर मनुष्य देवता बन जाए, तब वही संसार स्वर्ग-सदृश दीखने लगेगा। तभी महिला एक सच्ची गृहलक्ष्मी कहने योग्य हो जाएगी।

बालक का प्रथम क्रीडास्थल माता की गोद ही है वह जिस आवाहन की अनुभूति करता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। जननी के स्नेह, ममत्व एवं सौहार्द से अनुप्राणित बालक उसके आदेश को बढ़ी तत्परता से मानता है। माता के आदेश पालन और अनुकरण में उसे सुख मिलता है। यों तो बच्चों परिवार के अन्य लोगों से भी घुलता-मिलता है। परंतु माता जैसी घनिष्टता किसी से भी स्थापित नहीं हो पाती। माता ही उसका प्रथम गुण है और माता ही प्रथम पाठशाला है।

माँ बालक में सुसंस्कार और सद्वृत्तियाँ जगाने का कार्य तभी कर सकती है, जबकि वह स्वयं भी शिक्षित हो। अशिक्षित माँ के बालक कितने सदगुणी बनेंगे—यह कहा नहीं जा सकता। विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महापुरुष हुए हैं उनके निर्माण और उत्थान में उनकी माता का प्रथम हाथ रहा है।

शास्त्रों में माता को बालक का प्रथम गुरु कहा गया है, इसके पीछे भी यही तथ्य अन्तर्निहित है कि माता ही सर्वप्रथम उसे आचार-व्यवहार की शिक्षा देती है तथा संसार की विविध वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कराती है। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि पाँच वर्ष तक बालक के जो व्यक्तित्व और रुचि-रुझान विकसित हो जाते हैं, आगे के जीवन में वही प्रस्फुटित होते हैं। प्रारंभिक पाँच-छह वर्षों तक बालक पाठशाला तो जाता नहीं, अतएव माता के समीप्य में ही उसका विकास होता है। विचारवान माताएँ बालकों के मन में सद्विचार जगाने के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह के बीज भी इसी आयु में ही बालकों के अंदर रोप देती है।

बालक जैसे साथियों के मध्य रहता है तथा जैसी पुस्तकें पढ़ता है, वैसा ही प्रभाव इस पर पड़ता है। शिक्षित माता ही साथियों तथा पुस्तकों के चुनाव में सतर्कता बरत सकती है।

अन्यथा बालक उपन्यास आदि पढ़ता रहता है। और माता यही समझती है कि उनका लाड़ला पाठ्यक्रम से संबंधित पुस्तकें पढ़ रहा है। बालक भी अशिक्षित माताओं को आसानी से बहका देते हैं और मनमानी करते हैं।

बालकों की संख्या का सीधा-साधा प्रभाव उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर पड़ता है। कम बालक होंगे तो उन्हें अच्छा भोजन तथा अच्छी शिक्षा माता पिता दे सकेंगे। परंतु परिवार-नियोजन का यह प्रयास शिक्षित माता ही कर सकती है। अशिक्षित माता तो बच्चों को ईश्वर की देन और भाग्य की रेखा मानकर इस ओर तटस्थ रहती है, परंतु शिक्षित माँ परिवार की सुख शांति और बालकों के उज्ज्वल भविष्य को दृष्टगत रखकर इस ओर समुचित कदम उठाती है।

एक सबसे आवश्यक तथा महत्वपूर्ण कार्य जो केवल शिक्षित माता ही कर सकती है, वह है बालक के अंतर्द्वंद्वों को समझना, उसके अंतर्मन में उत्पन्न हुई कुंठाओं को जानना तथा कुशलतापूर्वक उन्हें दूर करना। प्रायः देखा जाता है कि बाल्यावस्था में उत्पन्न हुई कुंठाओं को यदि उस समय रहते ही दूर न कर दिया जाए तो वे आजीवन बनी रहती है तथा कभी-कभी घातक परिणाम भी प्रस्तुत कर देती है। परंतु शिक्षित माता बच्चे का मनोविश्लेषणात्क अध्ययन कर उसको सही निर्देशन देता है।

प्रौढ़ शिक्षा के राष्ट्रीय बोर्ड ने जो आँकड़े प्रस्तुत किए हैं। उनसे यह तथ्य उभकर सामने आया है कि भारतीय महिलाओं में साक्षरता की गति बहुत मंद रही है। समता के मानवीय अधिकारी की प्राप्ति और नारी मुक्ति आंदोलन की सफलता के मार्ग में यह धीमी गति बहुत बड़ी बाधा है। इस ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है।

आज हमारे देश में 80 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ निरक्षर हैं। 15 से 45 वर्ष की आयु वाली महिलाओं में तो यह निरक्षरता और भी अधिक है। शिक्षाविदों का अनुमान है कि इस निरक्षरता को समाप्त करने के लिए शिक्षा मंत्रालयों को अरबों, खरबों रूपया व्यय करना होगा। यह एक गंभीर और विचारणीय तथ्य है। नियोजित ढंग से यदि यह रूपया व्यय किया जाए तो महिलाओं में साक्षरता शत-प्रतिशत हो सकती है। ऐसा शिक्षा शास्त्रियों का मत है।

शत-प्रतिशत न सही पर यह प्रयास किया जाना तो अति आवश्यक है कि साक्षरता में महिलाएँ पुरुषों के बराबर रहे, उनसे पीछे तो न रहे। नारी मुक्ति और नारी प्रगति के लिए यह एक अनिवार्य शर्त है। नारी जागरण का कार्य करने वाले समाजसेवी कार्यकर्ताओं और विशेषकर पढ़ी-लिखी महिलाओं को इस कार्य के आगे आना चाहिए।

संदर्भ

1. अखंड ज्योति, मासिक, अखंड ज्योति संस्थान, मथुरा-3।
2. श्री अरविन्द कर्मधारा, श्री अरविंद आश्रम, दिल्ली शाखा, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-16।
3. प्रज्ञा अभियान मासिक, युगनिर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि मथुरा।
4. प्रज्ञा अभियान पाक्षिक, शांतिकुंज हरिद्वार।
5. महिला जागृति अभियान मासिक, शांतिकुंज सप्त सरोवर हरिद्वार।
6. युग निर्माण योजना मासिक, गायत्री तपोभूमि मथुरा।
7. युग शक्ति गायत्री मासिक युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि मथुरा।
8. शिक्षा एवं विद्या, पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय।

हँसने-हँसाने की कविताई

डॉ० रमेश तिवारी

मानव-जीवन में हँसी का बड़ा महत्त्व है। जीवन को निराशा, हताशा तथा बोरियत से उबारने में हँसी का सर्वाधिक योगदान होता है। जहाँ हास्य जीवन की निराशा से मुक्ति दिलाने में सहायक है, वहीं व्यंग्य जीवन और समाज की विसंगतियों की पहचान करने का कार्य करता है। हास्य और व्यंग्य के उपकरणों से जो कवि काव्य-रचना करते हुए मानव-जीवन और समाज को ऊर्जा और दिशा देने का कार्य करते हैं। उन्हें हास्य-व्यंग्य कवि के रूप में जाना जाता है। ऐसे ही हास्य-व्यंग्य कवियों में मधुप पांडेय एक प्रमुख नाम है। समग्रता में देखा जाए तो आज के दौर में जब एक-दूसरे को लेकर गलाकाट प्रतिस्पर्धा की भावना का ही चहुँओर बोलबाला है, ऐसे दौर में किसी को कविता सुनाकर हँसा देना बच्चों का खेल नहीं है। बड़ा ही मुश्किल काम है आज की तारीख में कविता सुनाकर लोगों को आनंदित और ऊर्जस्वित करना। इस दृष्टि से कविवर मधुप पांडेय आज यह कठिन कार्य कर रहे हैं। इसके लिए एक पाठक के रूप में मैंने जो भी थोड़ा-बहुत पढ़ा या सुना है, उसके आधार पर मैं इनकी भूमिका की सराहना करता हूँ। आज के दौर में सबके अपने दुःख हैं, सबका अपना जीवन-संघर्ष है। बावजूद इसके कोई अपने दुखों-संघर्षों को ठेंगा दिखाते हुए निरंतर ठहाके-पर-ठहाके लगाता रहे और अपनी लेखनी के द्वारा अपने आस-पास भी ऐसा ही जीवंत वातावरण बनाता रहे तो यह कोई छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं है। बल्कि इस उपलब्धि पर समाज को गर्व करना चाहिए। आज जब हम अपने आस-पास देखते हैं तो चारों ओर गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, भ्रष्टाचार आदि का ही बोलबाला दिखाई देता है। आप कहीं भी चले जाएँ इन रोगों को समाज की छाती पर नासूर की तरह पाएँगे, जो ख़त्म होने के बजाय बढ़ते ही जाते हैं। ऐसे दौर को हम कठिन समय न कहें तो क्या कहें? ऐसे दौर में जब चारों तरफ़ निराशा और अवसाद का वातावरण हो तो कोई हँसना तो दूर, हँसने की सोच भी नहीं सकता। किंतु ठीक ऐसे ही समय और समाज में हँसने की सोचना-लिखना और मंचों पर खड़े होकर अपनी कविताओं को पढ़ते हुए समस्त श्रोताओं, पाठकों को हँसने के लिए मजबूर करने का साहस यदि कोई कवि दिखाता है तो आप क्या कहेंगे? इसी संदर्भ में मैंने ऊपर कहा है कि मधुप पांडेय कठिन समय में कठिन कार्य कर रहे हैं। अब कृति की बात करें। 'हँसते हँसते कट जाएँ रस्ते' मधुप पांडेय द्वारा रचित अद्यतन काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन हिंदी साहित्य निकेतन बिजनौर द्वारा किया गया है। अपने शीर्षक के अनुरूप ही इस काव्य-संग्रह में हास्य-व्यंग्य को केंद्र में रखकर कविताएँ रची गयी हैं।

इस संग्रह में करीब 74 कविताओं को संकलित किया गया है। कविताओं से पूर्व इस

संग्रह में 'कुछ शब्द आपसे' शीर्षक से कवि ने पाठकों से बातचीत करते हुए उन्हें 5 दृश्यों से परिचित कराया है। इन दृश्यों में आज के कामकाजी व्यक्ति का आपाधापी भरा जीवन-संघर्ष मौजूद है। इन दृश्यों को दिखाकर कवि कहता है कि 'यह व्यथा-कथा मेरी-आपकी ही नहीं, हर आम आदमी की है।...विशिष्टता यह है कि इसमें भी हम हँसी-खुशी के कुछ क्षण चुराकर जीवंत बने रहते हैं।' (पृ० 7) इसके आगे कवि कहता है 'जीवंत बने रहें, हँसते-हँसते, जीवन के रस्ते कट जाएँ, यही उद्देश्य मेरे इस संकलन की कविताओं का है। इन रचनाओं को पढ़कर, सुधी पाठकों के चेहरों पर मीठी-सी मुस्कान खिले और फिर जीवन-भर खिली रहे।' (वही, पृ० 7) प्रसंगवश मैं यहाँ अज्ञेय के द्वारा कही गयी पंक्ति 'दुःख सबको माँजता है' का उल्लेख करना चाहता हूँ। 'दुःख सबको माँजता है/ और चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने/ किंतु जिनको माँजता है/ उन्हें यह सीख देता है/ कि सबको मुक्त रखें।' प्रकारांतर से इस संग्रह में मधुप पांडेय भी सबको मुक्ति के आनंद-सागर में गोते लगवाने का प्रयास करते हैं। मधुप पांडेय के दुःख ने उनको इतनी अच्छी तरह माँजा है कि वे अपनी कविताओं से सबको हँसाते हुए दुखों के बंधन से मुक्ति के अवसर महैया कराते हैं। ये काम देखने-सुनने में जितना आसान नज़र आता है, वास्तव में उतना आसान है नहीं। प्रकारांतर से वे आरंभ में ही पाठकों को अपने काव्य की आधार-सामग्री का संकेत दे देते हैं। 'शर्ट की टूटी बटन, पैबंद लगा पैट। काटता-कचोटता जूता।' (पृ० 6)

सब-कुछ साफ़-साफ़ है। कवि ने कुछ भी छिपाने की कोशिश नहीं की है। इन दृश्यों को देखकर हमें यह समझने में सुविधा होती है कि कवि की दृष्टि समाज के किस वर्ग की ओर है। कवि देखता है कि हमारे समाज में अँग्रेजी का खौफ़ कुछ ज्यादा ही है। परिणामस्वरूप 'हिंदी-हितैषी' भी हिंदी को समुचित सम्मान दिलाने और हिंदी में कामकाज को बढ़ावा देने संबंधी पत्राचार अँग्रेजी में करते हैं। कवि इस दोहरे आचरण से उत्पन्न विद्रूपता पर व्यंग्य करते हुए कहता है : 'हिंदी का/ समुचित सम्मान/ दिलवाने का/ उनका वादा था/ पक्का इरादा था/ इसलिए उन्होंने/ अधिकारियों से/ 'अँग्रेजी' में धुआँधार/ पत्र व्यवहार किया' (पृ० 14) किसी भी उपदेश या सीख को संदर्भ या प्रसंग के साथ समझना और अपनाना चाहिए। ऐसा न करने पर स्थितियाँ हास्यास्पद हो जाती हैं। 'दिल की बात' कविता में ऐसी ही स्थिति बन जाती है। नई-नवेली बहू जब ससुराल से आती है तो उसे पड़ोस की बुजुर्ग महिला सास के सामने हाँ जी, हाँ जी करने की सीख देती है। बहू इसे समग्रता में न समझकर सास की नाराज़गी के वक्त जब वह ईश्वर को संबोधित कर यह बोल रही होती है कि हे ईश्वर 'मुझे इस धरती से उठा ले' उसके प्रत्युत्तर में बहू का 'हाँ जी, हाँ जी' कह देना भी हास्य की सृष्टि करने वाला है।

'अथ कुत्ता प्रसंग' कविता में चाटुकारिता को हास्य-व्यंग्य का लक्ष्य बनाकर कविता की रचना की गई है। अमीर आदमी के कुत्ते के निधन पर भी उससे सहानुभूति प्रकट करनेवालों में पूरा शहर ही उमड़ पड़ता है। चाटुकारिता की प्रवृत्ति चरम पर है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि चाटुकारिता की प्रवृत्ति के मूल में स्वार्थ छिपा होता है। यही कारण है कि हम जिस व्यक्ति के पद, प्रतिष्ठा से अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं और दिन-रात उसके आगे-पीछे दुम हिलाते फिरते हैं, और पद-प्रतिष्ठा या कुर्सी से अलग होने के बाद उसे अकेला छोड़ देते हैं। क्योंकि पदमुक्त होने के बाद वह व्यक्ति अब किसी को कुछ देने की स्थिति में नहीं होता।

‘अथ कुत्ता प्रसंग’ कविता में कवि इसी विद्रूपता की ओर संकेत करते हुए व्यंग्य करता है : ‘जब श्रीमानजी की मौत आई/ तो यह विडंबना यह विसंगति देखकर/ हमारी आँखें भर आई/ कि जब कुत्ता मरा था/ शोक-संवेदना के लिए/ पूरा घर भरा था।/ परंतु आज विचित्र घड़ी थी/ उनकी स्वयं की लाश/ दरवाजे पर पड़ी थी/ घर-आँगन देहरी-द्वार/ सब वही थे/ परंतु कंधा देनेवाले/ चार आदमी भी नहीं थे।’ (पृ० 21) ये वही श्रीमानजी हैं, जिनकी रईसी का आलम यह था कि कुत्ते के मरने पर पूरा शहर शोक-संवेदना प्रकट करने उमड़ा था। कवि आज की परिस्थिति में कारणों की तलाश करते हुए जब उन्हीं लोगों से कारण जानना चाहता है, जो कल तक उस रईस आदमी के इर्द-गिर्द मँडराते रहते थे, उन्हीं से उसे जवाब मिलता है ‘श्रीमानजी वही हैं/ परंतु अब उनके पास/ किसी से कुछ लेने/ या किसी को कुछ देने के/ साधन-सामर्थ्य नहीं है।/ बाबूजी, जो किसी को लाभ देने/ या हानि पहुँचाने की/ स्थिति में नहीं रह जाता है,/ उसकी मौत पर/ आदमी की बात छोड़िये/ कुत्ता भी/ आँसू बहाने नहीं आता है!’ (पृ० 23)

यह आज के समाज का असली चेहरा है, जिसमें अनुपयोगी के लिए कोई जगह नहीं है। आप इसे समाज का विद्रूप कह सकते हैं। किंतु इसके होने से, इसके अस्तित्व से इंकार नहीं कर सकते। नास्तिक व्यक्ति का रेजगारी की कमी दूर करने के लिए सत्यनारायण की कथा का निमंत्रण और विज्ञापन की दुनिया की चकाचौंध पर भी मधुप जी ने बेहतरीन व्यंग्य-प्रहार किया है। महँगाई भी आज के समाज की एक प्रमुख समस्या है। विज्ञापनयुग में चीजें सस्ती नहीं हुई हैं बल्कि उनके ऊपर तो विज्ञापन का खर्चा भी लद गया है। हालत बद से बदतर होती जा रही है। ‘ये जूतों की/ आधुनिक पॉलिश लीजिए/ और इससे/ जूते की नहीं/ चेहरे की मालिश कीजिए/ क्योंकि जो भी/ इस महँगी पॉलिश को/ एक बार खरीदने आता है/ दाम सुनकर ही/ उसके चेहरे का/ पॉलिश उतर जाता है।’ (पृ० 35)

राजनेताओं और कुर्सी के लोभियों की हालत यह है कि स्वर्गीय चाचाजी की विरासत का प्रतीक कुर्सी पर अपना हक मान बैठे हैं और दुनिया में भाई-भतीजावाद दूर करने का संदेश देते फिर रहे हैं। और तो और जाते-जाते अपनी कुर्सी भी अपने होनहार भतीजे को देकर जाने की योजना भी बना जाते हैं। यानि आचरण में भाई-भतीजावाद को पालने-पोसनेवाले ये कुर्सी-प्रेमी सिद्धांतों में भाई-भतीजावाद को दूर करते दिखाई देते हैं। इनके जीवन का यह दोहरा चरित्र ही वह बिंदु है, जिसके कारण इनकी विश्वसनीयता कभी बन ही नहीं पाती। ‘अगर आपके/ अपने चाचा के साथ/ चाचा-भतीजे के/ रिलेशन चल सकते हैं/ तो आपके भरोसे/ हम सरीखे/ दस-पाँच भतीजों के/ पेट भी पल सकते हैं।’ (पृ० 42) आज के राजनेताओं में शिक्षा की हालत ऐसी है कि विदेश जानेवाले प्रतिनिधिमंडल के सामने जब कोई कागज हस्ताक्षर के लिए लाया जाता है तो सभी अंगूठा लगाते हैं। यह देखकर अधिकारी चकित स्वर में जब यह पूछता है—‘श्रीमान, आपकी विदेश-यात्रा का उद्देश्य/ मेरी समझ में/ नहीं आ रहा है?’ इसके जवाब में प्रतिनिधिमंडल का जवाब हाजिर है—‘उत्तर मिला/ उच्च शिक्षा का/ अध्ययन करने के लिए/ हमारा प्रतिनिधि मंडल/ विदेश-यात्रा पर जा रहा है!’ (पृ० 43)

विडंबना यह है कि जिनके पास बुनियादी शिक्षा नहीं है ऐसे लोगों ने अपने दमखम से जोड़-तोड़ करके अपने हाथ में समाज को दिशा देने की जिम्मेदारी हथिया ली है। बुनियादी शिक्षा के अभाव में इनकी उच्च शिक्षा का सवाल कितना प्रासंगिक है, यह तो वे ही बता सकते

हैं। असल बात यह है कि उच्च शिक्षा का तो बहाना मात्र है। उच्च शिक्षा के बहाने से ये सभी नेता विदेश-यात्रा मौज-मस्ती के लिए कर रहे हैं और उच्चशिक्षा का नाम लेकर समाज की आँखों में धूल झोंक रहे हैं। यही आजकल के अधिसंख्य नेताओं का असली चेहरा है। आज के समाज में आचरण की शुद्धता और ईमानदारी ढूँढने से भी नहीं मिलती। लगता है जैसे कहीं गुम हो गई है। तभी तो जब एक दिन एक नेता ने लोगों को संबोधित कर कहा 'गीता पर हाथ/ धरकर कसम खाएँ/ और कल सुबह/ वही लोग दफ्तर आएँ/ जिनपर निकम्मेपन/ और/ भ्रष्ट आचरण का/ कोई आरोप न हो/ आलस का दोष न हो।' (पृ० 45) तो अगले दिन इसका नतीजा बड़ा ही चौंकानेवाले रूप में सामने आता है। 'आश्चर्य/ दूसरी सुबह/ पूरा पार्टी-दफ्तर/ खाली पड़ा था/ सिर्फ वहाँ/ एक कुत्ता खड़ा था!' (पृ० 45)

कवि का अभिप्राय बहुत साफ़ है। ईमानदारी और वफ़ादारी में इंसान निरंतर पिछड़ता जा रहा है। आज इन मूल्यों की रखवाली के लिए कुत्तों को साथ रखना लोग अधिक पसंद करते हैं। क्योंकि इंसान तो जिस थाली में खाता है प्रायः उसी थाली में छेद करता है। वह तो उस कुत्ते से भी गया-गुजरा है जो ईमानदारी और वफ़ादारी के लिए जरूरत पड़े तो अपनी जान भी कुर्बान कर सकता है। अपने इसी गुण के कारण जहाँ कुत्ता लोक में महत्त्वपूर्ण है, वहाँ इंसान इस गुण से हीन होने के कारण स्वयं को पतनशीलता के मार्ग की ओर लेकर आगे बढ़े हैं। आज ईमानदारी की कीमत इतनी बढ़ गई है, इतना मूल्यवान हो गया है कि बहुत कम लोग ईमानदारी के मार्ग पर चलने की कोशिश कर पाते हैं। आप किसी दफ्तर में ही जाकर देख लीजिए। क्या चपरासी, क्या क्लर्क, क्या बड़े बाबू, और क्या अफसर, और क्या मंत्री जी। कोई भी अपनी सीट पर नहीं मिलेगा। सब इधर-से उधर बिना काम किए सरकार का धन बरबाद कर रहे हैं। कवि तो मानो ऐसे ही परिस्थितियों की तलाश में है और मौका मिलते ही वह अपना अवसर गँवाना नहीं चाहता।

इस काव्य-संग्रह को पढ़ते हुए मैंने पाया कि एक कवि के रूप में मधुप पांडेय की प्रतिबद्धता समाज के कामकाजी व्यक्ति से है। हर उस व्यक्ति से है, जो सुबह घर से दफ्तर के लिए निकलता है, सारा दिन अवरोधों से जूझते हुए पुनः परिवार में वापस आकर अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह करता है और अगले दिन फिर से दुगुनी ऊर्जा के साथ अपने हिस्से के जीवन-संघर्ष की तलाश में निकल पड़ता है। कवि की यह आशा, आकांक्षा और आस्था अनवरत मज़बूत हो, उसकी लेखनी यँ ही कष्ट, पीड़ा और ग़म के अवसरों में से हँसी के अवसर ढूँढ-ढूँढकर निकालती रहे, पाठकों के जीवन में खुशी-हँसी भरते हुए जीवन-संघर्षों में अविचलित खड़े रहने की ऊर्जा भरती रहे, यही मंगलकामना है।

हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते (हास्य-व्यंग्य कविताएँ); लेखक : मधुप पांडेय;
प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ०प्र०); वर्ष 2014; मूल्य 200.00
ईमेल : tiwaridramesh@gmail-com
मोबाइल : 09868722444

‘आओ भ्रष्टाचार करें’ के बहाने

डॉ० रमेश तिवारी

हिंदी में जिस व्यंग्य-परंपरा का उद्भव और विकास हम सिद्धों-नाथों और संतों के साहित्य में देखते हैं, वह आज अनेक विघ्न-बाधाओं को पार करती हुई अपने बहुआयामी रूप में हमें दिखाई देती है। भारतीय परिवेश में प्राचीन काल से लेकर आज तक व्यंग्य-लेखन की दृष्टि से स्थितियाँ बड़ी ही प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रही हैं। मध्यकाल में धर्म का वर्चस्व होने के कारण धर्म पर व्यंग्यकारों की दृष्टि अधिक केंद्रित रही है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जैसे मध्यकाल में धर्म का वर्चस्व रहा है, वैसे ही आधुनिककाल में धर्म का स्थान राजनीति ने ले लिया है। जैसा कि हम सब जानते हैं, विसंगतियाँ जितनी अधिक होंगी, व्यंग्य-रचना के लिए परिस्थितियाँ उतनी ही अनुकूल होंगी। यहाँ जिस कृति को केंद्र में रखकर सुधी पाठकों से बातचीत करनी है उसका नाम है ‘आओ भ्रष्टाचार करें’। इस व्यंग्य-संग्रह के रचनाकार हैं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल। डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल हिंदी व्यंग्य-लेखन के क्षेत्र में एक जाना-माना नाम है। ‘आओ भ्रष्टाचार करें’ इनका अद्यतन प्रकाशित व्यंग्य-संग्रह है। इस संग्रह का प्रकाशन गीतिका प्रकाशन, बिजनौर द्वारा किया गया है। इस संग्रह में कुल 26 व्यंग्य-रचनाओं को संकलित किया गया है।

एक व्यंग्यकार सदा समाज की संप्रभु शक्तियों की खामियों पर प्रहार करता चलता है। जब मध्यकाल में धर्म का वर्चस्व था तो हमने देखा कि प्रायः रचनाकार धार्मिक विसंगतियों को आधार बनाकर ही व्यंग्य करते रहे हैं। कबीरदास, कुंभनदास आदि साहित्यकारों के लेखन को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। सूरदास, तुलसीदास के यहाँ भी कमोबेश व्यंग्य की मौजूदगी है। आयो जोग सिखावन पांडे, आयो घोष बड़ो व्यापारी, जाके पाँव न फटी बिवाई, सो जाने क्या पीर पराई, मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू, तुम्हहि उचित तप मो कहँ भोगू, इत्यादि पंक्तियों में व्यंग्य की पर्याप्त मौजूदगी दिखाई देती है। इसके साथ-साथ जब हम आधुनिक काल के समय-समाज और साहित्य की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि आधुनिककाल में समाज के संचालन में धर्म का वर्चस्व पहले की अपेक्षा कम हुआ है और उसका स्थान प्रायः राजनीति ने ले लिया है। यही कारण है कि अब धर्म की विसंगतियों से अधिक राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्यकारों का लेखन केंद्रित दिखाई पड़ता है। डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के इस संग्रह में भी राजनीति-केंद्रित व्यंग्य रचनाएँ अधिक हैं।

इस संग्रह के आरंभ में ही ‘कुछ तो कहना है’ शीर्षक से रचनाकार ने अपनी रचना-संबंधी दृष्टि और विषय के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं। ‘आज देश के सामने समस्याओं का भले ही अंबार लगा हुआ हो, किंतु उनमें एक बड़ी समस्या यानी ‘भ्रष्टाचार’ ने अपनी उपस्थिति को इतना अधिक व्यापक बना दिया है कि उसके सामने हर व्यक्ति अपने जीवन की सभी समस्याओं को मानो भूल ही गया है।’ इन पंक्तियों से यह साफ़ है कि लेखक

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को लेकर चिंतित है। वह इन परिस्थितियों में बदलाव और सुधार दोनों ही चाहता है। हमारे देश में राजनीति की दशा-दिशा दोनों ही भटकाव की ओर अग्रसर हैं। एक लेखक और साहित्यकार के रूप में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल इन परिस्थितियों पर मात्र चिंता जाहिर कर चुपचाप बैठ नहीं जाते, बल्कि अपनी लेखनी से इन तमाम परिस्थितियों से जूझने और उसमें सुधार करने का वातावरण निर्मित करने और पाठकों को जागरूक करने का पुरजोर प्रयास करते हैं। इस शीर्षक के अंतर्गत ही वे देश की गरीबी का रोना रोनेवालों की बात से असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं 'अरे भाई, जिस देश का बाबू करोड़ों रुपये का मालिक हो, कोठियों और बंगलों का स्वामी हो, कई-कई किलो सोना जिसकी सेफ में 'सेफ' हो, वह देश गरीब कैसे हो सकता है!'

हमारे देश में एक और प्रवृत्ति है, जो चारों तरफ़ देखने को मिलती है। वह प्रवृत्ति है एक-दूसरे को कोसते रहना। लेखक इस प्रवृत्ति की ओर संकेत और व्यंग्य करते हुए कहता है 'हम अपने नेताओं को भी बेकार में ही कोसते रहते हैं। जिन्होंने अपना सारा जीवन देश के लिए अर्पित कर दिया, जो चुनाव के समय रात को रात और दिन को दिन नहीं समझते, सर्दी, गर्मी और बरसात में भी तो अपनी काया को चुनाव-सेवा में भेंट कर देते हैं, यदि उन्होंने अपनी संतान के लिए थोड़ा-बहुत कैश अपने कोष में जमा कर लिया तो भाई, काहे को इतनी बड़ी हाय-तोबा मचा रहे हो। जो सेवा करेगा, वही तो मेवा खाएगा। हम जैसे निठल्ले मेवा की तरफ़ ताकते तो हैं लेकिन उसके लिए कोई प्रयास नहीं करते तो फिर दूसरों की जासूसी क्यों करते हो?' लेखक अपने पाठकों से ऐसे लोगों की सोच के बारे में बतलाता है 'कितने ही आंदोलन और रैलियाँ कर लो, कितने ही उपवास आयोजित कर लो, शहीद हो जाओ या जेल में आनंद से रोटी खाओ, 'मैं अन्ना हूँ' की टोपी लगाकर सत्ता की नाक में दम कर दो, लेकिन न 'माया' की भूख मिटनेवाली है और न मेरे लाल के चेहरे की लाली खत्म होनेवाली है।' यह आज के भारत की संवेदनहीन दुनिया का एक नमूना-भर है जिसे लेखक हम पाठकों के सामने लाना चाहता है।

हमारे देश की शासन-व्यवस्था बुरी तरह जर्जर हालत में है। प्रत्येक दफ्तर में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी का बोलबाला है। लेखक ने इन परिस्थितियों का खुलासा करते हुए कहा है, 'जहाँ 'वजन' रखे बिना कागज उड़ जाते हैं, गांधी छाप पंख लगाए बिना फ़ाइल आगे नहीं बढ़ती, मुट्ठी की खुजली मिटाए बिना पेंशन पास नहीं होती, हक-पानी दिए बिना बिल किसी 'बिल' में जाकर छिप जाते हैं, वहाँ जीवन गुज़ारने के लिए कुछ तो करना ही होगा।' इन सारी अव्यवस्थाओं से परेशान होने के बावजूद कोई व्यक्ति करे भी तो क्या? प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि इन ताकतवर लोगों की जमात के आगे वह अकेला करे भी तो क्या? हम अकेले इन परिस्थितियों को कैसे बदल सकते हैं? लेखक इस विद्रूपता को भी व्यंग्य का लक्ष्य बनाते हुए कहता है, 'मैं तो कहता हूँ जब हम कुछ नहीं कर सकते तो फिर आओ भ्रष्टाचार ही करें। अब तो सारी समस्याओं का यही हल है और यही समाधान भी।'

लेखक की सक्रियता युवावस्था से ही रही है और समाज में घट रही घटनाओं पर उसकी सूक्ष्म दृष्टि है। राजनीति आधुनिककाल की प्रमुख वृत्ति है। इसीलिए हम देखते हैं कि लेखक ने भी राजनीति के प्रमुख हस्ताक्षरों, घटनाओं इत्यादि को अपने लेखन का लक्ष्य बनाया

है। इंदिरा का पंजा, समस्या चुनाव घोषणा-पत्रों की, हल्ला बोल पार्टी का चुनाव अभियान, चुनाव-प्रत्याशी से वार्तालाप, टेंडर चुनाव टिकट के लिए, व्यावसायिक राजनीति के पक्ष में, राजनीति में गिरगिटवाद, भैयाजी नेता बने, चुनाव इंटरव्यू, दलबदलुओं के पक्ष में, भाई मुखोटसिंह : एक घाघ राजनीतिज्ञ इत्यादि ऐसे व्यंग्यों के प्रमुख उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं।

हम देखते हैं कि व्यंग्य के क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही व्यक्तिपरक व्यंग्य से बेहतर प्रवृत्तिपरक व्यंग्य को माना जाता रहा है। इसका कारण यह है कि प्रवृत्तिपरक व्यंग्य जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें हम किसी प्रवृत्ति को लक्ष्य कर व्यंग्य करते हैं, जबकि व्यक्तिपरक व्यंग्य में हमारा लक्ष्य कोई व्यक्ति-विशेष होता है। किसी व्यक्ति की आलोचना के केंद्र में भी हम गौर करें तो कोई-न-कोई प्रवृत्ति ही होती है। इसलिए व्यक्ति के ऊपर व्यंग्य करते हुए भी हमारा असली विरोध उसकी प्रवृत्ति को लेकर ही होता है न कि किसी व्यक्ति-विशेष को लेकर। असल लक्ष्य तो उसकी प्रवृत्ति ही है। इसलिए हमारा विरोध प्रवृत्ति से आरंभ होकर अंत तक प्रवृत्ति पर ही केंद्रित होना चाहिए और व्यंग्य-लेखन में भी हमें प्रवृत्तिपरक व्यंग्य-रचना को ही प्रमुखता देना चाहिए। डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के इस संग्रह का मूल्यांकन करते हुए जब हम इस दृष्टि को आधार बनाकर पढ़ते चलते हैं तो पाते हैं कि अधिसंख्य संग्रहों में रचनाकार ने प्रवृत्तियों को ही केंद्र में रखते हुए व्यंग्य-रचना की है। इससे इस व्यंग्य-संग्रह की महत्ता बढ़ जाती है।

इस पूरे संग्रह में शीर्षकों पर गौर करें तो बस एक नाम भारतीय राजनीति में जाना-पहचाना है। ऐसे ही जब हम सभी रचनाओं को पढ़ते हैं तो एक-आध और नाम जो प्रसंगवश आते हैं, के अतिरिक्त कहीं भी किसी परिचित व्यक्ति का उल्लेख नहीं किया गया है। एक आध नाम जो लेखक ने लिए हैं उनके बारे में यह कहा जाना चाहिए कि उनका वास्तविक जीवन कोई संबंध प्रायः नहीं है, बल्कि ऐसे सभी पात्र प्रवृत्ति को केंद्र में रखकर और प्रवृत्ति को ही फोकस करने के उद्देश्य से रचे गए हैं। इसलिए इन पात्रों को प्रसंग की देन ही कहा जाना चाहिए। ये पात्र घटनाओं के कारण हैं न कि घटनाएँ पात्रों के कारण। इस बात को ध्यान में रखने से हमें इस निष्कर्ष तक पहुँचने में सहूलियत होती है कि लेखक ने व्यक्तिपरक व्यंग्य से कहीं अधिक महत्ता प्रवृत्तिपरक व्यंग्य को दी है। वह 'इंदिरा का पंजा' में जहाँ अफवाहों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता है, वहीं आस्था, श्रद्धा, विश्वास के निराधार होने पर उन्हें भी चुनौती देने में गुरेज या संकोच नहीं करता। एक प्रबुद्ध नागरिक की टिपण्णी के रूप में यह कथन गौरतलब है, 'आस्था, श्रद्धा, विश्वास, अंधविश्वास की बात अलग है, पर भारत के लोग जो दिखाते हैं, वह करते नहीं हैं। जैसे चोर के पाँव नहीं होते, ऐसे ही अफवाहों के पाँव नहीं होते। वे थोड़ी दूर चलती हैं और मुँह के बल गिर जाती हैं। भारत के लोग सीधे हैं, पर मूर्ख नहीं हैं।' (पृ०12) 'समस्या चुनाव-घोषणा पत्रों की' शीर्षक रचना में वोट की महत्ता को बताते हुए लेखक कहता है 'जनता की चिंता वोट नहीं दिलवाती, राजनीतिज्ञों की पोल खोलती है। धड़कन वोट दिलवाती है और सत्ता तक पहुँचाती है।' (पृ०17)

लोकतंत्र की खूबसूरती यह है कि यह जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा संचालित तंत्र कहा-माना जाता है। इसमें सभी पक्ष और व्यक्तियों की बात कही-सुनी जाती है।

सभी को अपनी बात रखने-सुनने की आजादी होती है। किसी के साथ भेदभाव की इजाजत लोकतंत्र नहीं देता है। किंतु इसके साथ-साथ लोकतंत्र के कुछ साइड इफेक्ट्स भी हैं। मसलन सभी को अपनी बात रखने की आजादी का कुछ लोग दुरुपयोग करते हैं और अनाप-शनाप बकने लगते हैं। इस तरह के आचरण से समाज की शांति भंग होती है। नकारात्मक शक्तियों को ताकत मिलती है और नफ़रत का वातावरण बनता है। पारस्परिक भाईचारा और सौहार्द की भावना को चोट पहुँचती है। बोलने की आजादी क्या मिली, जिसे देखो वही जहाँ मर्जी वहाँ अपने राग अलापने लगता है और इस शोरगुल भरे माहौल में जो महत्वपूर्ण बातें हैं वे गुम हो जाती हैं। उन्हें कोई सुन ही नहीं पाता। चारों तरफ़ शोरगुल का माहौल निर्मित होने लगता है। लेखक भी इन परिस्थितियों को देखते हुए ऐसी ताकतों पर व्यंग्य करता है। 'हल्ला बोल पार्टी का चुनाव अभियान' इसी प्रकार की व्यंग्य-रचना है। हालाँकि लेखक इसमें बीच-बीच में हास्य का भी प्रसंग और चिंतन निर्मित करता चलता है, जिससे पाठकों के लिए पठनीयता का गुण विद्यमान रहे और वे प्रसन्नता के साथ रचना को पढ़ सकें। लेखक हल्ला बोलने और धावा बोलने का अंतर समझाते हुए कहता है, 'हमने कई बार इस बारे में सोचा है और पता लगाने की कोशिश की है कि हल्ला बोलने और धावा बोलने के बीच क्या मौलिक अंतर होता है। बोले दोनों जाते हैं, धावा भी और हल्ला भी, पर दोनों की बोलियों में यदि कोई अंतर है तो क्या है? शोध एवं सोच के बाद हमें एक ही बात महसूस हुई कि धावा दूसरे पक्ष को ढहाने, चित्त करने, पराजित करने या धराशायी करने के लिए बोला जाता है। जबकि हल्ला आतंकित करने, आस्तीनें चढ़ाकर दूसरे पक्ष पर चढ़ दौड़ने तथा उनके छक्के छुड़ाने के उद्देश्य से बोला जाता है।' (पृ०18) हमारे समय और समाज की विडंबना यह है कि यहाँ ऐसे लोग राजनीति में शामिल किए जाते हैं जो खुद ही आतंक फैलाते हैं और आतंक के खिलाफ़ भाषणबाजी भी करते हैं। 'तुम्हें ऐसे उम्मीदवारों का चयन करना है जो आतंक व्याप्त भी कर सकते हों आतंकवाद के खिलाफ़ धुआँधार बोल भी सकते हों।' (पृ०20) चुनावों में नेता के आचरण-व्यवहार की नहीं, बल्कि जीतने की संभावना के प्रतिशत के आधार पर उम्मीदवारी तय की जाती है। अभी-अभी 2015 फ़रवरी में दिल्ली विधानसभा चुनाव संपन्न हुए हैं। इस दौरान जब एक राष्ट्रीय पार्टी के मुखिया से किसी पत्रकार ने पूछा कि आपकी पार्टी में उम्मीदवारों के चयन के क्या मानदंड होंगे या योग्यता क्या होगी? इसके जवाब में उस कद्दावर नेता का कहना था कि केवल 'विनिबिलिटी' हमारी पार्टी में उम्मीदवारों के चयन का आधार होगी। संदेश बहुत साफ़ है। रचनाकार ने इस प्रवृत्ति को केंद्र में रखकर ही इस व्यंग्य-रचना में व्यंग्य किया है। 'ज़रूरी नहीं कि जिस तरह के लोग हम चाहते हैं, वे सब लोग हल्ला बोल पार्टी के विधिवत् सदस्य ही रहे हों। बाहर के भी हो सकते हैं। यदि उनमें जीतने की संभावनाएँ हों तो उन्हें हल्ला बोल पार्टी का सदस्य हाथोंहाथ बनाया जा सकता है।' इसी में आगे जब एक आशंका व्यक्त की जाती है तो उसका जवाब भी नेताजी देते हैं। 'यह बात अच्छी तरह समझ लो भाई मेरे, कि चुनाव कार्यकर्ता नहीं लड़ाते, प्रत्याशी का प्रभाव लड़ाता है, उसकी हल्ला बोल प्रवृत्ति लड़ाती है। उसका आतंक लड़ाता है।' (पृ० 21) यह आज के भारत की राजनीति और राजनेताओं का असली चेहरा है। प्रायः ऐसी ही सोच का कब्ज़ा भारतीय राजनीति में चारों तरफ़ दिखाई देता है। कोई भी पक्ष और पार्टी इस मान्यता से स्वयं को बचा नहीं पाई है। जिसके ऊपर

जितने अधिक मुकदमे हों वह उतना ही अधिक जीतने की संभावना से सभी पार्टियों की उम्मीदवारी की लिस्ट में सबसे आगे रहता है। क्योंकि चयनकर्ताओं की मान्यता ही है कि 'ऐसे लोग अपने बलबूते पर जीत सकते हैं'... केवल करना यह है कि 'उन्हें भाषण रटाने होंगे, हिंसा के खिलाफ़, आतंक के खिलाफ़, अन्याय के खिलाफ़, समाज-सेवा के पक्ष में, जनता के पक्ष में। मंच पर वे यह सब कहेंगे और चुनाव के दिन मतदाताओं पर हल्ला बोलेंगे।' (पृ० 22) यह आज की राजनीति और राजनेताओं के चरित्र पर, प्रवृत्ति पर एक सफल व्यंग्य है।

आपने हास्य और व्यंग्य को पढ़ते-गुनते हुए यह देखा होगा कि अक्सर हास्य पढ़कर हम हँसते हैं, खुश होते हैं। किंतु व्यंग्य हमें हँसाता या खुश नहीं करता, बल्कि हमें रुलाता और आक्रोश से भर देता है। यही हास्य और व्यंग्य का अंतर है। इस अंतर को समझना बहुत ज़रूरी है। राजनीति और राजनेताओं का दोहरा चरित्र किसी को हँसा नहीं सकता। उनकी कथनी-करनी के बीच का फ़र्क बहुत ज़्यादा है। इन्हीं अर्थों में मैं कहूँ कि आज ही नहीं बल्कि हर दौर, हर समाज में व्यंग्य लिखना हास्य लिखने से कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण और जोखिम भरा रास्ता है तो इससे किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

इस आलेख में मैंने संग्रह की कुछ ही रचनाओं की चर्चा करते हुए अपना मत व्यक्त किया है। उम्मीद है यह संग्रह आप सब सुधी पाठकों के बीच सुरुचि के साथ पढ़ा जाएगा और भिन्न-भिन्न मत एवं अनुभव भी प्राप्त होंगे। इन सम्मतियों के प्रकाश में लेखक अपेक्षित सुधार-संपन्न दृष्टि हासिल कर सके, यही मंगलकामना है। मैं बस यही कहूँगा कि एक व्यंग्यकार के रूप में डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल ने व्यंग्य-लेखन के अपने चिरपरिचित किंतु कठिन रास्ते को चुना है। यह उनके साहस का प्रतीक है जो बार-बार, प्रत्येक कदम पर भ्रष्ट और ताकतवर समाज की आँखों में आँखें डालकर चुनौती देने पर आमादा है। साहित्य के एक अध्येता के रूप में मैं इस ताकत और साहस की सराहना करता हूँ। ज्ञान-अज्ञान, सच-झूठ, प्रकाश-अंधकार, धर्म-अधर्म की चिरकाल से चली आ रही लड़ाई आज भी जारी है और आगे भी रहेगी। यहाँ महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि कौन हारा और कौन जीता? बल्कि यह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है कि कौन धर्म के पक्ष में है, सच के पक्ष में है, शोषित और शासित के पक्ष में है और कौन अधर्म, झूठ, शोषक और शासक के पक्ष में। एक व्यंग्यकार सदा शोषित, शासित, वंचित, दलित, पीड़ित, उपेक्षित और हाशिए पर जीवन जीनेवाले कमज़ोर लोगों के साथ खड़ा रहता है और इसीलिए मेरे जैसे लोगों की नज़र में वह महत्त्वपूर्ण है, विश्वसनीय और प्रासंगिक है। व्यंग्य और व्यंग्यकार आज के समाज की ज़रूरत हैं। डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की लेखनी की यह दिशा दिनोदिन प्रखर हो, इनकी लेखनी में और पैनापन आए, यही शुभकामना है। इस व्यंग्य-संग्रह के लिए वे निश्चय ही साधुवाद के हकदार हैं। उम्मीद है यह संग्रह सुधी पाठकों के बीच प्रमुखता से पढ़ा और सराहा जाएगा।

आओ भ्रष्टाचार करें; लेखक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल; प्रकाशक : गीतिका प्रकाशन, बिजनौर; वर्ष 2015; मूल्य 200.00

मोबाइल 9868722444,

ईमेल: tiwaridramesh@gmail.com

हिंदी साहित्य निकेतन
महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

● निश्तर खानकाही एवं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल गजल और उसका व्याकरण	250.00
● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल बृहत् हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश	1500.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
शोधसंदर्भ-भाग-6	1500.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00
शोध अंक भाग-1	100.00
शोध अंक भाग-2	100.00
शोध अंक भाग-3	100.00
शोध अंक भाग-4	100.00
शोध अंक भाग-5	100.00
शोध अंक भाग-6	100.00
शोध अंक भाग-7	100.00
शोध अंक भाग-8	100.00
शोध अंक भाग-9	100.00
शोध अंक भाग-10	100.00
शोध अंक भाग-11	100.00
शोध अंक भाग-12	100.00
शोध अंक भाग-13	100.00
शोध अंक भाग-14	100.00
शोध अंक भाग-15	100.00
शोध अंक भाग-16	100.00
शोध अंक भाग-17	150.00
शोध अंक भाग-18	200.00
शोध अंक भाग-19	200.00
शोध अंक भाग-20	200.00

शोध अंक भाग-21	200.00
शोध अंक भाग-22	200.00
शोध अंक भाग-23	200.00
शोध अंक भाग-24	200.00
शोध अंक भाग-25	200.00
शोध अंक भाग-26	200.00
शोध अंक भाग-27	200.00
शोध अंक भाग-28	200.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • डॉ० चंद्रकांत मिसाल	500.00
सिनेमा और साहित्य का अंतःसंबंध • डॉ० चंद्रकांत मिसाल	200.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • नवलकिशोर शर्मा	150.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • धर्मेन्द्र उपाध्याय	300.00
डॉ० कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • डॉ० अंजु भटनागर	500.00
अमरकांत का कथासाहित्य • डॉ० योगेश गोकुल पाटिल	400.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • डॉ० अनुभूति	450.00
राजस्थानी चित्र शैली में आखेट दृश्य • डॉ० सुषमा सिंह	250.00
भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला • डॉ० सुषमा सिंह	250.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • डॉ० ज्योति सिंह	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • डॉ० ज्योति सिंह	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • डॉ० मिथिलेश माहेश्वरी	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • डॉ० मनोजकुमार	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • डॉ० दीपा के०	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत) • डॉ० मीना अग्रवाल	450.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • डॉ० हरीशकुमार सिंह	350.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • डॉ० वी० जयलक्ष्मी	450.00
साठोत्तरी हिंदी-गृजल : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • डॉ० अनिलकुमार शर्मा	350.00
लोकरंगमंच के विविध आयाम • डॉ० पूर्णचंद्र शर्मा	200.00
देवबंद की स्वांग-परंपरा • डॉ० सुरेंद्र शर्मा	200.00
एक साक्षात्कार : पं० अमृतलाल नागर के साथ • डॉ० शंकर क्षेम	150.00
गृजल : सौंदर्य और यथार्थ • अनिरुद्ध सिन्हा	150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • डॉ० ज्योति व्यास	150.00

कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • डॉ० अशोककुमार	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • डॉ० ओमदत्त आर्य	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • डॉ० मिथिलेश दीक्षित	300.00
साहित्य और संस्कृति • डॉ० मिथिलेश दीक्षित	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • डॉ० आशा रावत	350.00
आजादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • डॉ० प्रेम जनमेजय	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • विनोदचंद्र पांडेय	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ० सुरेंद्र विक्रम का योगदान • डॉ० स्वाति शर्मा	450.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • डॉ० पी०आर० वासुदेवन	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • रवींद्र प्रभात	300.00
सूरदास का सौंदर्य-चित्रण • डॉ० विजय इंदु	250.00
हरिऔध का सौंदर्य-चित्रण • डॉ० विजय इंदु	500.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • डॉ० मीनल रश्मि	250.00
समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना • डॉ० शीला गहलौत	500.00
हरिवंशराय बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ • डॉ० राजकुमार जमदग्नि	500.00
नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक • डॉ० अशोक उपाध्याय	200.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (एक) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दो) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (तीन) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (चार) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (पाँच) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (छह) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (सात) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
साहित्य और संस्कृति का अंतःसंबंध • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	400.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • डॉ० शुचि गुप्ता	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • डॉ० शिवशंकर लधवे	200.00
यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना • डॉ० अनीता रानी	400.00
सृजन और साहित्य • डॉ० राजेंद्र मिश्र	400.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00

चुनी हुई हास्य कविताएँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
बाबू झोलानाथ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • गोपाल चतुर्वेदी	150.00
आधुनिक बेताल कथाएँ • गिरीश पंकज	200.00
भज्जी का जूता • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
क्वियर फंडा • महेशचंद्र द्विवेदी	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
वीरप्पन की मूँछें • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
वसीयतनामा • पं० सूर्यनारायण व्यास, सं० राजशेखर व्यास	150.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • काका हाथरसी	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • काका हाथरसी	200.00
कक्के के छक्के • काका हाथरसी	200.00
लूटनीति मंथन करी • काका हाथरसी	200.00
खिलखिलाहट • काका हाथरसी	200.00
पैसे कहाँ से दें • डॉ० आशा रावत	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • डॉ० आशा रावत	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • महेश राजा	150.00
ए जी सुनिए • अशोक चक्रधर	100.00
इसलिए बौद्धम जी इसलिए • अशोक चक्रधर	100.00
चुटपुटकुले • अशोक चक्रधर	60.00
तमाशा • अशोक चक्रधर	60.00
सो तो है • अशोक चक्रधर	60.00
हँसो और मर जाओ • अशोक चक्रधर	60.00
नमस्ते जी • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
अब हँसने की बारी है • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
• डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00

2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • डॉ० शिव शर्मा	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० शिव शर्मा	150.00
अपने-अपने भस्मासुर • डॉ० शिव शर्मा	150.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • दामोदरदत्त दीक्षित	100.00
धमकीबाजी के युग में • निशतर खानकाही	60.00
नो टेंशन • डॉ० सुरेश अवस्थी	170.00
ला खर्चा निकाल • गजेंद्र तिवारी	200.00
जलनेवाले जला करें • गजेंद्र तिवारी	60.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • सूर्यकुमार पांडेय	100.00
ये है इंडिया • डॉ० हरीशकुमार सिंह	120.00
आँखों देखा हाल • डॉ० हरीशकुमार सिंह	150.00
सच का सामना • हरीशकुमार सिंह	150.00
लिफ्ट करा दे • डॉ० हरीशकुमार सिंह	200.00
देवेंद्र के कार्टून • देवेंद्र शर्मा	80.00
कार्टून कौतुक • देवेंद्र शर्मा	120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र • डॉ० पिलकेंद्र अरोरा	120.00
अजगर करे न चाकरी • बाबूसिंह चौहान	200.00
हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते • मधुप पांडेय	200.00
ज़िदगी तेरे नाम डार्लिंग • डॉ० लालित्य ललित	200.00
नो कमेंट • सुमित प्रताप सिंह	200.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • डॉ० आश रावत	200.00
एक थी माया • विजयकुमार	200.00
सरहदों के पार • सुरेशचंद्र शुक्ल	200.00
छोटे-छोटे सुख • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
कथा जारी है • बाबूसिंह चौहान	150.00
इक्कीस कहानियाँ • सत्यराज	100.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
कुत्तेवाले पापा • मीना अग्रवाल	150.00
क्या अच्छा क्या बुरा • मीना अग्रवाल	200.00

उत्तराखण्ड की लोकगाथाएँ • डॉ० दिनेशचंद्र बलूनी	200.00
एक बौना मानव • महेशचंद्र द्विवेदी	100.00
लव जिहाद • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
इमराना हाज़िर हो • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
हैं आस्माँ कई और भी • नीरजा द्विवेदी	200.00
कौन कितना निकट • रेणु 'राजवंशी' गुप्ता	120.00
लघु कथाएँ • डॉ० हरिशरण वर्मा	150.00
कमरा नंबर 103 • सुधा ओम ढींगरा	150.00
कहानियाँ अमेरिका से • सं० इला प्रसाद	150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका	150.00
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की • सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'	150.00
पंद्रह सिंधी कहानियाँ • सं० देवी नागरानी	200.00
अंतराल • संगीता	200.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ • राजेन्द्र मिश्र	450.00
अनोखा उपहार • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
आसरा • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	100.00
तीन बीघा ज़मीन • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
मन के जीते जीत • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
कुल का चिराग • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
कालचक्र से परे • श्रीमती नीरजा द्विवेदी	200.00
भीगे पंख • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
मानिला की योगिनी • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
और लहरें उफनती रहीं • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० शिव शर्मा	150.00
अराज-राज • डॉ० मोहन गुप्त	200.00
सुराज-राज • डॉ० मोहन गुप्त	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी • डॉ० आशा रावत	150.00
एक चेहरे की कहानी • डॉ० आशा रावत	150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० आशा रावत	100.00
एक फरिश्ता ऐसा देखा • प्रेमसागर तिवारी	250.00

एकांकी-नाटक

• डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00

मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
बच्चों के अनोखे नाटक • प्रकाश मनु	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक • प्रकाश मनु	200.00
संसार : एक नाट्यशाला • बाबूसिंह चौहान	150.00
ग्यारह एकांकी • डॉ० हरिशरण वर्मा	200.00
दमन • रामाश्रय दीक्षित	100.00
स्वप्न पुरुष • डॉ० उर्मिला अग्रवाल	150.00
अफलातून की अकादमी • डॉ० शिव शर्मा	150.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले • निश्तर खानकाही	125.00
यादों का मधुबन • कृष्ण राघव	150.00
समय के चाक पर • डॉ० लालबहादुर रावल	125.00
समय एक नाटक • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	160.00
दर्पण झूठ बोलता है • बाबूसिंह चौहान	60.00
मकड़जाल में आदमी • बाबूसिंह चौहान	80.00
उफनती नदियों के सामने • बाबूसिंह चौहान	100.00
पीठ पर नील गगन • बाबूसिंह चौहान	100.00
अनुभव के पंख • चंद्रवीरसिंह गहलौत	250.00
मेरे साक्षात्कार • डॉ० बालशौरि रेड्डी	250.00
आधी हकीकत आधा फसाना • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
फूलों की महक • डॉ० ओमदत्त आर्य	200.00
संवाद साहित्यकारों से • डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त बरसैया	200.00

गीत-गुज़ल

निश्तर खानकाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ निश्तर खानकाही	500.000
गुज़ल मैंने छेड़ी (गुज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	80.00

ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर ख़ानकाही	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर ख़ानकाही	150.00
कोई आवाज़ देता है • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
दिन दिवंगत हुए • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
सत्राटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बूँद के अंदर समंदर (मुक्तक) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मान भी जा छुटकी • गीतिका गोयल	150.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) • रामगोपाल भारतीय	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) • रमेश कौशिक	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) • रमेश कौशिक	150.00
मातृभूमि के लिए • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	200.00
संघर्ष जारी है • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	170.00
जीवन-पथ में • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
देश हम जलने न देंगे • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
समय के भूगोल में • राजेंद्र मिश्र	200.00
असाबिया • राजेंद्र मिश्र	200.00
आठवाँ राग • राजेंद्र मिश्र	200.00
हवाएँ खामोश हैं • राजेंद्र मिश्र	200.00
उजियारा आशाओं का • तारा प्रकाश	150.00
बुलंदी इरादों की • तारा प्रकाश	150.00
चलने से मंज़िल मिलती है • तारा प्रकाश	200.00
इंद्रधनुष • तारा प्रकाश	200.00
संवेदनाओं के रंग • तारा प्रकाश	200.00

तारा प्रकाश समग्र • तारा प्रकाश	600.00
शमा हर रंग में जलती है • रामेश्वरप्रसाद	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) • आर्यभूषण गर्ग	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • डॉ० आकुल	120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • डॉ० आकुल	120.00
जिंदगी गाती तो है/(गज़ल-संग्रह) • डॉ० आकुल	120.00
आसमान मेरा भी है (गज़ल-संग्रह) • किशनस्वरूप	100.00
बूँद-बूँद सागर में (गज़ल-संग्रह) • किशनस्वरूप	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (गज़ल-संग्रह) • कर्नल तिलकराज	100.00
ज़ख्म खिलने को हैं (गज़ल-संग्रह) • कर्नल तिलकराज	100.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	150.00
तिराहे पर (गज़ल-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	150.00
कुछ भी सहज नहीं (नवगीत-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	200.00
त्रिवर्णी (नवगीत-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	200.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • शचींद्र भटनागर	200.00
सुरों के ख़त • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनते हुए ऋतुगीत • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सुबह की अंगूठी • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) • डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
गुलमुहर की छाँव में (गज़ल-संग्रह) • मनोज अबोध	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (गज़ल-संग्रह) • मनोज अबोध	150.00
अग्निसुता • राजेंद्र शर्मा	150.00
सीतायनी • डॉ० शंकर क्षेम	150.00
गंगापुत्र भीष्म : शर-शैया से • डॉ० शंकर क्षेम	150.00
एक मुट्ठी धूप • नीरजा सिंह	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर • डॉ० कमल मुसद्दी	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (गज़ल-संग्रह) • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) • डॉ० बलजीत सिंह	200.00

सुख के बिरखे रोप (दोहे) • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
मानव तू जग में सुंदरतम • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
रिश्ते नए अब जोड़िए (ग़ज़लें) • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) • डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) • डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) • डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) • डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) • डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अनजाने आकाश में • महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
बातें कुछ अनकही • सत्येंद्र गुप्ता	200.00
मैंने देखा है • सत्येंद्र गुप्ता	200.00
हौसला तो है • सत्येंद्र गुप्ता	200.00
जिंदगी रुकती नहीं • सत्येंद्र गुप्ता	200.00
जज़्बात की धूप • धूप धौलपुरी	250.00
मैं एक समुद्र • डॉ० तारादत्त 'निर्विरोध'	200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ • नवलकिशोर शर्मा	180.00
जब चाँद डूब रहा था • नवलकिशोर शर्मा	200.00
एड्स शतक • पूरणसिंह सैनी	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) • पूरणसिंह सैनी	300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) • डॉ० ओमदत्त आर्य	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) • डॉ० ओमदत्त आर्य	200.00
राष्ट्र-शक्ति • सलेकचंद संगल	150.00
माँ तुझे प्रणाम • सलेकचंद संगल	150.00
लहरों के विरुद्ध • डॉ० रामप्रकाश	200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता • महेंद्र कुमार	200.00
पीड़ा का राजमहल • डॉ० उर्मिला अग्रवाल	200.00
उड़ान जारी है • विनोद भृंग	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • रामेश्वर वैष्णव	150.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) • हरिराम पथिक	200.00
धनुषभंजक राम • चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'	200.00
कविताएँ फेसबुक से • लालित्य ललित	200.00
दुनिया इतनी भी बुरी नहीं • लालित्य ललित	200.00

बचे रहेंगे केवल शब्द • लालित्य ललित	200.00
एक कुल्हड़ चाय • स्वर्ण ज्योति	200.00
रात • दामोदर खड़से	200.00
झरनों का तराना है • लक्ष्मी खन्ना सुमन	200.00
अहसासों के ताने-बाने • लक्ष्मी खन्ना सुमन	200.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन • काका हाथरसी	300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • धर्मेन्द्र उपाध्याय	250.00
आत्मसरोवर • ओम्प्रकाश अग्रवाल	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु • नीरजा द्विवेदी	200.00
स्विट्ज़रलैंड के वे 21 दिन • नीरजा द्विवेदी	200.00
सफ़र साठ साल का • डॉ० अजय जनमेजय (सं)	400.00
यादों की गुल्लक • गीतिका गोयल, डॉ० अनुभूति (संपादक)	300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
मेरे साक्षात्कार • डॉ० बालशौरि रेड्डी	250.00
संवाद : साहित्यकारों से • डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैया'	200.00
उत्तरोत्तर • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)	250.00
श्रद्धांजलि • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)	250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • शंभूनाथ तिवारी	150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • विनोद भृंग	150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) • बालकृष्ण गर्ग	150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • गीतिका गोयल	200.00
बातूनी कहानियाँ • गीतिका गोयल	200.00
किशोर मन की कहानियाँ • डॉ० सरला अग्रवाल	150.00
चलो आकाश को छू लें • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
मानव-विकास की कहानी • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
पार्टी गेम्स • चाँदनी कक्कड़	125.00
कागज की नाव • डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ	150.00
गधा बत्तीसी • लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'	200.00

ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया • लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'	200.00
कविताओं में पंचतंत्र • लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'	250.00
छुटके-मुटके जंगल में • लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'	200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने • लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'	200.00
Tiny -Tots in Forest • Laxmi Khanna 'Suman'	200.00
Adventures of the Laughing Donkey • Laxmi Khanna 'Suman'	200.00
शिक्षाप्रद बालकहानियाँ • डॉ० अशोक कुमार	200.00

विविध

उत्तराखण्ड में आध्यात्मिक पर्यटन • डॉ० सरिता शाह	200.00
• निशतर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00
• रमेशचंद्र दीक्षित, निशतर खानकाही,	
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन • डॉ० गिरिराज शाह	200.00
गुरु नानकदेव • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
अमृतवाणी • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
वेद-वेदांत दर्शन • डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व • डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
कन्हैया गीता • डॉ० मूलचन्द दालभ	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स • डॉ० गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी • मनोज भारद्वाज	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी • डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas • Dr.Vikram Singh IPS	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 0124-4076565

09557746346, 07838090732